तेरहवाँ अध्याय

भगवन्सम्यगाख्यातं यत्पृष्टोऽसि मया किल ।
भूसमुद्रादिसरितां संस्थानं ग्रहसंस्थिति ।१।
विष्ण्वाधारं यथा चैतत्त्रैलोक्यं समवस्थितम् ।
परमार्थस्तु ते प्रोक्तो यथा ज्ञानं प्रधानत: ।२।
यत्त्वेतद्भगवानाह भरतस्य महीपते: ।
श्रोतुमिच्छामि चरित तन्ममाख्यातुमर्हसि ।३।
भरत: स महीपाल: शालग्रामेऽवसत्किल ।
योगयुक्त: समाधाय वासुदेवे सदा मन: ।४।
पुण्यदेशप्रभावेन ध्यायतश्च सदा हरिम्
कथं तु नाभवन्मुक्तिर्यभूत्स द्विज: पुन: ।५।
विप्रत्वे च कृतं तेन यद्भूय: सुमहात्मना ।
भरतेन मुनिश्रेष्ठ तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।६।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! पृथिवी, समुद्र, नदी, ग्रह स्थिति आदि विषयक मेरे सब प्रश्नों को आपने कह दिया ।१। वह त्रैलोक्य भगवान् विष्णु के किस प्रकार आश्रित है और परमार्थ रूप ज्ञान ही किस प्रकार प्रधान है, यह सब भी आपने कह दिया ।२। परन्तु, भगवन् ! आपने जिस राजा भरत के विषय में पहले कहा था, उसके चरित्र को सुनने की मेरी इच्छा है, उसे कृपा-पूर्वक कहिये ।३। कहा जाता है कि वह राजा भरत निरन्तर योग-मग्न रहकर भगवान् में ध्यान लगाये शालग्राम क्षेत्र में निवास करते रहते थे ।४। परन्तु, पुण्य देश के वास और हरि-चिन्तन से भी वह मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए, उन्हें ब्राह्मण रूप में पुन: जन्म ग्रहण करना पड़ा ।५। हे मुनिवर ! उन महात्मा भरत ने ब्राह्मण होकर क्या-क्या किया वह सब कृपा-पूर्वक बताइये ।६

शालग्रामे महाभागो भगवन्न्यस्तमानस: ।
स उवास चिरं कालं मैत्रेय पृथिवीपति: ।७।

अहिंसादिष्वशेषेषु गुणेषु गुणिनां वरः ।
अवाप परमां काष्ठां मनसश्चापि संयमे ।८।
यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव ।
कृष्ण विष्णो हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तुते ।९।
इति राजाह भरतो हरेर्नामानि केवलम् ।
नान्यज्जगाद मैत्रेय किञ्चित्स्वप्नान्तरेऽपि च ।
एतत्पदन्तदर्थं च विना नान्यदचिन्तयत् ।१०।
समित्पुष्पकुशादानं चक्रे देव क्रियाकृते ।
नान्यानि चक्रे कर्माणि निस्सङ्गो योगतापसः ।११।
जगाम सोऽभिषेकाथमेकदा तु महानदीम् ।
सस्नौ तत्र तदा चक्रे स्नानस्यानन्तरक्रियाः ।१२।
अथाजगाम तत्तीरं जलं पातुं पिपासिता ।
आसन्नप्रसवा ब्रह्मन्नेकैव हरिणी वनात् ।१३।
ततः समभवत्तत्र पीतप्राये जले तथा ।
सिंहस्य नादः सुमहान्सर्वप्राणिभयङ्करः ।१४।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! उस महाभाग राजा भरत ने भगवान् का ध्यान करते हुए चिर काल तक शालग्राम क्षेत्र में निवास किया ।७। गुणियों में श्रेष्ठ उन भरत ने अहिंसादि गुणों के पालनपूर्वक मन को संयम रखकर परम श्रेष्ठता प्राप्त की ।८। हे यज्ञेश ! अच्युत ! गोविन्द ! माधव ! अनन्त ! केशव ! कृष्ण ! विष्णो ! हृषीकेश ! वासुदेव ! आपको नमस्कार है ।९। इस प्रकार राजा भरत केवल श्रीहरि के नामों का उच्चारण करते रहते थे । स्वप्न में भी वह इसी पद को जपते रहते और इसके अतिरिक्त कुछ भी चिन्तन न करते थे ।१०। वह संग-रहित, योगी और तपस्वी राजा प्रभु-पूजन के निमित्त समिध, पुष्प और कुशा मात्र एकत्र करते और इसके अतिरिक्त अन्य कोई कर्म नहीं करते थे ।११। एक दिन की बात है—उन्होंने नदी पर जाकर स्नान किया और फिर स्नान के बाद की क्रियाएँ कीं ।१२। इतने ही में उस नदी के

तट पर एक प्यासी हिरणी जल पीने के लिये आई, वह हिरणी आसन्न प्रसवा थी ।१३। वह जैसे ही जल पी चुकी, वैसे ही सब जीवों को भयभीत करने वाला भयंकर सिंहनाद सुनाई दिया ।१४।

ततः सा सहसा त्रासादाप्लुता निम्नगातटम् ।
अत्युच्चारोहणेनास्या नद्यां गर्भः पपात ह ।१५।
तमूह्यमानं वेगेन वीचिमालापरिप्लुतम् ।
जग्राह स नृपो गर्भात्पतितं मृगपोतकम् ।१६।
गर्भप्रच्युतिदोषेण प्रोत्तुङ्गाक्रमणेन च ।
मैत्रेय सापि हरिणी पपात च ममार च ।१७।
हरिणीं तां विलोक्याथ विपन्नां नृपतापसः ।
मृगपोतं समादाय निजमाश्रमागतः ।१८।
चकारानुदिनं चासौ मृगपोतस्य वै नृपः ।
पोषणं पुष्यमाणश्च स तेन ववृधे मुने ।१९।
चचाराश्रमपर्यन्ते तृणानि गहनेषु सः ।
दूरं गत्वा च शार्दूलत्रासादभ्याययौ पुनः ।२०।
प्रातर्गत्वातिदूरं च सायमायात्यथाश्रमम् ।
पुनश्च भरतस्याभूदाश्रमस्योटजाजिरे ।२१।

इससे वह अत्यन्त भयभीत हुई और उछलकर नदी तट पर आ गई। बहुत ऊँचे स्थान पर उछलने के कारण उसका गर्भ नदी के जल में जा गिरा ।१५। नदी की तरङ्गों में बहते हुए उस गर्भ से गिरे मृगशावक को राजा भरत ने पकड़ लिया ।१६। हे मैत्रेयजी ! गर्भपात होने और बहुत ऊँची छलांग मारने के कारण वह हिरणी भी पृथिवी पर गिर गई ।१७। उस हिरणी को मरी देखकर तपस्वी भरत उस मृग बालक को लेकर आश्रम पर आ गये ।१८। हे मुने ! राजा भरत उस मृगशावक का पालन पोषण करने लगे, जिससे वह उनसे पोषित हुआ और नित्य प्रति वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।१९। वह बालक कभी उनके आश्रम के निकटवर्ती प्रदेश में चरा करता और कभी सुदूर जंगल में चला जाता और फिर

सिंहादि के डर से लौट आता ।२०। प्रात:काल होने पर यदि दूर चला जाता तो भी सांयकाल होने पर आश्रम में लौटकर पर्णशाला के आँगन लेट जाता ।२१।

तस्य तस्मिन्मृगे दूरसमीपपरिवर्तिनि ।
आसीच्चेतः समासक्त न ययावन्यतो द्विज ।२२।
विमुक्तराज्यतनयः प्रोज्झिताशेषबान्धवः ।
ममत्व स चकारोच्चैस्तस्मिन्हरिणबालके ।२३।
किं वृकैर्भक्षितो व्याघ्रैः किं सिंहेन निपातितः ।
चिरायमाणे निष्क्रान्ते तस्यासीदिति मानसम् ।२४।
एषा वसुमती तस्य खुराग्रक्षतकर्बुरा ।
प्रीतये मम जातोऽसौ क्व ममैणकबालकः ।२५।
विषाणाग्रेण मद्बाहु कण्डूयनपरो हि सः ।
क्षेमेणाभ्यागतोऽरण्यादपि मां सुखयिष्यति ।२६।
एते लूनशिखास्तस्य दशनैरचिरोन्द्गतैः ।
कुशाः काशा विराजन्ते वटवः सामगा इव ।२७।
इत्थं चिरगते तस्मिन्स चक्रे मानसं मुनिः ।
प्रीतिप्रसन्नवदनः पार्श्वस्थे चाभवन्मृगे ।२८।
समाधिभङ्गस्तस्यासीत्तन्मयत्वादृतात्मनः ।
सन्त्यक्तराज्यभोगर्द्धिस्वजनस्यापि भूपतेः ।२९।
चपलं चपले तस्मिन्दूरगं दूरगामिनि ।
मृगपोतेऽभवच्चित्तं स्थैर्यवत्तस्य भूपतेः ।३०।
कालेन गच्छता सोऽथ कालं चक्रे महीपतिः ।
पितेव सास्रं पुत्रेण मृगपोतेन वीक्षितः ।३१।
मृगमेव तदाद्राक्षीत्त्यजन्प्राणानसावपि ।
तन्मयत्वेन मैत्रेय नान्यत्किञ्चिषचिन्तयत् ।३२।

इस प्रकार कभी निकट और कभी दूर चले जाने वाले उस मृग के प्रति राजा का मोह लग गया और वह अन्य विषयों से विरक्त हो गये ।२२। जिन्होंने राज्य, वैभव, पुत्र-कलत्र, बन्धु-बाँधव सब कुछ त्याग

दिया था, वही भरत उस मृग-शावक के मोह से भर गये ।२३। जब वह बाहर जाकर देर से लौटता तब उन्हें चिन्ता होती कि कहीं उसे कोई भेड़िया तो नहीं खा गया ? किसी सिंह ने तो नहीं धर दबाया ? ।२४। अहा उसके खुरों के चिह्न बनने से यह भूमि कैसी चितकबरी लगती है। मेरी प्रसन्नता के लिये ही प्रकट हुआ वह मृग शावक आज न जाने किधर चला गया ? २५। क्या वह वन से सकुशल लौटेगा और अपने सींगों के अग्र भाग से मेरे बाहुओं को खुजाकर मुझे सुख देगा ? ।२६। उसने अभी उत्पन्न हुए दांतों मे जिनकी शिखाएँ कट गई हैं, ऐसे यह कुश शिखा रहित ब्रह्मचारियों के समान कैसे विराज रहे हैं ।२७। उस मृग-शावक को गये हुए अधिक देर होने पर भरत इस प्रकार चिन्ता किया करते और जब वह लौटकर उसके पास आ जाता, तब उसे देखकर स्नेहवश उनका मुख खिल उठता था ।२८। इस प्रकार उसी में ऐसी आसक्ति रहने से राज्य, भोग, ऋद्धि और स्वजनों का भी छोड़कर आने वाले राजा भरत की समाधि में विघ्न उपस्थित हो गया ।२९। मृग के चंचल होने पर राजा का स्थिर चित्त भी तन्मय हो उठता और जब वह दूर चला जाता तब उनका चित्त भी उनके पास नहीं रहता था ।३०। कालान्तर में जब राजा भरत ने अपने प्राण का त्याग किया, तब वह मृग बालक, जैसे मरते हुए पिता को पुत्र सजल नयनों से देखता है, वैसे ही उन्हें देखता रहा ।३१। हे मैत्रेयजी ! प्राण त्याग करते समय राजा भी उस मृग को ही स्नेहपूर्वक देखते रहे और उसी में तन्मय चित्त रहने के कारण, उन से कुछ अन्य चिन्तन नहीं हो सका ।३२।

ततश्च तत्कालकृतां भावनां प्राप्य तादृशीम् ।
जम्बूमार्गे महारण्येजातो जातिस्मरो मृगः ।३३।
जातिस्मरत्वादुद्विग्नः संसारस्य द्विजोत्तम ।
विहाय मातरं भूयः शालग्राममुपाययौ ।३४।
शुष्कैस्तृणैस्तथा पर्णैः स कुर्वन्नात्मपोषणम् ।
मृगत्वहेतुभूतस्य कर्मणो निष्कृतिं ययौ ।३५।
तत्र चोत्सृष्टदेहोऽसौ जज्ञे जातिस्मरो द्विजः ।
सदाचारवतां शुद्धे योगिनां प्रवरे कुले ।३६।

सर्वविज्ञानसम्पन्नः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
अपश्यत्स च मैत्रेय आत्मानं प्रकृतेः परम् ।३७।
आत्मनोऽधिगतज्ञानो देवादीनि महामुने ।
सर्वभूतान्यभेदेन स ददर्श तदात्मनः ।३८।

उस समय उनकी जो भावना थी, उससे वह जम्बू द्वीप के एक महावन में जाकर मृग रूप में जन्मे । इस जन्म में भी उन्हें पूर्व जन्म की याद बनी रही ।३३। उस पूर्व स्मृति के बने होने से वह संसार से विरक्त ही रहे और अपनी माता का त्यागकर शालग्राम क्षेत्र में निवास करने लगे ।३४। वहाँ शुष्क तृण-पत्रादि के भक्षण द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हुए वह अपने मृग-योनि प्राप्ति करने के कारणभूत कर्मों का क्षय करने लगे ।३५। फिर अपने उस देह को त्यागकर उन्होंने सदाचाररत योगियों के पावन वंश मे ब्राह्मण रूप में जन्म लिया ।३६। हे मैत्रेयजी ! उस समय वह सर्व विज्ञानों के ज्ञाता और सभी शास्त्रों के मर्मज्ञ हुए और अपने आत्मा को प्रकृति से सर्वथा परे देखने लगे ।३७। हे महामुने ! वह आत्मज्ञानी होने के कारण देवतादि सब जीवों को अपने से भिन्न नहीं देखते थे ।३८।

न पपाठ गुरुप्रोक्तं कृतोपनयनः श्रुतिम् ।
न ददर्श च कर्माणि शास्त्राणि जगृहे न च ।३९।
उक्तोऽपि बहुशः किञ्चिज्जडवाक्यमभाषत ।
तदप्यसंस्कारगुणं ग्राम्यवाक्योक्तिसंश्रितम् ।४०।
अपध्वस्तवपुः सोऽपि मलिनाम्बरधृग्द्विजः ।
क्लिन्नदन्तान्तरः सर्वैः परिभूतः स नागरैः ।४१।
सम्मानना परां हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः ।
जनेनावमतो योगी योगसिद्धिं च विन्दति ।४२।
तस्माच्चरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् ।
जना यथावमन्येरन्गच्छेयुर्नैव सङ्गतिम् ।४३।
हिरण्यगर्भवचनं विचिन्त्येत्थं महामतिः ।
आत्मानं दर्शयामास जडोन्मत्ताकृतिं जने ।४४।

भुङ्क्ते कुल्माषव्रीह्यादिशाकं वन्यं फलं कणान् ।
यद्यदाप्नोति सुबहु तदत्ते कालसंयमम् ।४५।

जब उपनयन संस्कार हो गया, तब गुरु के पढ़ाने पर भी वेद अथवा अन्य शास्त्रों को नहीं पढ़ना और न किसी को ही देखता था ३९। जब उससे कोई प्रश्न करता, तब बस संस्कारहीन, सारहीन अथवा ग्रामीण वाक्य मिले हुये अस्फुट वचन कहता था ।४०। अस्वच्छ शरीर, मैले वस्त्र और मलीन दाँतों वाले उन ब्राह्मण को नागरिकों से सदा अपमानित होना पड़ता था ।४१। हे मैत्रेयजी ! योग-सिद्धि में सबसे बड़ी बाधा सम्मान है, सदा अपमानित होने वाला योगी शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त होता है ।४२। इसलिये सन्मार्ग को निर्दोष रखता हुआ योगी ऐसा आचरण करता रहे, जिसके कारण लोग उसका अपमान करें और संगति से बचते रहें ।४३। हिरण्यगर्भ के इन वचनों का स्मरण करते हुए वह महामति ब्राह्मण लोगों के सामने जड़ और उन्मत्त जैसे रहते थे ।४४। कुल्माष, व्रीहि आदि, शाक, वन के फल या अन्नकण आदि जो कुछ भी मिल जाता, यदि वह थोड़ा भी होता तो उसे अधिक मानकर आहार करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगे ।४५।

पितर्युपरते सोऽथ भ्रातृव्यबान्धवैः ।
कारितः क्षेत्रकर्मादि कदन्नाहारपोषितः ।४६।
स तूक्षपीनावयवो जडकारी च कर्मणि ।
सर्वलोकोपकरणं बभूवाहारचेतनः ।४७।
तं तादृशतरांस्कार विप्राकृतिविचेष्टितम् ।
क्षत्ता पृषतराजस्य काल्यै पशुमकल्पयत् ।४८।
रात्रौ तं समङ्कृत्य वैशसस्य विधानतः ।
अधिष्ठितं महाकाली ज्ञात्वा योगेश्वरं तथा ।४९।
ततः खड्गं समादाय निशितं निशि सा तथा ।
क्षत्तारं क्रूरकर्माणमच्छिनत्कण्ठमूलतः ।
स्वपार्षदयुता देवी पपौ रुधिरमुल्बणम् ।५० ।

जब उनके पिता की मृत्यु हो गई, तब उनके भाई, भतीजे और बांधवगण निकृष्ट अन्न से उनका पोषण करते हुए, उनसे कृषिकार्य कराने लगे ।४६। वह भी बैल के समान पुष्ट देह वाले और कर्म में जड़ के समान चेष्टा-रहित होने के कारण आहार मात्र प्राप्त करके सब कार्य यन्त्र के समान करते थे ।४७। पृषतराज के सेवकों ने उन्हें ब्राह्मण वेश के विरुद्ध आचरण वाला तथा संस्कारहीन देखकर महाकाली की बलि के लिये विधिवत् सजाया परन्तु एक परम योगी को बलि रूप में उपस्थित देखकर स्वयं महाकाली ने अपने तीक्ष्ण खड्ग से उस क्रूर कर्म वाले राज सेवक का कण्ठ मूल सहित काटकर अपने पार्षदों सहित उसका रक्त पी लिया ।४८-५०।

ततस्सौवीरराजस्य प्रयातस्य महात्मनः ।
विष्टिकर्तथि मन्येत विष्टियोग्योऽयमित्यपि ।५१।
तं तादृशं महात्मानं भस्मच्छन्नमिवानलम् ।
क्षत्ता सौवीरराजस्य विष्टयोग्यममन्यत ।५२।
स राजा शिबिकारूढो गन्तुं कृततमतिर्द्विजः ।
बभूवेक्षुमतीतीरे कपिलर्षेर्वराश्रमम् ।५३।
श्रेयः किमत्र संसारे दुःखप्राये नृणातिति ।
प्रष्टु तं मोक्षधर्मज्ञं कपिलाख्यं महामुनिम् ।५४।
उवाह शिबिकां तस्य क्षत्तुर्वचनचोदितः ।
नृणां विष्टिगृहीतानामन्येषां सोऽपि मध्यगः ।५५।
गृहीतो विष्टिना विप्रः सर्वज्ञानैकभाजनः ।
जातिस्मरोऽसौ पापस्य क्षयकाम उवाह ताम् ।५६।
ययौ जडमतिः सोऽथ युगामात्रावलोकनम् ।
कुर्वन्मतिमतां श्रेष्ठस्तदन्ये त्वरितं ययुः ।५७।

फिर एक दिन सौबीर नरेश कहीं जा रहे थे, उनके वेगारियों ने उन्हें वेगार के योग्य समझा ।५१। राख में छिपे अग्नि के समान उनकी आकृति आदि देखकर राज सेवकों ने भी उन्हें वेगार करने के लिये उपयुक्त समझ लिया ।४२। उन सौबीर नरेशने मोक्ष धर्मके जानने वाले महर्षि

कपिल से 'दु:खमय संसार में श्रेय कहाँ है, इस जिज्ञासा के समाधान पाने के विचार से पालकी पर चढ़कर उन महर्षि के आश्रम पर इक्षुमती नदी के तट पर जाने का निश्चय किया था ।५३-५४। उस समय राजसेवक के कहने से अन्य वेगारियों के साथ लगकर वह ब्राह्मण भी उनकी पालकी को उठाकर चले ।५५। अपने पूर्व जन्म की याद रखने वाले सम्पूर्ण विज्ञान के एक ही भाजन वह ब्राह्मण इस प्रकार वेगार द्वारा अपने पापमय प्रारब्ध का क्षय करने के लिये उस पालकी के वहन-कार्य में लगे ५६। वह जड़मति ब्राह्मण तो चार हाथ पृथिवी देखते हुए धीमी गति से चलते थे, परन्तु उनके अन्य सब साथी शीघ्रता पूर्वक चल रहे थे ।५७।

विलोक्य नृपतिः सोऽथ विषमां शिबिकागतिम् ।
किमेतदित्याह समं गम्यतां शिबिकावहाः ।५८।
पुनस्तथैव शिबिकां विलोक्य विषमां हि सः ।
नृपः किमेतदित्याह भवद्भिर्गम्यतेऽन्यथा ।५९।
भूपतेर्वदतस्तस्य श्रुत्वेत्थं बहुशो वचः ।
शिबिकावाहकाः प्रोचुरयं यातीत्यसत्वरम् ।६०।
किं श्रान्तोऽस्यल्पमध्वानं त्वयोढा शिबिका मम ।
किमायाससहो न त्वं पीवानसि निरीक्ष्यसे ।६१।
नाहं पीवान्न चैवोढा शिबिका भवतो मया ।
न श्रान्तोऽस्मि न चायासो सोढव्योऽस्ति महीपते ।६२।
प्रत्यक्षं दृश्यसे पीवानद्यापि शिबिका त्वयि ।
श्रमश्च भारोद्वहने भवत्येव हि देहिनाम् ।६३।

इस प्रकार उस पालकी की समान गति न देखकर राजा बोले—अरे पालकी चलाने वालो ! यह क्या कर रहे हो, एक-सी चाल से चलो ।५८। उसके बाद भी उसकी वैसी ही विषम गति देखकर राजा ने कहा—अरे क्या करते हो ? इस प्रकार विषम भाव से क्यों चल रहे हो ? ।५९। इस प्रकार राजा द्वारा बारम्बार टोके जाने पर पालकी चलाने वालों ने कहा—हमसे यह एक व्यक्ति बहुत मंदगति से चलता है ।६०। राजा बोले—

अरे तूने तो इस पालकी को अभी थोड़ी दूर ही ढोया है, क्या इतने में ही श्रान्त हो गया ? देखने में तो तू इतना मोटा ताजा है, फिर क्या तू इतना परिश्रम भी नहीं कर सकता ? ।६१। तब उन ब्राह्मण ने कहा—हे राजन्! मैं न तो मोटा-ताजा हूँ और न मैंने आपकी पालकी ही उठाई हुई है, न मैं थका हूँ और मुझे परिश्रम करने की ही आवश्यकता है ।६२। राजा ने कहा—अरे, तू तो प्रत्यक्ष ही मोटा-ताजा दिख रहा है, इस समय भी यह पालकी तेरे कन्धे पर रखी है, और भार वहन करने से परिश्रम भी होता ही है ।६३।

प्रत्यक्षं भवता भूप यद्‌दृष्टं मम तद्वद ।
बलवानबलश्चेति वाच्यं पश्चाद्विशेषणम् ।६४।
त्वयोढा शिबिका चेति त्वय्यद्यापि च संस्थिता ।
मिथ्यैतदत्र तु भवाञ्छृणोतु वचनं मम ।६५।
भूमौ पादयुगं त्वास्ते जङ्घे पादद्वये स्थिते ।
ऊर्वोर्जङ्घाद्वयावस्थौ तदाधारं तथोदरम् ।६६।
वक्षःस्थलं तथा बाहू स्कन्धौ चोदरसंस्थितौ ।
स्कन्धाश्रितेयं शिबिका मम भारोऽत्र किं कृतः ।६७।
शिबिकायां स्थितं चेदं वपुस्त्वदुपलक्षितम् ।
तत्र त्वमहमप्यत्र प्रोच्यते चेदमन्यथा ।६८।
अहं त्वं च तथान्ये च भूतैरुह्याम पार्थिव ।
गुणप्रवाहपतितो भूतवर्गोऽपि यात्ययम् ।६९।
कर्मवश्या गुणाश्चैते सत्त्वाद्याः पृथिवीपते ।
अविद्यासञ्चितं कर्म तच्चाशेषेषु जन्तुषु ।७०।

इस पर ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! तुम प्रत्यक्ष क्या देख रहे हो ? यही मुझे बताओ । उसके बलवान् या निर्बल विशेषणों की बात तो फिर कहना ।६४। तुम्हारा यह कहना मिथ्या है कि तूने मेरी पालकी उठाई है, इस समय भी वह तेरे कन्धे पर रखी है । अब तुम मेरा वचन सुनो ।६५। पृथिवी पर दोनों पाँव, पाँवों पर ऊरु और ऊरुओं पर उदर स्थित है ।६६। उदर पर वक्षःस्थल, बाहु और कन्धे हैं और उन कन्धों

पर यह पालकी रखी है तो इसका भार मेरे ऊपर कहाँ है ? ।६७। इस पालकी में तुम्हारा बताया जाने वाला देह रखा है । यथार्थ में तो तुम वहाँ हो और मैं यहाँ हूँ ।६८। हे राजन् ! तुम अथवा अन्यान्य सब प्राणी पंच-भूतों द्वारा ही वहन किये जाते हैं और यह भूतवर्ग भी गुणों द्वारा प्रवाह हो रहा है ।६९। हे भूपते ! यह सत्वादि गुण कर्मों के आधीन हैं और सब प्राणियों में कर्म की उपत्ति अविद्या से हुई है ।७०।

आत्मा शुद्धोऽक्षरः शान्तो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥
प्रवृलद्धयपचयौ नास्य एकस्याखिलजन्तुषु ॥७१॥
यदा नोपचयस्तस्य न चैवापचयो नृप ॥
तदा पीवानसीतीत्थं कया युक्त्या त्वयेरितम् ॥७२॥
भूपादजङ्घाकटयूरुजठरादिषु संस्थिते ॥
शिबिकेयं यथा स्कन्धे तथा भारः समस्त्वया ॥७३॥
तथान्यैर्जन्तुभिर्भूप शिबिकोढा न केवलम् ॥
शैलद्रुमगृहोत्थोऽपि पृथिवी सम्भवोऽपि वा ॥७४॥
यदा पुंसः पृथग्भावः प्राकृतैः कारणैर्नृप ॥
सोढव्यस्तु तदायासः कथ वा नृपते मया ॥७५॥
यद्द्रव्या शिबिका चेयं तद्द्रव्या भूतसंग्रहः ।
भवतो मेऽखिलस्यास्य ममत्वेनापबृंहितः ॥७६॥
एवमुक्त्वाभवन्मौनी स वहञ्छिबिकां द्विज ॥
सोऽपि राजावतीर्योर्व्यां तत्पादौ जगृहे त्वरन् ॥७७॥

परन्तु आत्मा शुद्ध, अक्षर, शान्त, गुण-रहित तथा प्रकृति से परे है तथा सब प्राणियों में एक ही वह ओत-प्रोत है. इसलिये उसका न कभी वृद्धि है और न क्षय है ।७१। हे राजन् ! जब उसके उपचय या अपचय ही नहीं होते तो तुमने यह किस आधार पर कहा कि तू तो मोटा-ताजा है ।७२। यदि भूमि, पाँव, जाँघ, कटि उरु और उदर पर स्थित कंधों पर रखी हुई यह पालकी मेरे बोझ रूप हो सकती है तो वह तुम्हारे लिये भी उसी प्रकार हो सकती है ।७३। इसी युक्ति से अन्य सभी प्राणियों ने

केवल यह पालकी ही नहीं, सम्पूर्ण पर्वत, वृक्ष, घर और भूमि आदि का बोझ उठा रखा है।७४। हे नृप ! जब प्रकृति द्वारा उत्पन्न होने वाले कारणों से पुरुष का पृथक् भाव है, तो मुझे उसमें थकान भी कैसे हो सकती है।७५। जिस-जिस द्रव्य से यह पालकी बनी है, उसी-उसी से तुम्हारा, मेरा और अन्य सभी का शरीर बना है, जिसमें ममता का आरोप मात्र है।७६। श्री पराशरजी ने कहा—यह कह कर वह ब्राह्मण उस पालकी को कंधे पर रखे हुए ही मौन हो गये और राजा तत्काल भूमि पर उतर आये और उन्होंने ब्राह्मण के चरण पकड़ लिये।७७।

भो भो विसृज्य शिबिकां प्रसादं कुरु मे द्विज ।
कथ्यतां को भवानत्र जाल्मरूपधरः स्थितः ।७८
यो भवान्यन्निमित्तं वा यदागमनकारणम् ।
तत्सर्वं कथ्यतां विद्वन्मह्यं शुश्रूषवे त्वया ।७९।
श्रूयतां सोऽहमित्येतद्वक्तुं भूप न शक्यते ।
उपभोगनिमित्तं च सर्वत्रागमनक्रिया ।८०।
सुखदुःखोपभोगौ तु तौ देहाद्युपपादकौ ।
धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तुं जन्तुर्देहादिमृच्छति ।८१।
सर्वस्यैव हि भूपाल जन्तोः सर्वत्र कारणम् ।
धर्माधर्मौ यतः कस्मात्कारणं पृच्छ्यते त्वया ।८२।
धर्माधर्मौ न सन्देहस्सर्वकार्येषु कारणम् ।
उपभोगनिमित्तं च देहाद्देहान्तरागमः ।८३।
यस्त्वेतद्भवता प्रोक्तं सोऽहमित्येतदात्मनः ।
वक्तुं न शक्यते श्रोतुं तन्ममेच्छा प्रवर्त्तते ।८४।
योऽस्ति सोऽहमिति ब्रह्मन्कथं वक्तुं न शक्यते ।
आत्मन्येव न दोषाय शब्दोऽहमिति यो द्विज ।८५।

राजा ने कहा—हे ब्राह्मण ! आप इस पालकी को छोड़ने की कृपा करिये ! हे भगवन् ! आप इस छद्मवेश में कौन हैं, यह मुझे बताइये ७८। हे विद्वन् बताइये आप कौन हैं ? यहाँ किस कारण आये हैं ? मुझे आप के विषय में जानने की बड़ी इच्छा हो रही है।७९। ब्राह्मण ने कहा—

हे राजन् ! मैं कौन हूँ यह कह नहीं सकता। इसके अतिरिक्त मेरे यहाँ आने का कारण पूछा, तो आवागमनादि क्रियाएँ कर्म-फल भोग के लिये होती हैं।८०। सुख-दुःख का भोग शरीरादि को प्राप्त करता है और धर्म-अधर्म से उत्पन्न सुख-दुःख का भोग करने के लिये ही प्राणी को देहादि ग्रहण करने होते हैं।८१। हे राजन् ! यह धर्म-अधर्म ही सब जीवों की समस्त अवस्थाओं के कारण है, फिर मेरे ही आने के कारण को पूछने में क्या विशेषता है ?।८१। राजा ने कहा—सब कार्यों में धर्म-अधर्म ही ही कारण है तथा कर्मफल का भोग करने के निमित्त ही जीव का देहान्तर होता है, इसमें सदेह नहीं है।८३। परन्तु आपने कहा कि मैं कौन हूँ यह नहीं कह सकता, इसी को सुनने की मेरी इच्छा है ८४। हे ब्रह्मन् ! जो है वही मैं हूँ, यह क्यों नहीं कह सकते ? यह अहं शब्द तो आत्मा को दूषित करने का कारण नहीं है।८५।

शब्दोऽहमिति दोषाय नात्मन्येषतथैव तत्।
अनात्मन्यात्मविज्ञान शब्दो वा भ्रान्तिलक्षणः।८६।
जिह्वा ब्रवीत्यहमिति दन्तोष्ठौ तालुके नृप।
एते नाह यतः सर्वे वाङ्निष्पादनहेतवः।८७।
किं हेतुभिर्वदत्येषा वागेवाहमिति स्वयम्।
अतः पीवानसीत्येतद्वक्तुमित्थं न युज्यते।८८।
पिण्डः पृथग्यतः पुंसः शिरः पाण्यादिलक्षणः।
ततोऽहमिति कुत्रैतां संज्ञां राजन्करोम्यहम्।८९
यद्यन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम।
यद्यन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम।
तदैषोऽहमयं चान्यो वक्तुमेवमपीष्यते।९०।
यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः।
तदा हि को भवान्सोऽहमित्येतद्विफलं वचः।९१।

ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! अहं शब्द से आत्मा में दोष नहीं आता, यह कहना यो यथार्थ है, परन्तु अहं शब्द अनात्म में आत्मत्व की भ्रांति कराने वाला होने से दोष का कारण हो जाता है।८७। हे राजन् ! अहं शब्द जिह्वा, दांत, ओष्ठ और तालु से उच्चारण किया जाता है,

परन्तु यह सब उसके उच्चारण के कारण तो हैं, परन्तु स्वयं ही अहं नहीं हैं ।८७। तो क्या जिह्वादि कारणों के द्वारा वाणी ही अपने आप को अहं कहती है ? यदि नहीं तो फिर 'तू मोटा-ताजा है' ऐसा कहना भी ठीक नहीं है ।८८। मस्तक, हाथ पाँव आदि रूप वाला यह देह भी आत्मा से भिन्न ही है । इसलिये इस अहं शब्द को प्रयुक्त किया जाय ? ।८९। हे राजाओं में श्रेष्ठ ! यदि मुझ से भिन्न कोई अन्य सजातीय ही आत्मा होता तो भी 'यह मैं हूँ यह भिन्न है ऐसा कह सकते थे ।९०। परन्तु जब समस्त देहों में एक ही आत्मा स्थित है, तब तुम कौन और मैं कौन, यह सब निःप्रयोजन ही है ।९१।

त्वं राजा शिबिका चेयमिमे वाहाः पुरः सराः ।
अयं च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते ।९२।
वृक्षाद्दारु ततश्चेयं शिबिका त्वदधिष्ठिता ।
किं वृक्षसंज्ञा वास्याः स्याद्दारुसंज्ञाथ वा नृप ।९३।
वृक्षारूढो महाराजो नायं वदति ते जनः ।
न च दारुणि सर्वस्त्वां ब्रवीति शिबिकागतम् ।९४।
शिबिका दारुसङ्घातो रचनास्थितिसंस्थितः ।
अन्विष्यतां नृपश्रेष्ठ तद्भेदे शिबिका त्वया ।९५।
एवं छत्रशलाकानां पृथग्भावे विमृश्यताम् ।
क्व यातं छत्रमित्येष न्यायस्त्वयि तथा मयि ।९६।
पुमान् स्त्री गौरजो वाजी कुञ्जरो विहगस्तरुः ।
देहेषु लोकसंज्ञेयं विज्ञेया कर्महेतुषु ।९७।
पुमान्न देवो न नरो न पशुर्न च पादपः ।
शरीराकृतिदास्तु भूपैते कर्मयोनयः ।९८।

तुम राजा हो, यह पालकी तुम्हारी है, यह पालकी ढोने वाले हैं, यह सब तुम्हारी प्रजा हैं—इन सब वाक्यों में से यथार्थ रूप में तो कोई भी सत्य नहीं हैं ।९२। हे राजन् ! वृक्ष के काष्ठ से तेरी पालकी बनी तो इस पालकी को काष्ठ कहें अथवा वृक्ष ? ।९३। परन्तु महाराज वृक्ष पर बैठे हैं ऐसा कोई नहीं कहता और न काष्ठ पर ही बैठे हुए बताता है, सभी

पालकी में बैठे हुए कहते हैं ।९४। हे नृपोत्तम ! रचना विशेष से एकत्रित हुआ काष्ठ-समूह ही तो यह पालकी है। यदि यह काष्ठ से भिन्न है तो काष्ठ को इससे पृथक् करके उसकी खोज करो ।९५। उसी प्रकार छत्र-शलाकाओं को पृथक् रख कर सोचो कि फिर वह छत्र कहाँ रहता है ? यही न्याय अपने और मेरे देह के प्रति रखो ।९६। पुरुष, स्त्री, गौ, बकरा, घोड़ा हाथी, पक्षी और वृक्षादि लोक संज्ञाएँ कर्म हेतु वाले देह में माननी चाहिये ।९७। हे भूपते ! आत्मा तो देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष, आदि कुछ भी नहीं हैं। यह सब तो कर्म से उत्पन्न देहों के आकृति-भेद ही हैं ।९८।

वस्तु राजेति यल्लोकेयच्च राजभटात्मकम् ।
थतान्यच्च नृपेत्थं तन्न सत्सङ्कल्पनामयम् ।९९।
यत्तु कालान्तरेणापि नान्यां संज्ञामुपैति वै ।
परिणामादिसम्भूतां तद्वस्तु नृप तच्च किम् ।१००।
त्वं राजा सर्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपो रिपुः ।
पत्न्याः पतिः पिता सूनोः किं त्वां भूप वदाम्यहम् ।१०१।
त्वं किमेतच्छिरः किं नु ग्रीवा तव तथोदरम् ।
किमु पादादिकं त्वं वा तवैतत्किं महीपते ।१०२।
समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूय व्यवस्थितः ।
कोऽहमित्यत्र निपुणो भूत्वा चिन्तय पार्थिव ।१०३।
एवं व्यवस्थिते तत्त्वे मयाहमिति भाषितुम् ।
पृथक्करणनिष्पाद्यं शक्यते नृपते कथम् ।१०४।

संसार में राजा, राजा के वीर सैनिक तथा अन्यान्य सभी वस्तुएँ यथार्थ में सत्य नहीं हैं, वह तो निरी कल्पना है ।९९। परमार्थ वस्तु तो वही है, जिसके परिमाणादि के कारण से होने वाली संज्ञा कालान्तर के उपस्थित होने पर भी नहीं होती। हे नृप ! वह वस्तु क्या है ? ।१००। सब प्रजाजनों के लिये तुम राजा हो, पत्नी के लिये पति हो, पुत्र के लिये पिता हो तथा शत्रु के लिये शत्रु हो। अब हे भूपते ! तुम्हीं बताओ कि मैं तुम्हें क्या कहूँ ? ।१०१। हे राजन् ! तुम शिर, ग्रीवा, उदर अथवा पाँव

में से कुछ हो ? और क्या यह शिर आदि भी तुम्हारे अपने हैं ? ।१०२। तुम इन सब अवयवों से भिन्न हो इसलिये यत्न पूर्वक सोचो कि मैं कौन हूँ ।१०३। हे राजन् ! इस प्रकार व्यवस्थित आत्म तत्व को सबसे पृथक् करके ही उसका प्रतिपादन किया जा सकता है, तो मैं उसे अहं शब्द द्वारा किस प्रकार कह सकता हूँ ।१०४।

—:❋❋:—

चौदहवाँ अध्याय

निशम्य तस्योति वचः परमार्थसमन्वितम् ।
प्रश्रयावनतो भूत्वा तमाह नृपतिर्द्विजम् ।१।
भगवन्यत्त्वया प्रोक्तं परमार्थमयं वचः ।
श्रुते तस्मिन्भ्रमन्तीव मनसो मम वृत्तयः ।२।
एतद्विवेकविज्ञानं यदशेषेषु जन्तुषु ।
भवता दर्शितं विप्र तत्परं प्रकृतेर्महत् ।३।
नाहं वहामि शिबिकां शिबिका न मयि स्थिता ।
शरीरमन्यदस्मत्तो येनेय शिबिका धृता ।४।
गुणप्रवृत्या भूतानां प्रवृत्तिः कर्मचोदिता ।
प्रवर्तन्ते गुणा ह्येते किं ममेति त्वयोदितम् ।५।
एतस्मिन्परमार्थज्ञ मम श्रोत्रपथं गते ।
मनो विह्वलतामेति परमार्थार्थितां गतम् ।६।
पूर्वमेव महाभागं कपिलर्षिमहं द्विज ।
प्रष्टुमभ्युद्यतो गत्वा श्रेयः किं त्वत्र शंस मे ।७।
तदन्तरे च भवता यदेतद्वाक्यमीरितम् ।
तत्रैव परमार्थार्थी त्वयि चेतः प्रधावति ।८।

श्री पराशरजी ने कहा—ब्राह्मण के यह परमार्थ युक्त वचन सुन कर विनय से झुकते हुए राजा ने उनसे कहा ।१। राजा बोले—हे भगवन् !

आपके कहे हुए परमार्थमय वचनों को सुनकर मेरी मनो-वृत्तियों में शांति आगई है ।२। हे ब्रह्मन् ! सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त जिस असंग विज्ञान का आपने मुझे दिग्दर्शन कराया है वह अवश्य ही प्रकृति से परे ब्रह्म है ३। परन्तु, आपने जो यह कहा कि मैं पालकी को नहीं ढो रहा हूँ, पालकी मेरे ऊपर नहीं है अथवा जिस देह ने इसे उठाया हुआ है, वह मुझसे भिन्न है । गुणों की प्रेरणा से प्राणियों की प्रवृत्ति होती है और गुण कर्मों के द्वारा प्रेरित होते हैं तो इसमें मेरा कर्त्तृत्व कैसे माना जायगा ? ४-५। हे परमार्थ के ज्ञाता ! यह सुनते ही मेरा चित्त परमार्थ को जानने के लिये अत्यन्त उत्कंठित हो रहा है ।६। हे द्विज ! 'संसार स्थित मनुष्यों का श्रेय' पूछने के लिये ही मैं महाभाग महर्षि कपिल के पास जाने को तत्पर हूँ ।७। परन्तु मार्ग में ही आपके वचन सुनकर परमार्थ को जानने की अभिलाषा से मेरा चित्त आपके प्रति झुक गया है ।८।

कपिलर्षिर्भगवत: सर्वभूतस्य वै द्विज ।
विष्णोरंशो जगन्मोहनाशायोर्वीमुपागत: ।९।
स एव भगवान्नूनमस्माकं हितकाम्यया ।
प्रत्यक्षतामत्र गतो तथैतद्भवतोच्यते ।१०।
तन्मह्यं प्रणताय त्वं यच्छ्रेय: परमं द्विज ।
तद्वदाखिलविज्ञानजलवीच्युदधिर्भवान् ।११।
भूप पृच्छसि किं श्रेय: परमार्थं नु पृच्छसि ।
श्रेयांस्यपरमार्थानि अशेषाणि च भूपते ।१२
देवाताराधनं कृत्वा धनसम्पदमिच्छति ।
पुत्रानिच्छति राज्यं च श्रेयस्तस्यैव तन्नृप ।१३।
कर्म यज्ञात्मकं श्रेयः फलं स्वर्गाप्तिलक्षणम् ।
श्रेयः प्रधानं च फले तदेवानभिसंहिते ।१४।
आत्मा ध्येय: सदा भूप योगयुक्तैस्तथा परम ।
श्रेयस्तस्यैव संयोग: श्रेयो यः परमात्मन: ।१५।

हे द्विज ! महर्षि कपिल सर्वात्मक भगवान् विष्णु के ही अंश हैं, वह जगत् के मोह को नष्ट करने के लिये ही पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं ९।

परन्तु, आपकी इस प्रकार की वाणी सुनकर मुझे निश्चय हो रहा है कि वही भगवान् कपिल मेरा हित करने की इच्छा से यहाँ आपके रूप में प्रकट हुए हैं ।१०। इसलिये हे द्विज ! जिसमें परम श्रेष्ठ हो, वह आप मुझे प्रसन्नता से बताइये । आप तो सम्पूर्ण विज्ञान तरंगो से सम्पन्न समुद्र के समान हैं ।११। ब्राह्मण ने कहा—हे भूपते ! तुम श्रेय जानना चाहते हो अथवा परमार्थ ? क्योंकि श्रेय तो सभी अपरमार्थिक हैं ।१२। हे राजन् ! देवताओं की आराधना के द्वारा जो मनुष्य धन, सम्पत्ति, पुत्र, राज्यादि की कामना करता है, उसके लिये तो उनकी प्राप्ति ही परम श्रेय है ।१३। स्वर्ग-प्राप्ति रूप फल वाले यज्ञादिक कर्म भी श्रेय हैं, परन्तु प्रमुख श्रेय तो कर्म के फल की कामना न करने में है ।१४। इसलिये हे राजन् ! योगी पुरुषों को तो प्रकृति आदि से परे उस आत्मा का ही चिन्तन करना चाहिये, क्योंकि उसी का संयोग रूप श्रेय यथार्थ श्रेय हैं ।१५।

श्रेयांस्येवमनेकानि शतशोऽथ सहस्रशः ।
सन्त्यत्र परमार्थस्तु न त्वेते श्रूयता च मे ।१६।

धर्माय त्यज्यते किन्तु परमार्थो धनं यदि ।
व्ययश्च क्रियते कस्मात्कामप्राप्त्युपलक्षणः ।१७।

पुत्रश्चेत्परमार्थः स्यात्सोऽप्यन्यस्य नरेश्वर ।
परमार्थभूतः सोऽन्यस्य परमार्थो हि तत्पिता ।१८।

एवं न परमार्थोऽस्ति जगत्यस्मिश्चराचरे ।
परमार्थो हि कार्याणि कारणानामशेषतः ।१९।

राज्यादिप्राप्तिरत्रोक्ता परमार्थतया यदि ।
परमार्था भवन्त्यत्र न भवन्ति च वै ततः ।२०।

ऋग्यजुः सामनिष्पाद्यं यज्ञकर्म मतं तव ।
परमार्थभूतं तत्रापि श्रूयतां गदतो मम ।२१।

यत्तु निष्पाद्यते कार्यं मृदा कारणभूतया ।
तत्कारणानुगमनाज्ज्ञायते नृप मृण्मयम् ।२२।

एवं विनाशिभिर्द्रव्यैः समिदाज्यकुशादिभिः ।
निष्पाद्यते क्रिया या तु सा भवित्री विनाशिनी ।२३।

इस प्रकार श्रेय सैंकड़ों-सहस्रों भाँति के हैं, परन्तु यह सब परमार्थिक नहीं हैं, अब मैं परमार्थ कहता हूं–उसे सुनो ।१६। यदि धन को परमार्थ समझें तो धर्म के लिए उसका त्याग क्यों न करें ? और इच्छित भोगों की प्राप्ति के लिए उसका व्यय क्यों करें ? ।१७। यदि पुत्र को परमार्थ कहें तो वह अन्य का परमार्थभूत है और उसका पिता भी अन्य का पुत्र होने से उसका परमार्थ हुआ ।१८। इसलिये इस चराचर विश्व में पिता का कार्य रूप पुत्र भी परमार्थ सिद्ध नहीं होता । यदि ऐसा हो जाय तो सभी कारणों के कार्य परमार्थ ही न बन जाँय ! ।१६। यदि राज्यादि की प्राप्ति को परमार्थ कहें तो यह सदैव पास नहीं रहते, इसलिए यह भी परमार्थ नहीं हो सकते ।२०। यदि ऋक् यजुः साम रूप वेदत्रयी से सम्पन्न होने वाले यज्ञ को परमार्थ समझें तो उसके विषय में भी मेरी बात सुनो ।२१। हे राजन् ! जो वस्तु कारण रूपा मिट्टी का कार्य होती है (जैसे घड़ा इत्यादि), वह वस्तु कारण की अनुगामिनी होने से मिट्टी ही समझी जाती है ।२२। इसलिए जो कर्म समिधा, घृत और कुशादि नष्ट होने वाले पदार्थों से सम्पन्न होता है वह भी नष्ट होने वाला होगा ।२३।

अनाशी परमार्थश्च प्राज्ञैरभ्युपगम्यते ।
तत्तु नाशि न सन्देहो नाशिद्रव्योपपादितम् ।२४।
तदेवाफलद कर्म परमार्थो मतस्तव ।
मुक्तिसाधनभूतत्वात्परमार्थो न साधनम् ।२५।
ध्यानं चैवात्मनो भूप परमार्थार्थशब्दितम् ।
भेदकारि परेभ्यस्तु परमार्थो न भेदवान् ।२६।
परमात्मात्मनोर्योगः परमार्थ इतीष्यते ।
मिथ्यैतदन्यद्द्रव्यं हि नैति तद्द्रव्यतां यतः ।२७।
तस्माच्छ्रेयांस्यशेषाणि नृपैतानि न संशयः ।
परमार्थस्तु भूपाल सङ्क्षेपाच्छ्रूयतां मम ।२८।

एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः ।२९।
परज्ञानमयोऽसद्भिर्नामजात्यादिभिर्विभुः ।
न योगवान्न युक्तोऽभून्नैव पार्थिव योक्ष्यते ।३०।

ज्ञानीजन परमार्थ को अविनाशी कहते हैं और नाशवान द्रव्यों से सम्पन्न होने के कारण कर्म नाशवान हैं, उसमें संदेह नहीं है ।२४। यदि फल की आशा से रहित निष्काम कर्म को परमार्थ कहें तो वह मोक्ष रूप फल का साधक होने से ही है, परमार्थ नहीं हो सकता ।२५। यदि शरीरादि से आत्मा की भिन्नता विचार कर उसके चिंतन को परमार्थ कहें तो वह अनात्मा से आत्मा का भेद करने वाला है और परमार्थ भेद रहित है ।२६। यदि परमात्मा और जीवात्मा के संयोग को परमार्थ कहें तो अन्य द्रव्य से संयोग नहीं हो सकता, इसलिए हे राजन् ! यह सभी श्रेय है । अब जो परमार्थ है, उसे संक्षिप्त रूप से सुनो ।२८। आत्मा एक है, वह सर्वव्यापी, सम, शुद्ध, निर्गुण, प्रकृति से परे तथा जन्म-वृद्धि आदि से रहित, सर्वगामी और अव्यय है ।२९। हे राजन् ! वह परम ज्ञानमय हैं, असत् नाम तथा जाति आदि से वह कभी भी संयुक्त होने वाला नहीं है ।३०।

तस्यात्मपरदेहेषु सतोऽप्येकमयं हि यत् ।
विज्ञानं परमार्थोऽसौ द्वैतिनोऽतथ्यदर्शिनः ।३१।
वेणुरन्ध्रप्रभेदेन भेदः षड्जादिसंज्ञितः ।
अभेदव्यापिनो वायोस्तथास्य परमात्मनः ।३२।
एकस्वरूपभेदश्च बाह्यकर्मप्रवृत्तिजः ।
देवादिभेदेऽपध्वस्ते नास्त्येवावरणोहि सः ।३३।

वह आत्मा अपने तथा अन्यान्य प्राणियों के देहों में स्थित रहता हुआ भी एक है—इस प्रकार का विशेष ज्ञान ही परमार्थ है जो लोग द्वैत भावना वाले हैं वे अपरमार्थ का दर्शन करते हैं ।३१। जैसे अभिन्न भाव वाले एक ही वायु के द्वारा बाँसुरी के छेदों के भेद से षड्ज आदि विभिन्न

भेद हो जाते हैं वैसे एक ही परमात्मा के अनेक भेद जान पड़ते हैं ।३२। एक रूप आत्मा के अनेक भेद बाह्य शरीरादि की कर्म प्रवृत्ति से हुए हैं । देवादि शरीरों के भेद को जान लेने पर वह भेद ज्ञान नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि जब तक अविद्या का आवरण रहता है तभी तक वह स्थित रहता है ।३३।

— :※※: —

पंद्रहवाँ अध्याय

इत्युक्ते मौनिनं भूयश्चिन्तयानं महीपतिम् ।
प्रत्युवाचाथ विप्रोऽसावद्वैतान्तर्गतां कथाम् ।१।
श्रूयतां नृपशार्दूल यद्गीतमृभुणा पुरा ।
अवबोधं जनयता निदाघस्य महात्मनः ।२।
ऋभुर्नामाभवत्पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
विज्ञाततत्त्वसद्भावो निसर्गादेव भूपते ।३।
तस्य शिष्यो निदाघोऽभूत्पुलस्त्यतनयः पुरा ।
प्रादादशेषविज्ञानं स तस्मै परया मुदा ।४।
अवाप्तज्ञानतन्त्रस्य न तस्याद्वैतवासना ।
स ऋभुस्तर्कयामास निदाघस्य नरेश्वर ।५।
देविकायास्तटे वीरनगरं नाम वै पुरम् ।
समृद्धिमतिरम्यं च पुलस्त्येन निवेशितम् ।६।
रम्योपवनपर्यन्ते स तस्मिन्पार्थिवोत्तम ।
निदाघो नाम योगज्ञ ऋभुशिष्योऽवसत्पुरा ।७।

श्री पराशरजी ने कहा- हे मैत्रेयजी ! यह सुनकर राजा मौन हुए मन ही मन सोचने लगे । यह देखकर उन ब्राह्मण ने राजा को अद्वैत विषयक यह वृतान्त सुनाया ।१। ब्राह्मण ने कहा—हे नृपशार्दूल ! पूर्वकाल की बात हैं- महर्षि ऋभु ने महात्मा निदाघ को जो उपदेश दिया था, उसे

श्रवण करो ।२। हे राजन् ! परमेष्ठी ब्रह्माजी का जो ऋभु नामक पुत्र था, वह स्वभाव से ही परमार्थ तत्व का ज्ञाता था ।३। महर्षि पुलस्त्य का पुत्र निदाघ उनका शिष्य था। उसे अत्यन्त प्रसन्न होकर महर्षि ऋभु ने तत्वोपदेश दिया ।४। हे नरेश्वर ! उस समय ऋभु को प्रतीत हुआ कि सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान होने पर भी निदाघ अद्वैत के प्रति निष्ठावान नहीं हैं ।५। देविका-नदी के किनारे पुलस्त्यजी ने वीर नगर नामक एक अति सुरम्य और समृद्ध नगर की स्थापना की थी ६। वह नगर उपवनादि से सुशोभित था,जिसमें योग-वेत्ता ऋभु-शिष्य निदाघ निवास करता था ७।

दिव्ये वर्षसहस्रे तु समतीतेऽस्य तत्पुरम् ।
जगाम स ऋभुः शिष्यं निदाघमवलोकक: ।८।
स्थितस्तेन गृहीतार्घ्यो निजवेश्म प्रवेशितः ।९।
प्रक्षायिताङ्घ्रिपाणि च कृतासनपरिग्रहम् ।
उवाच स द्विज श्रेष्ठो भुज्यतामिति सादरम् ।१०।
भो विप्रवर्य भोक्तव्यं यदन्नं भवतो गृहे ।
तत्कथ्यतां कदन्नेषु न प्रीतिः सततं मम ।११।
सक्तुयावकवाटयानामपूपानां च मे गृहे ।
यद्रोचते द्विजश्रेष्ठ तत्वं भुङ्क्ष्व यथेच्छया ।१२।
कदन्नानि द्विजैतानि मृष्टमन्नं प्रयच्छ मे ।
संयावपायसादीनि द्रप्सफाणितवन्ति च ।१३।
हे हे शालिनि मद्गेहे यत्किञ्चिदतिशोभनम् ।
भक्ष्योपसाधनं मृष्टं तेनास्यन्नं प्रसाधय ।१४।

एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत होने पर महर्षि ऋभु अपने शिष्य निदाघ को देखने की इच्छा से उस नगर में गये ।८। जब निदाघ बलिवैश्वदेव के पश्चात् अपने द्वार पर अतिथियों की प्रतीक्षा में खड़ा था, तभी वे महर्षि उसे दिखाई दिये और वह उन्हें अर्घ्य देकर अपने घर में ले गया ।९। उसने उनके हाथ-पाँव धुलाकर उन्हें आसन पर बिठाया और आदर

सहित बोला-भोजन करिये ।१०। ऋभु ने कहा-हे विप्र श्रेष्ठ ! आपके यहाँ जिस अन्न का भोजन करना है, वह मुझे बताओ। क्योंकि कुत्सित अन्न के प्रति मुझे अरुचि है ।११। निदाघ बोला-हे द्विजोत्तम ! मेरा यहाँ सत्तू, जौ की लप्सी, बाटी और पूए बनाये गये हैं, इनमें से जो आप खाना चाहें, वही भोजन करें ।१२। ऋभु ने कहा-हे द्विज ! यह सभी कुत्सित अन्न हैं, मुझे तो हलुआ, खीर, मट्ठा, मिष्ठान्नादि स्वादिष्ट अन्न का भोजन कराओ ।१३। निदाघ ने कहा-हे शालिनि ! मेरे घर जो श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पदार्थ हो, उसी से इनके लिये अति सुस्वादु भोजन तैयार करो ।१४।

इत्युक्ता तेन सा पत्नी मृष्टमन्नं द्विजस्य यत् ।
प्रसाधितवती तद्वै भर्तुर्वचनगौरवात् ।१५।
तं भुक्तवन्तमिच्छातो मृष्टमन्नं महामुनिम् ।
निदाघः प्राह भूपाल प्रश्रयावनतः स्थितः ।१६।
अपि ते परमा तृप्तिरुत्पन्ना तुष्टिरेव च ।
अपि ते मानसं स्वस्थमाहारेण कृतं द्विज ।१७।
क्व निवासो भवान्विप्र क्व च गन्तुं समुद्यतः ।
आगम्यते च भवता यतस्तच्च द्विजोच्यताम् ।१८।
क्षुद्यस्य तस्य भुक्तेऽन्ने तृप्तिर्ब्राह्मण जायते ।
न मे क्षुन्नाभवत्तृप्ति कस्मान्मां परिपृच्छसि ।१९।
वह्निना पार्थिवे धातौ क्षपिते क्षुत्समुद्भवः ।
भवत्यम्भसि च क्षीणे नृणां तृडपि जायते ।२०।
क्षुत्तृष्णे देहधर्माख्ये न ममैते यतो द्विज ।
ततः क्षुत्सम्भवाभावात्तृप्तिरस्त्येव मे सदा ।२१।

ब्राह्मण बोले- निदाघ द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उसकी पत्नी ने पति-आज्ञा से आदर पूर्वक उनके लिये अति सुस्वादु भोजन बनाया ।१५। हे राजन् ! जब ऋभु ने अपनी इच्छा के अनुसार भोजन कर लिया तब निदाघ ने अत्यन्त विनय पूर्वक उन महामुनी से कहा ।१६। निदाघ बोले-हे द्विज भोजन करके आपका चित्त प्रसन्न तो हुआ ? आप पूर्ण

रूपेण तृप्त और सन्तुष्ट हो गये ? ।१७। हे भगवन् ! आप कहाँ के निवासी हैं ? कहाँ जा रहे हैं और कहाँ से आ रहे हैं ? ।१८। ऋभु ने कहा—हे विप्र ! भूखे को ही तृप्ति होती है। परन्तु, मुझे तो कभी भूख ही नहीं लगती, फिर तृप्ति विषयक प्रश्न ही कैसा ? ।१९। जब जठराग्नि ठोस धातुओं को क्षीण कर देती है, तब भूख जल को शुष्क कर देती है, तब प्यास लगती है। हे द्विज ! यह भूख और प्यास दोनों लगती है ।२०। हे द्विज ! यह भूख और प्यास दोनों ही देह के धर्म हैं, मेरे नहीं । इसलिये मैं कभी भूखा न होकर सदा ही तृप्त रहता हूँ ।२१।

मनसः स्वस्थता तुष्टिश्चित्तधर्माविमौ द्विज ।
चेतसो यस्य तत्पृच्छ पुमानेभिर्न युज्यते ।२२।
क्वनिवासस्तवेत्युक्तं क्व गन्तासि च यत्त्वया ।
कुतश्चागम्यते तत्र त्रितयेऽपि निबोध मे ।२३।
पुमान्सर्वगतो व्यापी आकाशवदयं यतः ।
कुतः कुत्र क्व गन्तासीत्येतदप्यर्थवत्कथम् ।२४।
सोऽहं गन्ता न चागन्ता नैकदेशनिकेतनः ।
त्वं चान्ये च न च त्वं च नान्ये नैवाहमप्यहम् ।२५।
मृष्टं न मृष्टमप्येषा जिज्ञासा मे कृता तव ।
किं वक्ष्यसीति तत्रापि श्रूयतां द्विजसत्तम ।२६।
किमस्वाद्वथ वा मृष्टं भुञ्जतोऽस्ति द्विजोत्तम ।
मृष्टमेव यदामृष्टं तदेवोद्वेगकारकम् ।२७।
अमृष्टं जायते मृष्टं मृष्टादुद्विजते जनः ।
आदिमध्यावसानेषु किमन्नं रुचिकारकम् ।२८।

स्वस्थता और संतुष्टि यह भी मन के धर्म हैं, आत्मा से इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिये हे विप्र ! जिसके यह धर्म हैं, उसी से इनके विषय में प्रश्न करो ।२२। तथा तुमने मेरे विषय में यह पूछा कि कहाँ का निवासी हूँ, कहाँ जा रहा हूँ और कहाँ से आया हूँ, सो इसके विषय में मेरे विचार सुनो ।२३। आत्मा आकाश के समान व्यापक होने

से सर्वगत है, इसलिये कहां रहते, कहाँ से आये, कहाँ जाते हो यह प्रश्न भी निरर्थक ही हैं।२४। क्योंकि मैं तो न कहीं जाता हूँ और न कहीं रहने का मेरा स्थान है। यथार्थ में तो न तू तू है, और न मैं मैं हूँ और न अन्य अन्य हैं।२५। वास्तव में मधुर मधुर नहीं है। मैंने तुमसे जो मधुर अन्न माँगा था उससे भी तुम्हारे विचार ही सुनना चाहता था।२६। हे द्विजोत्तम ! खाने वाले के लिए सुस्वादु और अस्वादु का विचार ही कैसा? क्योंकि जब कालान्तर में स्वादिष्ट पदार्थ ही स्वाद-रहित हो जाता है तो वही उद्वेग उत्पन्न करने वाला हो जाता है।२७। इसी प्रकार जो अरुचिकर पदार्थ हैं वह कभी रुचिकर प्रतीत होने लगते हैं और रुचिकर पदार्थ कभी उद्विग्न करने वाले हो जाते हैं। बताओ ऐसा पदार्थ कौन-सा है जो आदि, मध्य और अन्त तीनों समय ही रुचिकर प्रतीत हो ?।२८।

मृण्मयं हि गृहं यद्वन्मृदा लिप्तं स्थिर भवेत्।
पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः।२९।
यवगोधूममुद्गादि घृत तैलं पयो दधि।
गुडं फलादीनि तथा पार्थिवाः परमाणवः।३०।
तदेतद्भवता ज्ञात्वा मृष्टामृष्टविचारि यत्।
तन्मनस्समतालम्बि कार्यं साम्यं हि मुक्तये।३१।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य परमार्थाश्रितं नृप।
प्रणिपत्य महाभागो निदाघो वाक्यमब्रवीत्।३२।
प्रसीद मद्धितार्थाय कथ्यतां यत्त्वमागतः।
नष्टो मोहस्तवाकर्ण्य वचांस्येतानि मे द्विज।३३।
ऋभुरस्मि तवाचार्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज
इहागतोऽहं यास्यामि परमार्थस्तवोदितः।३४।
एवमेकमिद विद्धि न भेदि सकलं जगत्।
वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूप परमात्मनः।३५।
तथेत्युक्त्वा निदाघेन प्रणिपातपुरःसरम्।
पूजितः परया भक्त्या इच्छातः प्रययावृभु.।३६।

जैसे मिट्टी का घर मिट्टी से लिप पुत कर दृढ़ होता है, वैसे ही यह पार्थिव शरीर पार्थिव अन्न कणों से परिपुष्ट होता है।२९। जौ, गेंहू, मूँग, घी, तैल, दूध, दही, गुड़ और फलादि सभी पदार्थ पार्थिव परमाणु ही हैं।३०। ऐसा जानकर तुम अपने सुस्वादु-अस्वादु की चिन्ता करने वाले अपने चित्त को समदर्शी बनाओ, क्योंकि समत्व ही मोक्ष का एक मात्र उपाय है।३१। ब्राह्मण ने कहा—हे राजन्! ऋभु के यह परमार्थमय वचन सुनकर महाभाग निदाघ ने उन्हें प्रणाम किया और ऋषि से कहने लगा।३२। हे प्रभो! आप प्रसन्न हों। मेरे कल्याण-साधन की इच्छा से आने वाले आप कौन हैं? आपकी वाणी से मेरा सब मोह दूर हो गया है।३३। ऋभु बोले—हे विप्र! मैं तेरा गुरु ऋभु हूँ। तुझे सत्-असत् का विवेक कराने वाली बुद्धि देने की इच्छा से ही मैं यहाँ आया था। जो परमार्थ है, वह मैं तुझे बता चुका। अब मैं जा रहा हूँ।३४। इस परमार्थ तत्व का विचार करके तू इस सम्पूर्ण विश्व को एक परमात्मा भगवान वासुदेव का रूप ही समझ। इसमें किञ्चित भी भेद नहीं है।३५। ब्राह्मण ने कहा—इसके पश्चात् निदाघ ने उनका वचन स्वीकार करके उन्हें प्रणाम किया और उसके द्वारा परम भक्तिपूर्वक आदर को प्राप्त हुए ऋभु स्वेच्छापूर्वक वहाँ से चले गये।३६।

—❀✻❀—

सोलहवाँ अध्याय

ऋभुर्वर्षसहस्रे तु समतीते नरेश्वर।
निदाघज्ञानदानाय तदेव नगरं ययौ।१।

नगरस्य बहिः सोऽथ निदाघं ददृशे मुनिः।
महाबलपरीवारे पुरं विशति पार्थिवे।२।
दूर स्थितं महाभागं जनसम्मर्दवर्जकम्।
क्षुत्क्षामकण्ठमायान्तमरण्यात्ससमित्कुशम्।३।

दृष्ट्वा निदाघं स ऋभुरुपगम्याभिवाद्य च ।
उवाच कस्मादेकान्ते स्थीयते भवता द्विज ।४।
भो विप्र जनसम्मर्दो महानेश नरेश्वरः ।
प्रविविक्षुः पुरं रम्यं तेनात्र स्थीयते मया ।५।
नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः ।
कथ्यतां मे द्विजश्रेष्ठ त्वमभिज्ञो मतो मम ।६।
योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुच्छ्रितम् ।
अधिरूढो नरेन्द्रोऽयं परिलोकस्तथेतरः ।७।

ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! फिर एक हजार वर्ष बीत जाने पर महर्षि ऋभु निदाघ को ज्ञानोपदेश करने के लिये पुनः उसी नगर में पहुँचे ।१। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि उस देश का राजा बहुत-सी सेनादि के सहित धूम-धाम सहित नगर में प्रविष्ट हो रहा है तथा वन से कुश और समिधा लेकर आया हुआ निदाघ भीड़ से दूर हटकर भूखा-प्यासा एक ओर खड़ा है ।२-३। यह देखकर महर्षि ऋभु उस निदाघ के पास गये और अभिवादन पूर्वक बोले—हे द्विज ! तुम यहाँ एकान्त में क्यों खड़े हो? ।४। निदाघ ने कहा—आज इस अत्यन्त रमणीक नगर में राजा प्रवेश कर रहा है, इसलिये मार्ग में बहुत भीड़ होने के कारण मैं यहाँ खड़ा हूँ ।५। ऋभु ने कहा—हे विप्रश्रेष्ठ ! तुम यहाँ की सब बातें जानते प्रतीत होते हो । इसलिये बताओ कि इनमें राजा कौन-सा है तथा अन्य पुरुष कौन हैं ? ।६। निदाघ ने कहा—पर्वत जैसे ऊँचे इस हाथी पर जो चढ़ा हुआ है, वही राजा है तथा अन्य पुरुष इसके परिवार के हैं ।७।

एतौ हि गजराजानौ युगपद्दर्शितौ मम ।
भवता न विशेषेण पृथक्चिह्नोपलक्षणौ ।८।
तत्कथ्यतां महाभाग विशेषो भवतानयोः ।
ज्ञातुमिच्छाम्यहं कोऽत्र गजः को वानराधिपः ।९।
गजो योऽयमधो ब्रह्मन्नुपर्यस्यैष भूपतिः ।
वाह्यवाहकसम्बन्धं को न जानाति वै द्विज ।१०।

जानाम्यहं यथा ब्रह्मंस्तथा मामवबोधय ।
अधःशब्दनिगद्यं हि किं चोर्ध्वमभिधीयते ।११।
इत्युक्तः सहसारुह्य निदाघः प्राह तमृभुम् ।
श्रूयतां कथयाम्येष यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।१२।
उपर्यहं यथा राजा त्वमधः कुञ्जरो यथा ।
अवबोधाय ते ब्रह्मन्दृष्टान्तो दर्शितो मया ।१३।
त्वं राजेव द्विजश्रेष्ठ स्थितोऽहं गजवद्यदि ।
तदेतत्त्वं समाचक्ष्व कतमस्त्वमहं तथा ।१४।

ऋभु ने कहा--तुमने मुझे राजा और हाथी दोनों एक साथ दिखाये परन्तु इन दोनों के पृथक्-पृथक् लक्षण नहीं बताये ।८। इसलिये हे महाभाग ! इन दोनों की पृथक्-पृथक् विशेषताएँ मुझे बताओ, जिससे मैं यह जान सकूँ कि इनमें कौन राजा और कौन हाथी है ? ।९। निदाघ ने कहा--इनमें से नीचे वाला हाथी और उसके ऊपर वाला राजा है । हे द्विज ! इन दोनों के वाह्य-वाहक सम्बन्ध को कौन नहीं जानता ? ।१०। ऋभु ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मुझे तो इस प्रकार समझाओ जिससे मैं 'नीचे' और 'ऊपर' शब्दों के वाच्यार्थ समझ सकूँ ।११। ब्राह्मण ने कहा--ऋभु की बात सुनकर निदाघ ने सहसा उनके ऊपर चढ़कर कहा--आपने जो पूछा है, उसे कहता हूँ, सुनिये ।१२। इस समय मैं तो राजा के समान ऊपर हूँ और आप हाथी के समान नीचे हैं । हे ब्रह्मन् ! आपके समझाने के लिये ही मुझे यह दृष्टान्त दिखाना पड़ा है ।१३। ऋभु ने कहा--हे द्विजवर ! यदि तुम राजा के समान हो तो मैं हाथी के समान हूँ, तो यह बताओ कि तुम कौन हो और मैं कौन हूँ ? ।१४।

इत्युक्तः सत्वरं तस्य प्रगृह्य चरणावुभौ ।
निदाघस्त्वाह भगवानाचार्यस्त्वमृभुर्ध्रुवम् ।१५।
नान्यस्याद्वैतसंस्कारसंस्कृतं मानसं तथा ।
यथाचार्यस्य तेन त्वां मन्ये प्राप्तमहं गुरुम् ।१६।
तवोपदेशदानाय पूर्वसुश्रूषणादृतः ।
गुरुस्नेहादृभुर्नाम निदाघ समुपागतः ।१७।

तदेतदुपदिष्टं ते सङ्क्षेपेण महामते ।
परमार्थसारभूतं यत्तदद्वैतमशेषतः ।१८।
एवमुक्त्वा ययौ विद्वान्निदाघ स ऋभुर्गुरुः ।
निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत् ।१९।
सर्वभूतान्यभेदेन ददृशे स तदात्मनः ।
यथा ब्रह्मपरो मुक्तिमवाप परमां द्विज ।२०।
तथा त्वमपि धर्मज्ञ तुल्यात्मरिपुबान्धवः ।
भव सर्वगत जानन्नात्मानमवनीपते ।२१।
सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः ।
भ्रान्तिदृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन्पृथक्पृथक् ।२२।
एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत् ।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेतदात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ।२३।
इतीरितस्तेन स राजवर्यस्तत्याज भेदं परमार्थदृष्टिः ।
स चापि जातिस्मरणाप्तबोधस्तत्रैव जन्मन्यपवर्गमाप ।२४।
इति भरतनरेन्द्रसारवृत्तं कथयति यश्च शृणोति भक्तियुक्तः ।
स विमलमतिरेति नात्ममोहं भवति च संसरणेषु मुक्तियोग्यः ।२५

ब्राह्मण बोले—ऋभु की बात सुनते ही निदाघ ने उनके चरण पकड़ लिए और बोला कि अवश्य ही आप आचार्य श्रेष्ठ महर्षि ऋभु हैं ।१५। क्योंकि हमारे आचार्यजी के समान अद्वैत चित्त वाला अन्य कोई नहीं है, इसलिए मैं समझता हूँ कि आप मेरे गुरुजी ही यहाँ पधारे हैं ।१६। महर्षि ऋभु ने कहा—हे निदाघ ! तुम पहले मेरी बहुत सेवा-सुश्रूषा कर चुके हो, इसलिए तुम्हारे स्नेह के वशीभूत होकर ही मैं ऋभु नामक गुरु तुम्हें उपदेश देने के लिए ही यहाँ आया हूँ ।१७। हे महामते ! सब पदार्थों में अद्वैत एवं आत्म-बुद्धि रखना, परमार्थ का यही सार है, जो मैंने तुम्हारे प्रति संक्षेप में कह दिया है ।१८। ब्राह्मण ने कहा—निदाघ को ऐसा उपदेश देकर गुरुवर ऋभु चले गये और तब निदाघ भी अद्वैत-चिन्तन में लग गया ।१९। फिर वह सब जीवों को अपने से अभिन्न

देखने लगा। हे राजन् ! जैसे उस ब्रह्म परायण को मोक्ष पद की प्राप्ति हुई, वैसे ही तू भी अपने आत्मा, शत्रु तथा मित्रादि में अभेद रखकर स्वयं को ही सर्वगत मानता हुआ मोक्ष को प्राप्त हो।२०।-२१। जैसे एक ही आकाश श्वेत-नील आदि अनेक रूप दिखाई देता है, वैसे ही भ्रान्त-दर्शियों को एक ही आत्मा अलग-अलग दिखाई देता है।२२। इस संसार में सब कुछ एक आत्मा ही है, वही अविनाशी है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं। मैं और तू यह सब भी आत्म रूप है इसलिए भेद वाले ज्ञान रूपी मोह का त्याग कर।२३। श्री पराशरजी ने कहा—उनका उपदेश सुनकर सौवीरराज ने परमार्थ दृष्टि के आश्रय से भेद बुद्धि का त्याग किया और वह पूर्वजन्म के स्मरण वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ भी ज्ञानमय होने से उसी जन्म में मोक्ष को प्राप्त हुए।२४। राजेन्द्र भरत के इतिहास के इस सारभूत वृतान्त को कहने या सुनने की बुद्धि स्वच्छ हो जाती है, उसे कभी आत्म विस्मृत नहीं होती और वह जन्म-जन्मान्तर में सदा मोक्ष के योग्य रहता है।२५।

—: ❀❀ :—

तृतीय अंश

पहला अध्याय

कथिता गुरुणा सम्यग्भूसमुद्रादिसंस्थितिः ।
सूर्यादीनां च संस्थानं ज्योतिषां चातिविस्तरात् ।१।
देवादीनां तथा सृष्टिर्ऋषीणां चापि वर्णिता ।
चातुर्वर्ण्यस्य चोत्पत्तिस्तिर्यग्योनिगतस्य च ।२।
ध्रुवप्रह्लादचरितं विस्तराच्च त्वयोदितम् ।
मन्वन्तराण्यशेषाणि श्रोतुमिच्छाम्यनुक्रमात् ।३।
मन्वन्तराधिपांश्चैव शक्रदेवपुरोगमान् ।
भवता कथितानेताञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं गुरो ।४।
अतीतानागतानीह यानि मन्वन्तराणि वै ।
तान्यहं भवतः सम्यक्कथयामि यथाक्रमम् ।५।
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं परः स्वारोचिषस्तथा ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ।६।
षडेते मनवोऽतीतास्साम्प्रतं तु रवेस्सुतः ।
वैवस्वतोऽयं यस्यैतत्सप्तमं वर्ततेऽन्तरम् ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे गुरो ! पृथिवी, समुद्र और सूर्यादि की स्थिति का आपने विस्तार सहित मुझसे वर्णन किया ।१। आपने देवताओं और ऋषियों आदि की उत्पत्ति, चारों वर्ण और तिर्यक् योनि के प्राणियों की रचना का भी भले प्रकार वर्णन किया ।२। ध्रुव और प्रह्लाद के चरित्र भी अपने विस्तृत रूप से सुनाये । अब मैं आपके मुख कमल से सभी मन्वन्तरों और देवता-इन्द्रादि के सहित मन्वन्तराधिपति मनुष्यों का वृत्तांत सुनने की इच्छा करता हूँ ।३-४। श्री पराशरजी ने कहा- अब तक जितने

मन्वन्तर हो चुके तथा भविष्य में जो भी होंगे, उन सभी का क्रमपूर्वक वर्णन करता हूँ।५। पहिले मनु स्वायम्भुव हुए, उनके पश्चात् स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, और चाक्षुष हुए।६। यह छः मनु पहिले हो चुके हैं यह सातवाँ मन्वन्तर वर्तमान है, जिसके मनु सूर्य-पुत्र वैवस्वत हैं।७।

स्वायम्भुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं मया।
देवास्सप्तर्षयश्चैव यथावत्कथिता मया।८।
अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोस्स्वारोचिषस्य तु।
मन्वन्तराधिपान्सम्यग्देवर्षीस्तस्सुतांस्तथा।९।
पारावतातास्सतुषिता देवास्स्वारोचिषेऽन्तरे।
विपश्चित्तत्र देवेन्द्रो मैत्रेयासीन्महाबलः।१०।
ऊर्ज्जः स्तम्भस्तथा प्राणो वातोऽथ पृषभस्तथा।
निरयश्च परीवांश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन्।११।
चैत्रकिम्पुरुषाद्याश्च सुतास्स्वारोचिषस्य तु।
द्वितीयमेतद्व्याख्यातमन्तरं शृणु चोत्तमम्।१२।
तृतीयेऽप्यन्तरे ब्रह्मन्नुत्तमो नाम यो मनुः।
सुशान्तिर्नाम देवेन्द्रो मैत्रेयासीत्सुरेश्वरः।१३।
सुधामानस्तथा सत्या जपाश्चाथ प्रतर्दनाः।
वशवर्तिनश्च पञ्चैते गणा द्वादशकास्स्मृताः।१४।
वसिष्ठतनया ह्येते सप्त सप्तर्षयोऽभवन्।
अजः परशुदीप्ताद्यास्तथोत्तममनोस्सुताः।१५।

कल्प के आदि में हुए जिस स्वायंभुव-मन्वन्तर के विषय में मैंने कहा था, उसके देवता और सप्तर्षियों को भी मैं पहिले बता चुका हूँ।८। अब मैं स्वारोचिष मन्वन्तर के अधिकारी देवता, ऋषि और मनु-पुत्रों का वर्णन करूँगा।९। हे मैत्रेयजी ! स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत और तुषितगण देवता और महाबली विपश्चित् इन्द्र थे।१०। उस समय जो सप्तर्षि थे उनके नाम ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, पृषभ, निरय और परीवान् थे।११। चैत्र और किम्पुरुष आदि उन स्वारोचिष मनु के पुत्र हुए।

इस प्रकार जो वर्णन किया गया वह दूसरे मन्वन्तर का है. अब तीसरे उत्तम नामक मन्वन्तर का विवरण श्रवण करो ।१२। हे ब्रह्मन् ! उस मन्वन्तर में उत्तम नामक मनु उसके अधिपति और सुशांति नामक देवेन्द्र हुए ।१३। उस काल में सुधाम, सत्य जप, प्रतर्दन और वशवर्ती इन पाँच में बारह-बारह देवता थे ।१४। वसिष्ठजी के सात पुत्र सप्तर्षि तथा अज, परशु, दीप्त आदि नाम वाले उत्तम मनु के पुत्र थे ।१५।

तामसस्यान्तरे देवास्सुपारा हरयस्तथा ॥
सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गणाः ॥१६॥
शिबिरिन्द्रस्तथा चासीच्छतयज्ञोपलक्षणः ॥
सप्तर्षयश्च तेषां तेषां नामानि मे शृणु ॥१७॥
ज्योतिर्धामा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वनकस्तथा ॥
पीवरश्चर्षयो ह्येते सप्त तत्रापि चान्तरु ॥१८॥
नरः ख्यातिः केतुरूपो जानुजङ्घादयस्तथा ॥
पुत्रास्तु तामसस्यासान्राजानस्सुमहाबलाः ॥१९॥
पञ्चमे वापि मैत्रेय रैवतो नाम नामत. ॥
मनुर्विभुश्च तत्रेन्द्रो देवांश्चात्रान्तरे शृणु ॥२०॥
अमिताभा भूतरया वै कुण्ठास्ससुमेधसः ॥
एते देवगणास्तत्र चतुर्दश चतुर्दश ॥२१॥
हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः ॥
वेदबाहुस्सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः ॥
एते सप्तर्षयो विप्र तत्रासन्रैवतेऽन्तरे ॥२२॥
बलबन्धुश्च सम्भाव्यस्सत्यकाद्याश्च तत्सुताः ॥
नरेन्द्राश्च महावीर्या बभूवुर्मुनिसत्तम ॥२३॥

तामस मन्वन्तर में सुपार, हरि, सत्य और सुधि-इन चार देव-गणों में से प्रत्येक वर्ग में सत्ताईस गण थे ।१६। सौ यज्ञ का कर्त्ता राजा शिबि उस समय का इन्द्र था और जब सप्तर्षि थे उनके भी नाम सुनो–ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर ।१८। तथा नर, ख्याति, केतुरूप और जानुजंघ आदि इन तामस मनु के महाबलवान् पुत्र

राज्य के अधिकारी थे ।१९। हे मैत्रेयजी ! पाँचवें मन्वन्तर के मनु रैवत थे । विभु नामक इन्द्र और जो-जो देवगण हुए उनके नामों को सुनो ।२०। इस मन्वन्तर में अमिताभ भूतरय, वैकुण्ठ और सुमेधा नामक देवताओं के वर्ग थे, प्रत्येक वर्ग में चौदह गण थे ।२१। हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि—यह उस मन्वन्तर के सप्तर्षि थे ।२२। हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय रैवत मनु के अत्यत पराक्रमी पुत्र बलबन्धु, सम्भाव्य और सत्यक आदि राज्य के अधिकारी हुए ।२३।

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतास्तथा ।
प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवस्स्मृताः ।२४।
विष्णुमाराध्य तपसा स राजर्षिः प्रियव्रतः ।
मन्वन्तराधिपानेताँल्लब्धवानात्मवंशजान् ।२५।
षष्ठे मन्वन्तरे चासीच्चाक्षुषाख्यस्तथा मनुः ।
मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवानपि निबोध मे ।२६।
आप्याः प्रसूता भव्याश्च पृथुकाश्च दिवौकसः ।
महानुभावा लेखाश्च पञ्चैते ह्यष्टका गणाः ।२७।
सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो मधुः ।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षयः ।२८।
ऊरुः पुरुश्शतद्युम्नप्रमुखास्सुमहाबलाः ।
चाक्षुषस्य मनोः पुत्राः पृथिवीपतयोऽभवन् ।२९।

हे मैत्रेयजी ! स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत-यह चार मनु राजा प्रियव्रत के कुल में उत्पन्न हुए बताये जाते हैं ।२४। राजर्षि प्रियव्रत ने तप के द्वारा भगवान विष्णु को प्रसन्न करके अपने वंश में उद्भूत हुए इन चार मनुष्यों को पाया था ।२५। छठवें मन्वन्तर में चाक्षुष नामक मनु हुए । उस समय के इंद्र का नाम मनोजव था । अब उस मन्वन्तर के देवताओं के नाम सुनो ।२६। आप्य, प्रसून, भव्य, पृथक् और लेख यह पाँच प्रकार के देवता थे । इनके प्रत्येक गण में आठ देवता हुए ।२७। उस

समय सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु नामक सप्तर्षि थे।२८। चाक्षुष मनु के अत्यन्त बली पुत्र पूरु, पुरु और शतद्युम्नादि राज्य के अधिकारी हुए।२९।

विवस्वतस्सुतो विप्र श्राद्धदेवो महाद्युतिः।
मनुस्संवर्त्तते धीमान् साम्प्रतं सप्तमेऽन्तरे।३०।
आदित्यवसुरुद्राद्या देवाश्चात्र महामुने
पुरन्दरस्तथवात्र मैत्रेय त्रिदशेश्वरः।३१।
वसिष्ठः काश्यपोऽथात्रिर्जमदग्निस्सगौतमः।
विश्वामित्रभरद्वाजौ सप्त सप्तर्षयोऽभवन्।३२।
इक्ष्वाकुश्च नृगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च।
नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभागोऽरिष्ट एव च।३३।
करूषश्च पृषध्रश्च सुमहाँल्लोकविश्रुतः।
मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः सुधार्मिकाः।३४।

हे द्विज! इस समय यह सातवां मन्वन्तर है। इसमें महा तेजस्वी और धीमान् सूर्य पुत्र श्राद्धदेव मनु हैं।३०। आदित्य, वसु और रुद्रादि देवता तथा पुरन्दर नामक इंद्र इस मन्वन्तर के हैं।३१। वसिष्ठ, काश्यप अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र, और भरद्वाज नामक सप्तर्षि हैं ३२। वैवस्वत मनु के नौ पुत्र हुए, जिनके नाम इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यंत, नाभाग, अरिष्ट, करुष और पृषध्र हुए। यह सभी धर्मात्मा और संसार प्रसिद्ध थे।३३-३४।

विष्णुशक्तिरनौपम्या सत्वोद्रिक्ता स्थितौ स्थिता।
मन्वन्तरेष्वशेषेषु देवत्वेनाधितिष्ठति।३५।
अंशेन तस्या जज्ञेऽसौ यज्ञस्स्वायम्भुवेऽन्तरे।
आकूत्यां मानसो देव उत्पन्नः प्रथमेऽन्तरे।३६।
ततः पुनः स वै देव प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे।
तुषितायां समुत्पन्नो ह्यजितस्तुषितैः सहः।३७।
औत्तमेऽप्यन्तरे देवस्तुषितस्तु पुनस्स वै।
सत्यायामभवत्सत्यः सत्यैस्सह सुरोत्तमैः।३८।

तामसस्यान्तरे चैव सम्प्राप्ते पुनरेव हि ।
हर्यायां हरिभिस्सार्धं हरिरेव बभूव ह ।३९।
रैवतेऽप्यन्तरे देवस्सम्भूत्यां मानसो हरिः ।
सम्भूतो रैवतैस्सार्धं देवैर्देववरो हरिः ।४०।
चाक्षुषे चान्तरे देवो वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः ।
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्दैवतैः सह ।४१।

सभी मन्वन्तरों में देव रूप से अधिष्ठित भगवान् विष्णु की अनुपम एवं सत्वगुण--प्रधान वाली शक्ति ही विश्व की स्थिति में अधिष्ठान करने वाली होती है ।३५। सबसे पहिले मन्वन्तर में मानस देव यज्ञ पुरुष उसी विष्णु शक्ति के अंश से आकूति के उदर से प्रकट हुए थे ३६। फिर स्वारोचिष मन्वन्तर आ गया तब वही मानस देव अजित तुषिता नामक देवताओं के सहित उत्पन्न हुए ।३७। फिर वही तुषित देव उत्तम मन्वन्तर में सत्या के गर्भ से सत्य नामक देवताओं के साथ उत्पन्न हुए ।३८। जब तामस मन्वन्तर आया तब वह हरि रूप से हर्या के उदर से हरि नामक देवताओं के साथ प्रकट हुए ।३९। रैवत मन्वन्तर में वही देवश्रेष्ठ हरि, सम्भूति के गर्भ से उस समय के देवताओं के साथ मानस नाम से प्रकट हुए ।४०। फिर चाक्षुष मन्वन्तर में विकुण्ठा के गर्भ से तत्कालीन देवताओं के साथ उत्पन्न होकर वैकुण्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए ।४१।

मन्वन्तरेऽत्र सम्प्राप्ते तथा वैवस्वते द्विज ।
वामनः कश्यपाद्विष्णुरदित्यां सम्बभूव ह ।४२।
त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा येन महात्मना ।
पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम् ।४३।
इत्येतास्तनवस्तस्य सप्तमन्वन्तरेषु वै ।
सप्तस्वेवाभवन्विप्र याभिः संवर्द्धिताः प्रजाः ।४४।
यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मात्सा प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ।४५।

सर्वे च देवा मनवस्समस्तास्सप्तर्षयो ये मनुसूनवश्च ।
इन्द्रश्च योऽयं त्रिदशेशभूतो विष्णोरशेषास्तु विभूतयस्ताः ।४६

हे द्विज! अब इस वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर भगवान् विष्णु कश्यप के द्वारा अदिति के उदर से वामन रूप में अवतरित हुए ।४२। उन्हीं वामन देव ने तीनों लोकों को अपने तीन पदों में नापकर जीत लिया और उन्हें कण्टकहीन करके इन्द्र को सौंप दिया था ।४३। इस प्रकार सातों मन्वन्तरों में भगवान् विष्णु की यह सात मूर्तियाँ अवतरित हुईं, जिनसे इस सम्पूर्ण प्रजा की वृद्धि हुई है ।४४। यह सम्पूर्ण जगत उन्हीं परमेश्वर की शक्ति से व्याप्त है, इसलिए वह विष्णु नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि 'विश' धातु का तात्पर्य प्रवेश करने से है ।४५। सब देवता, मनु, सप्तर्षि, मनु पुत्र और इन्द्र–यह सब उन्हीं भगवान् विष्णु की विभूतियाँ हैं ।४६।

दूसरा अध्याय

प्रोक्तान्येतानि भवता सप्तमन्वन्तराणि वै ।
भविष्याण्यपि विप्रर्षे ममाख्यातुं त्वमर्हसि ।१।
सूर्यस्य पत्नीसंज्ञाभूत्तनया विश्वकर्मणः ।
मनुर्यमो यमी चैव तदपत्यानि वै मुने ।२।
असहन्ती नु सा भर्तुस्तेजश्छायां युयोज वै ।
भर्तृशुश्रूषणेऽरण्यं स्वयं च तपसे ययौ ।३।
सञ्ज्ञयमित्यथार्कश्च छायायामात्मजत्रयम् ।
शनैश्चरं मनुं चान्यं तपतीं चाप्यजीजनत् ।।४।।
छायासंज्ञा ददौ शापं यमाय कुपिता यदा ।।
तदान्येयमसौ बुद्धिरित्यासीद्यमसूर्ययोः ।।५।।
ततो विवस्वानाख्याते तयैवारण्यसंस्थिताम् ।।
समाधिदृष्ट्या ददृशे तामश्वां तपसि स्थिताम् ।।६।।

वाजिरूपधरः सोऽथ तस्यां देवावथाश्विनौ ।
जनयामास रेवन्तं रेतसोऽन्टे च भास्करः ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा–हे ब्रह्मर्षे ! आपने बीते हुए सात मन्वन्तरों का वर्णन किया, अब आप आगे होने वाले मन्वन्तरों के विषय में कहिये ।१। श्री पराशरजी ने कहा–हे मुने ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य की पत्नी हुई । उसने मनु और यम दो पुत्र तथा यमी नाम की पुत्री को जन्म दिया ।२। संज्ञा अपने पति का तेज सहन न कर सकने के कारण अपने समान छाया उत्पन्न कर और उसे अपने पति की सेवा सौंप कर, स्वयं तपस्विनी बनकर चली गई ।३। सूर्य ने छाया को संज्ञा समझा और उस से शनैश्वर, एक दूसरा मनु और तपती इन तीन सन्तानों को जन्म दिया ।४। एक दिन की बात है–उस छाया संज्ञा ने क्रोध करके यम को शाप दिया, तब सूर्य और यम को सन्देह हुआ कि यह संज्ञा नहीं है ।५। तब छाया के रहस्य का उद्घाटन हुआ और सूर्य ने समाधि लगाकर यह जान लिया कि संज्ञा घोड़ी का रूप धारण किये हुए वन में तप कर रही है ।६। इससे उन्होंने भी घोड़े का रूप धारण कर घोड़ी रूपिणी संज्ञा से दो अश्विनीकुमार और रेतः स्राव के पश्चात् रेवन्त को उत्पन्न किया ।७।

आनिन्ये च पुनः संज्ञां स्वस्थानं भगवान्रविः ।
तेजसश्शमनं चास्य विश्वकर्मा चकार ह ।८।

भ्रममारोप्य सूर्यं तु तस्य तेजोनिशातनम् ।
कृतवानष्टमं भागं स व्यशातयदव्ययम् ।९।

यत्तस्माद्वैष्णवं तेजश्शातितं विश्वकर्मणा ।
जाज्वल्यमानमपतत्तद्भूमौ मुनिसत्तम् ।१०।

त्वष्टैव तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ।
त्रिशूलं चैव शर्वस्य शिबिकां धनदस्य च ।११।

शक्ति गुहस्य देवानामन्येषां च यदायुधम् ।
तत्सर्वं तेजसा तेन विश्वकर्मा व्यर्वयत् ।१२।

छायासंज्ञासुतो योऽसौ द्वितीयः कथितो मनुः ।
पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सावर्णिस्तेन कथ्यते ।१३।
तस्य मन्वन्तरं ह्येतत्सावर्णिकमथाष्टमम् ।
तच्छृणुष्व महाभाग भविष्यत्कथयामि ते ।१४।

इसके बाद भगवान् सूर्य संज्ञा को अपने यहाँ लाये और विश्वकर्मा ने भी उनका तेज न्यून कर दिया ।८। उन्होंने सूर्य को सान पर चढ़ाकर उनके तेज को छीलना आरम्भ किया, परन्तु वह उसका आठवाँ अंश ही कम कर सके ।९। हे मुनिश्रेष्ठ ! सूर्य के जिस अत्यन्त प्रकाशमान वैष्णव तेज को छीला, वह तेज पृथिवी पर आ गिरा ।१०। उसी गिरे हुए तेज से विश्वकर्मा ने भगवान विष्णु का चक्र, शिवजी का त्रिशूल तथा कार्तिकेय की शक्ति का निर्माण किया और अन्यान्य देवताओं के जो कुबेर का विमान शस्त्रास्त्र थे, वे भी उस तेज से पुष्ट किए ।११-१२। पहिले जिस छाया संज्ञा के पुत्र द्वितीय मनु के विषय में कह चुके हैं, वह अपने पूर्वज मनु का सवर्ण होने के कारण सावर्णि कहा गया १३। हे महाभाग ! मैं उन्हीं सावर्णि के सावर्णिक मन्वन्तर का वर्णन करता हूँ । यह अष्टम मन्वन्तर आगे होने वाला है ।१४।

सावर्णिस्तु मनुर्योऽसौ मैत्रेय भविता ततः ।
सुतपाश्चाभिताभाश्च मुख्याश्चापि तथा सुराः ।१५।
तेषां गणश्च देवानामेकैको विशकः स्मृतः ।
सप्तर्षीनपि वक्ष्यामि भविष्यान्मुनिसत्तम ।१६।
दीप्तिमान् गालवो राम. कृपो द्रौणिस्तथा परः ।
मत्पुत्रश्च तथा व्यास ऋष्यशृङ्गश्च सप्तमः ।१७।
विष्णुप्रसादादनघ; पातालान्तरगोचरः ।
विरोचनसुतस्तेषां बलिरिन्द्रो भविष्यति ।१८।
विरजाश्चोर्वरीवांश्च निर्मोकाद्यास्तथापरे ।
सावर्णेस्तु मनोः पुत्रा भविष्यन्ति नरेश्वराः ।१९।
नवमो दक्षसावर्णिर्भविष्यति मुने मनुः ।
पारा मरीचिगर्भाश्च सुधर्माणस्तथा त्रिधा ।२०।

भविष्यन्ति देवा तथाह्येकैको द्वादशो गणः ।
तेषामिन्द्रो महावीर्यो भविष्यत्यद्भुतो द्विज ।२१।
सवनो द्युतिमान् भव्यो वसुर्मेधातिथिस्तथा ।
ज्योतिष्मान् सप्तमः सत्यस्तत्रैते च महर्षयः ।२२।
धृतकेतुर्दीप्तिकेतुः पञ्चहस्तनिरामयौ ।
पृथुश्रवाद्याश्च तथा दक्षसावर्णिकात्मजाः ।२३।

हे मैत्रेयजी! यही सावर्णि उस मन्वन्तर में मनु एव सुतप, अमिताभ और मुख्यगण देवता होंगे।१५। उन देवताओं के प्रत्येक गण में बीस देवता होंगे। अब मैं उस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के विषय में कहता हूँ।१६। दीप्तिमान्, गालव, राम, कृप, अश्वत्थामा, मेरे पुत्र व्यास और सातवें ऋषि शृङ्ग होंगे।१७। उस समय पाताल लोकवासी विरोचन-पुत्र बलि भगवान् विष्णु की कृपा से इन्द्र होंगे तथा विरजा, ऊर्वरीवान् और निर्मोक आदि सावर्णि मनु पुत्र उस मन्वन्तर के राजा होंगे।१८। हे मुने! नौवें मन्वन्सर को मनु दक्ष सावर्णि होंगे। उनके समय में पार मरीचिगर्भ और सुधर्मा नामक देवताओं का त्रिवर्ग होगा, जिन तीनों में से प्रत्येक वर्ग में बारह देवता होगे और उनका अधिपति अद्भुत नामक अत्यंत पराक्रमी इंद्र होगा।२०-२१। सवन, द्युतिमान्, भव्य, वसु, मेधातिथि, ज्योतिष्मान् और सत्य नामक सप्तर्षि होंगे।२२। तथा दक्ष सावर्णि मनु के पुत्र धृतकेतु, दीप्तिकेतु, निरामय, पृथुश्रवा आदि उस समय के राजा होंगे।२३।

दशमो ब्रह्मसावर्णिर्भविष्यति मुने मनुः ।
सुधामानो विशुद्धाश्च शतसंख्यास्तथा सुराः ।२४।
तेषामिन्द्रश्च भविता शान्तिर्नाम महाबलः ।
सप्तर्षयो भविष्यन्ति ये तथा ताञ्छृणुष्व ह ।२५।
हविष्मान्सुकृतस्सत्यस्तपोमूर्तिस्तथापरः ।
नाभागोऽप्रतिमौजाश्च सत्यकेतुस्तथैव च ।२६।
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिषेणादयो दश ।
ब्रह्मसावर्णिपुत्रास्तु रक्षिष्यन्ति वसुन्धराम् ।२७।

एकादशश्च भविता धर्मसावर्णिको मनुः ।
विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरतयस्तथा ।२८।
गणास्त्वेते तदा मुख्या देवानां च भविष्यताम् ।
एकैकस्त्रिंशकस्तेषां गणश्चेन्द्रश्च वै वृषः ।२६।
निःस्वरश्चाग्नितेजाश्च वपुष्मान्घृणिरारुणिः ।
हविष्माननवश्चैव भाव्याः सप्तर्षयस्तथा ।३०।
सर्वत्रगस्सुधर्मा च देवानीकादयस्तथा ।
भविष्यन्ति मनोस्तस्य तनयाः पृथिवीश्वराः ।३१।

हे मुने ! दसवें मन्वन्तर के अधिपति ब्रह्म सावर्णि होंगे । उस समय सुधामा और विशुद्ध नामक दो गण सौ-सौ देवताओं के होंगे ।२४। महाबली शांति उनका इन्द्र होगा, अब उस समय के सप्तर्षियों के नाम सुनो ।२५। हविष्मान्, सुकृत, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु–यह सप्तर्षि थे ।२६। उस समय ब्रह्म सावर्णि मनु के सुक्षेत्र, उत्तमौजा और भूरिषेण आदि दस पुत्र पृथिवी के रक्षक होंगे ।२७। ग्यारहवाँ मनु धर्मसावर्णि होगा तथा विहंगम, कामगम और निर्वाण रति नामक तीस-तीस देवताओं के गण होंगे और वृष नामक इंद्र होगा ।२८-२६। निःस्वर, अग्नितेजा, वपुष्मान्, घृणि, आरुणि, हविष्मान् अनघ नामक सप्तर्षि होंगे ।३०। धर्मसावर्णि मनु के सर्वत्रग, सुधर्मा और देवनीकादि पुत्र उस समय पृथिवी पालक होंगे ।३१।

रुद्रपुत्रस्तु सावर्णिर्भविता द्वादशो मनुः ।
ऋतुधामा च तत्रेन्द्रो भवति शृणु मे सुरान् ।३२।
हरिता रोहिता देवास्तथा सुमनसो द्विज ।
सुकर्माणः सुरापाश्च दशकाः पञ्च वै गणाः ।३३।
तपस्वी सुतपाश्चैव तपोमूर्तिस्तपोरतिः ।
तपोधृतिद्युतिश्चान्यः सप्तमस्तु तपोधनः ।३४।
सप्तर्षयस्त्विमे तस्य पुत्रानपि निबोध मे ।
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयस्तथा ।३५।

मनोस्तस्य महावीर्या भविष्यन्ति महानृपाः ।
त्रयोदशो रुचिर्नामा भविष्यति मुने मनुः ।३६।
सुत्रामाणः सुकर्माणः सुधर्माणस्तथामराः ।
त्रयस्त्रिंशद्विभेदास्ते देवानां यत्र वै गणाः ।३७।
दिवस्पतिर्महावीर्यस्तेषामिन्द्रो भविष्यति
निर्मोहस्तत्त्वदर्शी च निष्प्रकम्प्यो निरुत्सुकः ।३८।
धृतिमानव्ययश्चान्यस्सप्तमस्सुतपा मुनिः ।
सप्तर्षयस्त्वमी तस्य पुत्रानपि निबोध मे ।३९।

बारहवें मनु रुद्र सावर्णि होंगे । उस समय इंद्र का नाम ऋतुधामा होगा । अब देवताओं के नाम सुनो ।३२। हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा और सुराप नामक देवताओं के पाँच गण होंगे । प्रत्येक गण में दस देवता होंगे ।३३। तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति तपोधृति, तपोद्युति और तपोधन उस समय के सप्तर्षि होंगे । रुद्र सावर्णि मनु के देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि महावीर्यवान् पुत्र उस समय के राज्याधिकारी होंगे । तेरहवाँ मनु रुचि होगा और सुत्रामा, सुकर्मा और सुधर्मा नामक देवताओं के गण होंगे । प्रत्येक गण में तैंतालीस देवता होंगे तथा अत्यंत बली दिवस्पति नामक उसका इंद्र होगा । निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निष्प्रकम्प, निरुत्सुक, धृतिमान्, अव्यय और सुतपा नामक सप्तर्षि होंगे । अब मनु-पुत्रों के नाम बताता हूँ ।३७—३९।

चित्रसेनविचित्राद्या भविष्यन्ति महीक्षितः ।
भौमश्चतुर्दशश्चात्र मैत्रेय भविता मनुः ।
शुचिरिन्द्रः सुरगणास्तत्र पञ्च शृणुष्व तान् ।
चाक्षुषाश्च पवित्राश्च कनिष्ठा भ्राजिकास्तथा ।४१।
वाचावृद्धाश्च वै देवास्सप्तर्षीनपि मे शृणु ।
अग्निबाहुः शुचि शुक्रो मागधोऽग्निध्र एव च ।४२।
युक्तस्तथा जितश्चान्यो मनुपुत्रानतः शृणु ।
ऊरुगम्भीरबुद्धयाद्या मनोस्तस्य सुता नृपाः ।४३।
कथिता मुनिशार्दूल पालयिष्यन्ति ये महीम् ।४४।

उन रुचि नामक मनु के चित्रसेन और विचित्रादि पुत्र राज्याधिकारी होंगे। चौदहवें मनु भौम होंगे।४०। उस मन्वन्तर में शुचि नामक इंद्र और चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिक और वाचावृद्ध नामक पाँच देवगण होंगे। अब सप्तर्षियों के नाम सुनो–अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, मागध, अग्निध्र युक्त और जित नामक सप्तर्षि होंगे। अब मनु पुत्रों के नाम सुनो हे मुनिश्रेष्ठ! भौम नामक उन मनु के ऊरु और गम्भीर बुद्धि आदि पुत्र पृथिवी का पालन करने वाले होंगे।४१—४४।

चतुर्युगान्ते वेदानां जायते किल विप्लवः।
प्रवर्तयन्ति तानेत्य भुवं सप्तर्षयो दिवः।४५।
कृते कृते स्मृतेर्विप्र प्रणेता जायते मनुः।
देवा यज्ञभुजस्ते तु यावन्मन्वन्तरं तु तत्।४६।
भवन्ति ये मनोः पुत्रा यावन्मन्वन्तरं तु तैः।
तदन्वयोद्भवैश्चैव तावद्भूः परिपाल्यते।४७।
मनुस्सप्तर्षयो देवा भूपालाश्च मनोः सुताः।
मन्वन्तरे भवन्त्येते शक्रश्चैवाधिकारिणः।४८।
चतुर्दशभिरेतैस्तु गतैर्मन्वन्तरैर्द्विज।
सहस्रयुगपर्यन्तः कल्पो निश्शेष उच्यते।४९।
तावत्प्रमाणा च निशा ततो भवति सत्तम।
ब्रह्मरूपधरश्शेते शेषाहावम्बुसम्प्लवे।५०।
त्रैलोक्यमखिलं ग्रस्त्वा भगवानादिकृद्विभुः।
स्वमायासंस्थितो विप्र सर्वभूतो जनार्दनः।५१।
ततः प्रबुद्धो भगवान् यथा पूर्वं तथा पुनः।
सृष्टिं करोत्यव्ययात्मा कल्पे कल्पे रजोगुणः।५२।
मनवो भूभुजस्सेन्द्रा देवास्सप्तर्षयस्तथा।
सात्त्विकोंऽशः स्थितकरो जगतो द्विज सत्तम।५३।

प्रत्येक चतुर्युगी के अन्त में जब वेद लुप्त हो जाते हैं, तब सप्तर्षि ही स्वर्ग से पृथिवी पर उत्पन्न होकर उनका प्रकाश करते हैं।४५। प्रत्येक

सत्युग के आरम्भ में स्मृतिकार मनु की उत्पत्ति होती है मन्वन्तर के समाप्त होने तक उस काल के पुत्र तथा उनके वंशधर मन्वन्तर की समाप्ति पर्यंत पृथिवी का परिपालन करते रहते हैं ।४७। इस प्रकार मनु, सप्तर्षि, देवता, इन्द्र और मनु-पुत्र नृपतिगण—यह सभी उस मन्वन्तर के अधिकारी माने जाते हैं ।४८। हे विप्र ! इन चौदह मन्वन्तरों के व्यतीत होने पर एक हजार युगों तक का कल्प समाप्त हुआ बताया जाता है ।४९। इसके पश्चात् इतने ही समय की रात्रि होती है । उस समय ब्रह्मरूपी विष्णु प्रलयकाल के उस जल के ऊपर स्थित शेष-शय्या पर सोते हैं ।५०। तब आदि कर्त्ता सर्वभूत भगवान् जनार्दन अखिल त्रैलोक्य का ग्रास करके अपनी ही माया में स्थित हो जाते हैं ।५१। प्रत्येक कल्प के आरम्भ में वह अव्ययात्मा भगवान् जाग्रत होकर रजोगुण के आश्रय से सृष्टि को रचते हैं ५२। हे द्विज सत्तम ! मनु, उनके पुत्र नृपगण, इंद्र, देवगण और सप्तर्षि-गण—यह सभी विश्व पालक भगवान् श्री हरि के सात्त्विक अंश हैं ।५३।

चतुर्युगेऽप्यसौ विष्णुः स्थितिव्यापारलक्षणः ।
युगव्यवस्थां कुरुते यथा मैत्रेय तच्छृणु ।५४।
कृते युगे परं ज्ञान कपिलादिस्वरूपधृक् ।
ददाति सर्वभूतात्मा सर्वभूतहिते रतः ।५५।
चक्रवर्तिस्वरूपेण त्रेतायामपि स प्रभुः ।
दुष्टानां निग्रहं कुर्वन्परिपाति जगत्त्रयम् ।५६।
वेदमेकं चतुर्भेदं कृत्वा शाखाशतैर्विभुः ।
करोति बहुलं भूयो वेदव्यासस्वरूपधृक् ।५७।
वेदास्ते द्वापरे व्यस्य कलेरन्ते पुनर्हरिः ।
कल्किस्वरूपो दुर्वृत्तान्मार्गे स्थापयति प्रभुः ।५८।
एवमेतज्जगत्सर्वं शश्वत्पाति करोति च ।
हन्ति चान्तेष्वनन्तात्मा नास्त्यस्माद्व्यतिरेकि यत् ।५९।
भूतं भव्य भविष्य च सर्वभूतान्महात्मनः ।
तदत्रान्यत्र वा विप्र सद्भावः कथितस्तव ।६०।

मन्वन्तराण्यशेषाणि कथितानि मया तव ।
मन्वन्तराधिपांश्चैव किमन्यत्कथयामि ते ।६१:

हे मैत्रेयजी ! विश्व की स्थिति के करने वाले भगवान् विष्णु जिस प्रकार चारों युग में व्यवस्था करते हैं, उसे सुनो ।५४। सभी जीवों के कल्याण में तत्पर हुए वे सर्वभूतात्मा भगवान् सत्ययुग में कपिल आदि के रूप में परम ज्ञानोपदेश करते हैं ।५५। त्रेता में चक्रवर्ति सम्राट होकर दुष्टों का निग्रह करते हुए वही तीनों लोकों की रक्षा करते है ।५६। द्वापर में वेद व्यास रूप से एक वेद को चार भागों में विभक्त करके, उसे सैकड़ों शाखाओं में बाँट कर उसका अत्यन्त प्रसार कर देते हैं ।५७। इस प्रकार द्वापर युग में वेदों का विस्तार करने के पश्चात् कलियुग के अन्त में कल्कि रूप धारण करके दुराचरण में प्रवृत्त हुए लोगों को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करते हैं ।५८। इसी प्रकार वह सर्वात्मा भगवान् निरन्तर इस विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार करते रहते हैं। संसार की कोई भी वस्तु उनसे भिन्न नहीं है ।५९। हे विप्र ! इहलोक और परलोक के अतीत में हुए आगे होने वाले तथा अब जो स्थित है, वे सम्पूर्ण पदार्थ भगवान् विष्णु से ही प्रकट हुए हैं, इस विषय में सब कुछ तुम्हारे प्रति कह चुका हूँ ।६२ सभी मन्वन्तरों तथा उनके अधिकारियों का वृतान्त भी मैं सुना चुका हूँ। अब तुम्हें और क्या सुनाऊँ यह मुझसे कहो ।६१।

—:❀❀:—

तीसरा अध्याय

ज्ञातमेतन्मया त्वत्तो यथा सर्वमिदं जगत् ।
विष्णुर्विष्णौ विष्णुतश्च न परं विद्यते ततः ।१।
एतत्तु श्रोतुमिच्छामि व्यस्ता वेदा महात्मना ।
वेदव्यासस्वरूपेण तथा तेन युगे युगे ।२।

यस्मिन्यस्मिन्युगे व्यासो यो य आसीन्महामुने ।
तं तमाचक्ष्व भगवञ्छाखाभेदांश्च मे वद ।३।
वेदद्रुमस्य मैत्रेय शाखाभेदास्सहस्रशः ।
न शक्तो विस्तराद्वक्तुं संक्षेपेण शृणुष्व तम् ।४।
द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने ।
वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितः ।५।
वीर्यं तेजो बलं चाल्पं मनुष्याणामवेक्ष्य च ।
हिताय सर्वभूतानां वेदभेदान्करोति सः ।६।
ययासौ कुरुते तन्वा वेदमेकं पृथक् प्रभुः ।
वेदव्यासाभिधाना तु साच मूर्तिर्मधुद्विषः ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—आपके कहने से मैंने यह जान लिया कि यह विश्व विष्णुरूप, विष्णु में स्थित तथा उन्हीं से उत्पन्न हुआ है। उन भगवान् विष्णु के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है ।१। अब मुझे यह सुनने की जिज्ञासा है कि उन्होंने वेदव्यास रूप से युग-युग में प्रकट होकर वेदों का विभाग किस प्रकार किया ? ।२। हे महामुने ! जिस-जिस युग में जो-जो वेदव्यास हुए, उन सबका तथा वेदों के सब शाखा-भेदों को आप मेरे प्रति कहिये ।३। श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! वेद रूपी वृक्ष के हजारों शाखा भेद हैं, उनका विस्तृत वर्णन करने में तो कोई भी शक्य नहीं है, इसलिए उसे संक्षेप में श्रवण करो ।४। हे महामुने ! जब-जब द्वापर युग आता है, तभी-तभी भगवान् विष्णु वेद व्यास के रूप में अवतीर्ण होकर विश्व-कल्याणार्थ एक वेद के अनेक कर देते हैं ।५। वे उस समय के मनुष्यों के बल, वीर्य, तेज को घटता हुआ देखकर सब जीवों का हित करने की इच्छा से वेदों को विभक्त करते हैं ।६। जिस देह से एक वेद के अनेक भेद करते हैं, भगवान् की उस मूर्ति को वेदव्यास कहते हैं ।७।

यस्मिन्मन्वन्तरे व्यासा ये ये स्युस्तान्निबोध मे ।
यथा च भेदश्शाखानां व्यासेन क्रियते मुने ।८।

अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदो व्यस्तो महर्षिभिः ।
वैवस्वतेऽन्तर तस्मिन्द्वापरेषु पुनः पुनः ।९।
वेदव्यासा व्यतीता ये ह्यष्टाविंशति सत्तम ।
चतुर्धा यैः कृतो वेदो द्वापरेषु पुनः पुनः ।१०।
द्वापरे प्रथमे व्यस्तस्स्वयं वेदः स्वम्भुवा ।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ।११।
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे च बृहस्पतिः ।
सविता पञ्चमेः व्यासः षष्ठे मृत्युस्स्मृतः प्रभुः ।१२।
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वषिष्ठश्चाष्टमे स्मृतः ।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः ।१३।
एकादशे तु त्रिशिखो भरद्वाजस्ततः परः ।
त्रयोदशे चान्तरिक्षो वर्णी चापि चतुर्दशे ।१४।

हे मुने ! जिस-जिस मन्वन्तर में जो-जो व्यास होते हैं और वह जिस-जिस प्रकार से वेदों का विभाग करते हैं, वह सब मुझसे श्रवण करो ।८। इसी वैवस्वत मन्वन्तर के प्रत्येक द्वापर युग में व्यास ऋषियों ने अब तक अट्ठाईस बार वेदों को विभक्त किया है।९। अब उन अट्ठाइस व्यासों का वृतान्त सुनो, जिन्होंने द्वापर युग में वेदों के बारम्बार चार-चार विभाग किये हैं।१०। प्रथम द्वापर में स्वयं ब्रह्माजी ने वेदों का विभाग किया और दूसरे द्वापर में प्रजापति वेदव्यास हुए।११। तीसरे द्वापर में शुक्राचार्य वेदव्यास हुए, चौथे में बृहस्पतिजी, पाँचवे में सूर्य और छटवे में मृत्यु वेद व्यास बने ।१२। सातवे में इन्द्र, आठवे में वसिष्ठ, नौवें में सारस्वत और दसवें में त्रिधामा वेदव्यास कहलाये ।१३। ग्यारहवें में भारद्वाज तेरहवे में अन्तरिक्ष और चौदहवें में वर्णी वेद व्यास हुए ।१४।

त्र्य्यारुणः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः ।
क्रतुञ्जयः सप्तदशे तदूर्ध्वं च जयस्स्मृतः ।१५।
ततो व्यासो भरद्वाजो भरद्वाजाच्च गौतमः ।
गौतमादुत्तरो व्यासो हर्यात्मा योऽभिधीयते ।१६।

अथ हर्यात्मनोऽन्ते च स्मृतो वाजश्रवा मुनिः ।
सोमशुष्मायणस्तस्मात्तृणबिन्दुरिति स्मृतः ।१७।
ऋक्षोऽभूद्भार्गवस्तस्माद्वाल्मीकिर्योऽभिधीयते ।
तस्मादस्मत्पिता शक्तिर्व्यासस्तस्मादहं मुने ।१८।
जातुकर्णोऽभवन्मत्तः कृष्णद्वैपायनस्ततः ।
अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः ।१९।
एको वेदश्चतुर्धा तु तैः कृतो द्वापरादिषु ।२०।
भविष्ये द्वापरे चापि द्रौणिर्व्यासो भविष्यति ।
व्यतीते मम पुत्रेऽस्मिन् कृष्णद्वैपायने मुने ।२१।

पंद्रहवें द्वापर में त्रय्यारुण, सोलहवें में धनञ्जय, सत्रहवें में कृतुञ्जय और अठारहवें में जय नामक वेदव्यास हुए ।१५। उन्नीसवें द्वापर में भरद्वाज, बीसवें में गौतम के बाद इक्कीसवें द्वापर में हर्यात्मा नामक व्यास हुए ।१६। बाईसवें मन्वन्तर में वाजश्रवा मुनी वेद व्यास हुए, और उनके बाद सोम शुष्म वंश के तृणबिन्दु नामक तेईसवें द्वापर के व्यास हुए ।१७। उनके पश्चात् भृगुवंश के ऋक्ष चौबीसवें व्यास हुए, यही कालान्तर में वाल्मीकि कहलाये, उनके पश्चात् मेरे पिता शक्ति हुए और फिर मैं छब्बीसवाँ व्यास हुआ ।१८। मेरे बाद जातुकर्ण और फिर कृष्ण द्वैपायन हुए । इस प्रकार वह अट्ठाईस व्यास प्राचीन कहे हैं । इन्होंने सब द्वापरों में एक-एक वेद के चार-चार विभाग किये ।१९—२०। हे मुने ! मेरे पुत्र कृष्ण द्वैपायन के पश्चात् आगामी द्वापर युग में द्रोणाचार्यजी के पुत्र अश्वत्थामा व्यास होंगे ।२१।

ध्रुवमेकाक्षरं ब्रह्म ओमित्येव व्यवस्थितम् ।
बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ।२२।
प्रणवावस्थितं नित्यं भूर्भुवस्स्वरितीर्यते ।
ऋग्यजुस्सामाथर्वाणो यत्तस्मै ब्रह्मणे नमः ।२३।
जगतःप्रलयोत्पत्त्योर्यत्तत्कारणसंज्ञितम् ।
महतः परम गुह्यं तस्मै सुब्रह्मणे नमः ।२४।

अगाधापारमक्षय्यं जगत्सम्मोहनालयम् ।
स्वप्रकाशप्रवृत्तिभ्यां पुरुषार्थप्रयोजनम् ।२५।
सांख्यज्ञानवतां निष्ठा गतिश्शमदमात्मनाम् ।
यत्तदव्यक्तममृतं प्रवृत्तिर्ब्रह्म शाश्वतम् ।२६।
प्रधानमात्मयोनिश्च गुहासंस्थं च शब्द्यते ।
अविभागं तथा शुक्रमक्षयं बहुधात्मकम् ।२७।
परमब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमो नमः ।
यद्रूप वासुदेवस्य परमात्मस्वरूपिणः ।२८।

यह अविनाशी ॐ रूप एकाक्षर ही ब्रह्म है । यह बृहद् एवं व्यापक होने के कारण 'ब्रह्म' कहा जाता है ।२२। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक-यह तीनों ही प्रणव रूप ब्रह्म में स्थित है तथा प्रणव ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्व रूप चारों वेद हैं, इसलिये उस प्रणव रूप ब्रह्म को नमस्कार है ।२३। जो ब्रह्म विश्व की उत्पत्ति और प्रलय का कारण कहा गया है तथा जो महत्तत्व से भी परम गुह्य है, उस प्रणव रूप को नमस्कार है ।२४। जो अगाध, अपार और अक्षय तथा जगत् को मोहित करने वाले तमोगुण का आधार एवं स्वप्रकाश युक्त सत्वगुण से भोग तथा मोक्ष रूप पुरुषार्थ का कारण में ।२५। जो सांख्य ज्ञानियों की निष्ठा और शम-दम वालों का गन्तव्य स्थान है तथा जो अव्यक्त, अविनाशी और सक्रिय ब्रह्म होकर सदा स्थित है ।२६। जो स्वयं, प्रधान और अन्तर्यामी कहा गया है तथा जो अविभाग, अक्षय और बहुत रूप वाला है ।२७। तथा जो परमात्म स्वरूप वासुदेव भगवान् का ही रूप है, उस प्रणव रूप परब्रह्म को बारम्बार नमस्कार है ।२८।

एतद्ब्रह्म त्रिधा भेदमभेदमपि स प्रभुः ।
सर्वभेदेष्वभेदोऽसौ भिद्यते भिन्नबुद्धिभिः ।२९।
सऋङ्मयस्साममयः सर्वात्मा स यजुर्मयः ।
ऋग्यजुस्साम सारात्मा स एवात्मा शरीरिणाम् ।३०।

स भिद्यते वेदमयस्स्ववेदं करोति भेदैर्बहुभिस्सशाखम् ।
शाखाप्रणेता स समस्तशाखाज्ञानस्वरूपो भगवानसङ्ग ।३१

यह प्रणव रूप ब्रह्म अभेद होकर भी तीन भेद वाला और सभी भेदों में अभिन्न रूप से स्थित है, परन्तु भेद बुद्धि वालों को पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है ।२९। वह सर्वात्मा ऋङ्मय, साममय और यजुर्मय है तथा ऋक्, यजुः, साम का सार रूप वह प्रणव ही सब देहधारियों की आत्मा है ।३०। वह वेदमय है, वही ऋग्वेदादि रूप से भिन्न-भिन्न होता और अपने वेद रूप को विभिन्न शाखाओं में विभक्त करता है । वही सग-रहित ज्ञान स्वरूप परमात्मा सब शाखों का रचने वाला है ।३१।

— :❀ ❀: —

चौथा अध्याय

आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसम्मितः ।
ततो दशगुणः कृत्स्नो यज्ञोऽयं सर्वकामधुक् ।१।
ततोऽत्र मत्सुतो व्यासो अष्टाविंशतिमेऽन्तरे ।
वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत्प्रभु ।२।
यथा च तेन वै व्यस्ता वेदव्यासेन धीमता ।
वेदास्तथा समस्तैस्यर्यस्ता व्यस्तैस्तथा मया ।३।
तदनेनैव वेदानां शाखाभेदान्द्विजोत्तम ।
चतुर्युगेषु पठितान्समस्तेष्ववधारय ।४।
कृष्णद्वैपायन व्यासं विद्धि नारायण प्रभुम् ।
को ह्यन्यो भुवि मैत्रेय महाभारतकृद्भवेत् ।५।
तेन व्यस्ता यथा वेदा मत्पुत्रेण महात्मना ।
द्वापरे ह्यत्र मैत्रेय तस्मिञ्छृणु यथातथम् ।६।
ब्रह्मणा चोदितो व्यासो वेदान्व्यस्तुं प्रचक्रमे ।
अथ शिष्यान्प्रजग्राह चतुरो वेदपारगान् ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—सृष्टि के आदि में वेद चार पदों से युक्त तथा एक लाख मंत्रों का था, जिससे समस्त कामनाप्रद अग्निहोत्रादि दस प्रकार के यज्ञों का प्रचार हुआ ।१। फिर अट्ठाईसवे द्वापर में मेरे पुत्र कृष्ण द्वैपायन ने इस चार पाद वाले एक वेद के चार विभाग किये ।२। परम मेधावी वेदव्यास ने जैसे उनका विभाग किया, वैसे ही मैंने तथा अन्यान्य वेदव्यासों ने भी किया था ।३। इसलिए हे द्विजश्रेष्ठ ! सब चतुर्युगियों में इन्ही शाखा-भेदों वाले वेद का पाठ होता हुआ समझो ।४। भगवान् कृष्ण द्वैपायन को साक्षात् नारायण ही मानों क्योंकि भगवान् के अतिरिक्त किसमें महाभारत रचने की सामर्थ्य हो सकती है ? ।५। हे मैत्रेयजी ! द्वापर में मेरे महात्मा पुत्र कृष्ण द्वैपायन वेदों को जिस प्रकार विभक्त किया था, उसे अब यथातथ्य सुनो ।६। ब्रह्माजी की प्रेरणा से जब उन्होंने वेदों का विभाग करना चाहा, तब उन्होने वेदाध्ययन में समर्थ चार शिष्यों को इस कार्य में नियुक्त किया ।७।

ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनिः ।
वैशम्पायननामानं यजुर्वेदस्य चाग्रहीत् ।८।
जैमिनि सामवेदस्य तथैवाथर्ववेदवित् ।
सुमन्तुस्तस्य शिष्योऽभूद्वेदव्यासस्य धीमतः ।९।
रोमहर्षणनामानं महाबुद्धि महामुनिः ।
सूतं जग्राह शिष्यं स इतिहासपुराणयोः ।१०।
एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत् ।
चातुर्होत्रमभूत्तस्मिस्तेन यज्ञमथाकरोत् ।११।
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथा मुनिः ।
औन्दात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्व चाप्यथर्वभिः ।१२।
ततस्स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान्मुनिः ।
यजूंषि च यजुर्वेद सामवेदं च सामभिः ।१३।

उन चार शिष्यों में से पैल नामक शिष्य को उन महामुनि ने ऋग्वेद पढ़ाया । फिर वैशम्पायन को यजुर्वेद और जैमिनी को सामवेद

का अध्ययन कराया । उन्होंने अपने सुमन्तु नामक शिष्य को अथर्ववेद में पारंगत किया ।८-९। इनके अतिरिक्त सूत जाति में उत्पन्न रोमहर्षण नाम महा मेधावी को व्यासजी ने इतिहास-पुराण के विद्यार्थी के रूप में शिष्य बनाया ।१०। पहिले यजुर्वेद एक ही था। उन्होंने उसके चार विभाग किये, इसलिए उसमें चातुर्होत्र की प्रवृत्ति हुई और इसी विधि से उन्होंने यज्ञों के अनुष्ठानों को व्यवस्थित किया ।११। व्यासजी ने यजुर्वेद से अध्वर्यु का कर्म निश्चय किया, ऋग्वेद से होता का कर्म कल्पित किया सामवेद से उद्गाता के कर्म की और अथर्ववेद से ब्रह्म के कर्म की स्थापना की ।१२। फिर उन्होंने ऋग्वेद और यजुर्वेद की श्रुतियों का उद्धार करके ऋग्यजुः साम की श्रुतियों से सामवेद की रचना की ।१३।

राज्ञां चाथर्ववेदेन सर्वकर्माणि च प्रभुः ।
कारयामास मैत्रेय ब्रह्मत्वं च यथास्थिति ।१४।
सोऽयमेको यथा वेदस्तरुस्तेन पृथक्कृतः ।
चातुर्धाथ ततो जातं वेदपादपकाननम् ।१५।
विभेद प्रथमं विप्र पैलो ऋग्वेदपादपम् ।
इन्द्रप्रमितये प्रादाद्बाष्कलाय च संहिते ।१६।
चतुर्धा स बिभेदाथ बाष्कलोऽपि च संहिताम् ।
बोध्यादिभ्यो ददौ ताश्च शिष्येभ्यस्स महामुनिः ।१७।
बोध्याग्निमाढकौ तद्वद्याज्ञवल्क्यपराशरौ ।
प्रतिशाखास्तु शाखायास्तस्यास्ते जगृहुर्मुने ।१८।
इन्द्रप्रमितिरेकां तु संहितां स्वसुतं ततः ।
माण्डुकेयं महात्मानं मैत्रेयाध्यापयत्तदा ।१९।
तस्य शिष्यप्रशिष्येभ्यः पुत्रशिष्यक्रमाद्ययौ ।
वेदमित्रस्तु शाकल्यः संहितां तामधीतवान् ।२०।

हे मैत्रेयजी ! अथर्वेद के द्वारा उन वेदव्यास ने समस्त राजकर्म की, ब्रह्मत्व की व्यवस्था की ।१४। इस प्रकार उन्होंने एक वेदरूप वृक्ष के चार भाग किए और उन चारों भागों से वेद रूपी वृक्षों का वन ही लग

गया ।१५। प्रथम पैल ने ऋग्वेद रूपी वृक्ष को दो भागों में बाँटा और अपने शिष्य इन्द्रप्रमिति और बाष्कल को उनका अध्ययन कराया ।१६। बाष्कल ने भी अपनी शाखा के चार भाग करके उन्हें अपने बोध्य आदि शिष्यों को पढ़ाया ।१७। हे मुने ! बाष्कल की शाखा की जो चार प्रति-शाखाएँ हुईं, उन्हें उनके शिष्य बोध्य, अग्निमाढक, याज्ञवल्क्य और पराशर ने ग्रहण किया ।१८। हे मैत्रेयजी ! इन्द्र प्रमति ने अपनी प्रतिशाखा का अध्ययन अपने पुत्र माण्डुकेय को कराया ।१९। इस प्रकार शिष्य और शिष्य के भी शिष्य के क्रम से उस शाखा की इनके पुत्र और शिष्यों ने वृद्धि की । इसी शिष्य-परम्परा से शाकल्य वेदमित्र ने इस संहिता का अध्ययन किया ।२०।

चकार संहिताः पञ्च शिष्येभ्यः प्रददौ च ताः ।
तस्य शिष्यास्तु ते पञ्च तेषां नामानि मे शृणु ।२१।
मुद्गलो गोमुखश्चैव वात्स्यश्शालीय एव च ।
शरीरः पञ्चमश्चासीन्मैत्रेय सुमहामतिः ।२२।
संहितात्रितयं चक्रे शाकपूर्णस्तथेतरः ।
निरुक्तमकरोत्तद्वच्चतुर्थं मुनिसत्तम ।२३।
क्रौञ्चो वैतालिकस्तद्वद्बलाकश्च महामुनिः ।
निरुक्तकृच्चतुर्थोऽभूद्वेदवेदाङ्गपारगः ।२४।
इत्येताः प्रतिशाखाभ्यो ह्यनुशाखा द्विजोत्तम ।
बाष्कलश्चापरास्तिस्रस्संहिताः कृतवान्द्विज ।२५।
शिष्यः कालायनिर्गार्ग्यस्तृतीयश्च कथाजवः ।
इत्येते बह्वृचाः प्रोक्ताः संहिता यैः प्रवर्तिताः ।२६।

इसके पश्चात् शाकल्य वेदमित्र ने उस शाखा की पाँच अनुशाखाएं कीं और अपने पाँच शिष्यों को उनका अध्ययन कराया । अब उनके नाम सुनो ।२१। मुद्गल, गोमुख, वात्स्य, शालीय और पाँचवें अत्यंत बुद्धि-मान शिष्य थे ।२२। हे मुने ! उनके एक अन्य शिष्य शाकपूर्ण ने तीन वेद संहिताओं तथा एक निरुक्त ग्रन्थ को रचा था ।२३। महामुनि क्रौंच, वैतालिक और बलाक नामक उनके शिष्यों ने तीनों संहिताओं का अध्ययन

किया तथा उनके एक चतुर्थ शिष्य ने वेद-वेदांग में पारगत प्राप्त की ।२४। इस प्रकार वेद-वृक्ष की शाखाओं से प्रति शाखाएँ और उनसे भी अनुशाखाएँ उत्पन्न हुईं। हे द्विजोत्तम ! बाष्कग ने अन्य तीन संहिताओं की भी रचना की थी ।२५। कालायनि, गार्ग्य और कथा जब उनके शिष्य थे। जिन्होंने इन संहिताओं का प्रसार किया, वे बह्वृच कह कर विख्यात हुए ।२६।

— : ❀❀ : —

पाँचवाँ अध्याय

यजुर्वेदतरोश्शाखास्पप्तविंशन्महामुनिः ।
वैशम्पायननामासौ व्यासशिष्यश्चकार वै ।१।
शिष्येभ्यः प्रददौ ताश्च जगृहुस्तेऽप्यनुक्रमात् ।
याज्ञवल्क्यस्तु तत्राभूद्ब्रह्मगरातसुतो द्विज ।२।
शिष्यः परमधर्मज्ञो गुरुवृत्तिपरस्सदा ।
ऋषिर्योऽद्य महामेरोः समाजे नायमिष्यति ।३।
तस्य वै सप्तरात्रात्तु ब्रह्महत्या भविष्यति ।
पूर्णमेवं मुनीगणैस्समयौ यः कृतो द्विज ।४।
वैशम्पायन एकस्तु तं व्यतिक्रान्दवांस्तदा ।
स्वस्रीयं बालकं सोऽथ पदा स्पृष्टमघातयत् ।५।
शिष्यानाह स भो शिष्या ब्रह्महत्यापहं व्रतम् ।
चरध्वं मत्कृते सर्वे न विचार्यमिदं तथा ।६।
अथाह याज्ञवल्क्यस्तु किमेभिभंगवन्द्विजैः ।
क्लेशितैरल्पतेजोभिश्चरिष्येऽहमिदं व्रतम् ।७।

हे महामुने ! व्यास-शिष्य वैशम्पायनजी ने यजुर्वेद रूपी वृक्ष की सत्ताईस शाखाओं को रचा ।१। वे शाखाएँ उन्होंने अपने शिष्यों को पढ़ाई तथा शिष्यों ने भी उन्हें क्रमशः ग्रहण किया। हे विप्र ! उनका एक परम

धार्मिक शिष्य ब्रह्मरात-पुत्र याज्ञवल्क्य था। जो सदा ही गुरु सेवा में तत्पर रहता था। जो महामेरु स्थित हमारे समाज में सम्मिलित न होगा, उसे सात रातों में ब्रह्महत्या लगेगी। इस प्रकार मुनियों ने पहिले निश्चित किया था, परन्तु उनके उस नियम का सर्व प्रथम वैशम्पायन ने ही उल्लंघन किया था। इसके पश्चात् उसका चरण छू जाने मात्र से उनके भानजे की मृत्यु हो गई।२-५। तब वह अपने शिष्यों से बोले-हे शिष्यो ! तुम किसी प्रकार का विचार न करते हुए मेरी ब्रह्म हत्या को दूर करने के निमित्त व्रत करो।६। इस पर याज्ञवल्क्यजी ने कहा-हे भगवन् ! यह ब्राह्मण अल्प तेज वाले हैं, इन्हें कष्ट देने से क्या लाभ है? मैं ही अकेला व्रत का अनुष्ठान करूँगा।७।

ततः क्रुद्धो गुरुः प्राह याज्ञवल्क्यं महामुनिम्।
मुच्यतां यत्त्वयाधीतं मत्तो विप्रावमानक।८।
निस्तेजसो वदस्येनान्यत्त्वं ब्राह्मणपुङ्गवान्।
तेन शिष्येण नार्थोऽस्ति ममाज्ञाभङ्गकारिणा।९।
याज्ञवल्क्यस्ततः प्राह भक्त्यैतत्ते मयोदितम्।
ममाप्यलं त्वयाधीतं यन्मया तदिदं द्विज।१०।
इत्युक्तो रुधिराक्तानि सरूपाणि यजूंषि सः।
छर्दयित्वा ददौ तस्मै ययौ स स्वेच्छया मुनिः।११।
यजूंष्यथ विसृष्टानि याज्ञवल्क्येन वै द्विज।
जगृहुस्तित्तिरा भूत्वा तैत्तिरीयास्तु ते ततः।१२।
ब्रह्महत्याव्रतं चीर्णं गुरुणा चोदितैस्तु यैः।
चरकाध्वर्यवस्ते तु चरणान्मुनिसत्तम।१३।
याज्ञवल्क्योऽपि मैत्रेय प्राणायामपरायणः।
तुष्टाव प्रयतस्सूर्यं यजूंष्यभिलषंस्ततः।१४।

याज्ञवल्क्य की बात से वैशम्पायनजी क्रोधित हो गये और उन्होंने उन महामुनि याज्ञवल्क्यजी से कहा-अरे ब्राह्मणों का अपमान करने वाले मूर्ख ! तूने मुझसे जो कुछ भी पढ़ा है, उस सबका त्याग कर दे।८। तू इन सब विप्र पुंगवों को निस्तेज कहता है, इसलिये तेरे जैसे आज्ञा

करने वाले शिष्य से मैं कोई प्रयोजन नहीं रखता ।९। याज्ञवल्क्य बोले– हे ब्रह्मन् ! मैंने तो आपकी भक्ति के वश ही यह बात कही थी, अब मुझे भी आपसे कुछ प्रयोजन नहीं है, आपसे जो कुछ मैंने पढ़ा था, वह सब यह उपस्थित है ।१०। श्री पराशरजी ने कहा–यह कह कर महामुनि याज्ञवल्क्यजीने रुधिर से लथपथ यजुर्वेद मूर्तिमान् रूप में वमन करके उन्हें दिया और अपनी इच्छानुसार वहाँ से चले गये ।११। हे द्विज ! याज्ञवल्क्यजी के द्वारा वमन की हुईं उन यजुर्वेद की श्रुतियों को अन्य शिष्यों ने तीतर का रूप धारण कर ग्रहण किया, इसीलिए वे सब शिष्य तैत्तिरीय संज्ञक हुए ।१२। हे मुनिवर ! गुरु की प्रेरणा से जिन ब्राह्मणों ने ब्रह्म हत्या को नष्ट करने वाले व्रत का अनुष्ठान किया था, वे व्रत करने के कारण चरकाध्वर्यु कहे गये ।१३। फिर याज्ञवल्क्यजी ने श्री यजुर्वेद की कामना से प्राणायाम परायण रह कर सूर्य का स्तवन किया ।१४।

नमस्सवित्रे द्वाराय मुक्तेरमिततेजसे ।
ऋग्यजुस्सामभूताय त्रयीधाम्ने च ते नमः ।१५।
नमोऽग्नीषोमभूताय जगतः कारणात्मने ।
भास्कराय परं तेजस्सौषुम्नरुचिबिभ्रते ।१६।
कलाकाष्ठानिमेषादिकालज्ञानात्मरूपिणे ।
ध्येयाय विष्णुरूपाय परमाक्षररूपिणे ।१७।
बिभर्त्ति यस्सुरगणानाप्यायेन्दुं स्वरश्मिभिः ।
स्वधामृतेन च पितॄंस्तस्मै तृप्त्यात्मने नमः ।१८।
हिमाम्बुघर्मवृष्टीनां कर्ता भर्ता च यः प्रभुः ।
तस्मै त्रिकालरूपाय नमस्सूर्याय वेधसे ।१९।
अपहन्ति तमो यश्च जगतोऽस्य जगत्पतिः ।
सत्त्वधामधरो देवो नमस्तस्मै विवस्वते ।२०।
सत्कर्मयोग्यो न जनो नैवापः शुद्धिकारणम् ।
यस्मिन्ननुदिते तस्मै नमो देवाय भास्वते ।२१।

याज्ञवल्क्यजी ने कहा–अमित तेजोमय, मोक्ष-द्वार स्वरूप, वेदत्रयी रूपी तेज से सम्पन्न तथा ऋक्, यजुः और साम के साक्षात् रूप सूर्य

भगवान् को नमस्कार है।१५। अग्नि और चन्द्रमा रूपी, विश्व के कारण और सुषुम्न नामक परम तेज के धारक भगवान भास्कर को नमस्कार है।१६। कला, काष्ठा, निमेषादि काल-ज्ञान के कारण रूप और चिन्तनीय परब्रह्म विष्णु मय श्री सूर्यदेव को नमस्कार है।१७। जो अपनी किरणों द्वारा चन्द्रमा को पुष्ट कर सुधा से देवताओं को तथा स्वधा से पितरों को तृप्त करते हैं, उन तृप्ति रूप भगवान् सूर्य को नमस्कार है।१८। जो शीत वर्षा, ग्रीष्म आदि के कर्त्ता तथा विश्व के पोषक हैं, उन त्रिकाल मूर्ति भगवान् को नमस्कार है।१९। जो जगत्पति इस सम्पूर्ण संसार के अन्धकार को नष्ट करते हैं, उन सत्वधामधर विवस्वान् को नमस्कार है।२०। जिनके उदय होने पर ही मनुष्यगण सत्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं तथा जल भी उनके उदय हुए बिना शुद्धि करने वाला नहीं होता, उन भास्वान् को नमस्कार है।२१।

स्पृष्टो यदंशुभिर्लोकः क्रिया योग्यो हि जायते ।
पवित्रताकारणाय तस्मै शुद्धात्मने नमः ।२२।
नमः सवित्रे सूर्याय भास्कराय विवस्वते ।
आदित्यायादिभूताय देवादीनां नमो नमः ।२३।
हिरण्मयं रथं यस्य केतवोऽमृतवाजिनः ।
वहन्ति भुवनालोकिचक्षुषं तं नमाम्यहम् ।२४।
इत्येवमादिभिस्तेन स्तूयमानस्य वै रविः ।
वाजिरूपधरः प्राह व्रियतामिति वाञ्छितम् ।२५।
याज्ञवल्क्यस्तदा प्राह प्रणिपत्य दिवाकरम् ।
यजूंषि तानि मे देहि यानि सन्ति न मे गुरौ ।२६।
एवमुक्तो ददौ तस्मै यजूंषि भगवान्रविः ।
अयातयामसंज्ञानि यानि वेत्ति न तद्गुरुः ।२७।
यजूंषि यैरधीतानि तानि विप्रैर्द्विजोत्तम ।
वाजिनस्ते समाख्याताः सूर्योऽप्यश्वोऽभवद्यतः ।२८।
शाखाभेदास्तु तेषां वै दश पञ्च च वाजिनाम् ।
काण्वाद्यास्सुमहाभाग याज्ञवल्क्याः प्रकीर्तिताः ।२९।

जिनकी किरणों के स्पर्श होने पर ही संसार कर्मों का अनुष्ठान करने के योग्य होता है, उन पवित्रता के कारण, शुद्ध स्वरूप को नमस्कार है ।२२। सवितादेव, सूर्य, भास्कर और विवस्वान् को नमस्कार है, देवादि सब भूतों के आदिभूत भगवान आदित्य को नमस्कार है ।२३। जिनका हिरण्यमय रथ और ध्वजाएँ हैं, अमरत्व प्राप्त अश्व वहन करते हैं और जो त्रिभुवन को प्रकाशित करने में नेत्र स्वरूप हैं, उन सूर्य भगवान् को नमस्कार करता हूँ ।२४। श्री पराशरजी ने कहा—याज्ञवल्क्यजी द्वारा इस प्रकार स्तुत होने पर भगवान् सूर्य अश्व रूप से प्रकट हुए और उनसे बोले कि तुम अपना इच्छित वर माँगो ।२५। यह देखकर याज्ञवल्क्यजी ने प्रणाम पूर्वक उनसे निवेदन किया—आप मुझे वे यजुः श्रुतियाँ प्रदान करें जिनका ज्ञान मेरे गुरुजी को भी न हो ।२६। याज्ञवल्क्यजी के ऐसा कहने पर उन्होंने उन्हें आयातयाम नामक यजुः श्रुतियों का उपदेश दिया उन श्रुतियों का उनके गुरु वैशम्पायनजी को भी ज्ञान नहीं था ।२७। हे द्विज-श्रेष्ठ ! भगवान् सूर्य ने उन श्रुतियों का उपदेश अश्व रूप में प्रकट होकर दिया था इसलिए उन श्रुतियों को पढ़ने वाले ब्राह्मण वाजी संज्ञक हुए ।२८। हे महाभाग ! उन वाजि-श्रुतियों की काण्व आदि पन्द्रह शाखाएँ हैं, जो महर्षि याज्ञवल्क्यजी द्वारा प्रवृत्त की हुई बताई जाती हैं ।२९।

—: ❀ ❀ :—

छठा अध्याय

सामवेदतरोश्शाखा व्यासशिष्यस्स जैमिनिः ।
क्रमेण येन मैत्रेय विभेद शृणु तन्मम ।१।
सुमन्तुस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुकर्मास्याप्भूत्सुतः ।
अधीतवन्तौ चैकैकां संहितां तो महामती ।२।
सहस्रसंहिताभेदं सुकर्मा तत्सुतस्ततः ।
चकार तं च तच्छिष्यौ जगृहाते महाव्रतौ ।३।

हिरण्यनाभः कौसल्यः पौष्पिञ्जिश्च द्विजोत्तम ।
उदीच्यास्सामगाः शिष्यास्तस्य पञ्चशतं स्मृताः ।४।
हिरण्यनाभात्तावत्यस्संहिता यैर्द्विजोत्तमैः ।
गृहीतास्तेऽपि चोच्यन्ते पण्डितैः प्राच्यसामगाः ।५।
लोकाक्षिनौधमिश्चैव कक्षीवाँल्लाङ्गलिस्तथा ।
पौष्पिञ्जिशिष्यास्तद्भेदैस्संहिता बहुलीकृताः ।६।
हिरण्यनाभशिष्यस्तु चतुर्विंशतिसंहिताः ।
प्रोवाच कृतिनामासौ शिष्येभ्यश्च महामुनिः ।७।
तैश्चापि सामवेदोऽसौ शाखाभिर्बहुली कृतः ।
अथर्वणामथो वक्ष्ये संहितानां समुच्चयम् ।८।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! जिस क्रम से व्यास शिष्य जैमिनि ने सामवेद की शाखाओं को विभक्त किया था अब उसे श्रवण करो ।१। जैमिनि का पुत्र सुमन्तु और उसका पुत्र सुकर्मा हुआ । उन दोनों श्रेष्ठ बुद्धि वाले पुत्र-पौत्र ने सामवेद की एक-एक शाखा को पढ़ा ।२। फिर सुमन्तु-पुत्र सुकर्मा ने अपनी सामवेद संहिता के एक हजार शाखा भेद किये, जिन्हें उसके कौसल्य, हिरण्यनाभ और पौष्पिञ्जि नामक महाव्रती शिष्यों ने ग्रहण किया । हिरण्यनाभ के जो पाँच सौ शिष्य हुए वे सब उदीच्य सामग नाम से प्रसिद्ध हुए ।३—४। और जिन अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने हिरण्यनाभ से इतनी ही संहिताएँ और ग्रहण की थीं, वे सब प्राच्यसागम नाम से विख्यात हुए ।५। पौष्पिञ्जि के शिष्य लोकाक्षि, नौधमि, कक्षीवान् और लांगलि हुए । उनके शिष्य तथा प्रशिष्यों ने भी अपनी-अपनी संहिताओं की शाखा करके उनका विस्तार किया ।६। हिरण्यनाभ के एक अन्य शिष्य महामुनि कृति ने अपने शिष्यों को सामवेद की चौबीस संहिताओं का अध्ययन कराया ।७। इन शिष्यों ने भी सामवेद की इन शाखाओं को बहुत बढ़ाया । अब मैं अथर्ववेद-संहिताओं के समुच्चय को कहता हूँ ।८।

अथर्ववेदं स मुनिस्सुमन्तुरमितद्युतिः ।
शिष्यमध्यापयामास कबन्धं सोऽपि तं द्विधा ।
कृत्वा तु देवदर्शाय तथा पथ्याय दत्तवान् ।९।

देवदर्शस्य शिष्यास्तु मेधो ब्रह्मबलिस्तथा ।
शौल्कायनिः पिप्पलादस्तथान्यो द्विजसत्तम ।१०।
पथ्यस्यापि त्रयश्शिष्याः कृता यैर्द्विज संहिताः ।
जाबालिः कुमुदादिश्च तृतीयश्शौनको द्विज ।११।
शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकां तु बभ्रवे ।
द्वितीयां संहितां प्रादात्सैन्धवाय च संज्ञिने ।१२।
सैन्धवान्मुञ्जिकेशश्च द्वेधा भिन्नास्त्रिधा पुनः ।
नक्षत्र कल्पो वेदानां संहितानां तथैव च ।१३।
चतुर्थस्स्यादाङ्गिरसश्शान्तिकल्पश्च पञ्चमः ।
श्रेष्ठास्त्वथर्वणामेते संहितानां विकल्पकाः ।१४।

सुमन्तु मुनि ने अथर्ववेद का अध्ययन सबसे पहले अपने शिष्य कबन्ध को कराया, जिसने उसके दो विभाग करके उन्हें अपने शिष्य देवदर्श और पथ्य को दिया ।९। हे द्विज श्रेष्ठ ! देवदर्श के शिष्य मेध, ब्रह्मबलि, शौल्कायनि और पिप्पलाद हुए ।१०। पथ्य के तीन शिष्य जाबालि कुमुदादि शौनक हुए, जिन्होने संहिताओं को शाखा रूप में विभक्त किया ११। शौनक ने भी अपनी संहिता के दो विभाग किये इनमें से एक बभ्रु को और दूसरी सैन्धव को प्रदान की ।१२। सैन्धव से मुञ्जिकेश ने उसका अध्ययन किया और इसके प्रथम दो और फिर तीन विभाग किये । नक्षत्र कल्प वेदकल्प, संहिताकल्प चौथा आंगिरस कल्प और पाँचवाँ शांति कल्प—इन पाँच कल्पों को उन्होंने रचना की जो अथर्व-संहिताओं में सर्वोत्कृष्ट मानी गई हैं ।१३—१४।

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथिभिः कल्पशुद्धिभिः ।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ।१५।
प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत्सूतो वै रोमहर्षणः ।
पुराणसंहितां तस्मै ददौ व्यासो महामतिः ।१६।
सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रायुश्शांसपायनः ।
अकृतव्रणसावर्णी षट् शिष्यास्तस्य चाभवन् ।१७।

काश्यपः संहिताकर्त्ता सावर्णिश्शांसपायनः ।
रोमहर्षणिका चाया त्रिसृणां मूलसंहिता ।१८।
चतुष्टयेन भेदेन संहितानामिदं मुने ।१६।
आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते ।
अष्टादशपुराणानि: पुराणज्ञाः प्रचक्षते ।२०।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ।२१।

फिर पुराणार्थ में पारगत व्यासजी ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा कल्प शुद्धि सहित पुराण संहिता को रचा ।१५। व्यासजी ने अपने प्रसिद्ध शिष्य रोमहर्षण सूत को पुराण संहिता का अध्ययन कराया ।१६। इन रोमहर्षण सूत के छः शिष्य हुए, जिनके सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु शांसपायन, अकृतव्रण और सावर्णि नाम थे ।१७। काश्यप गोत्र के अकृतव्रण, सावर्णि और शांसपायन—इन तीनों ने संहिताएँ रचीं । उन तीनों संहिताओं की आधार एक संहिता रोमहर्षण सूत की है । हे मुने ! मैंने यह विष्णु पुराण संहिता चारों संहिताओं की सारभूत रची है ।१८-१६। पुराणज्ञ पुरुष जो अठारह पुराण बतलाते है, उनमें सबसे प्राचीन ब्रह्मपुराण है ।२०। पहला पुराण ब्राह्म, दूसरा पाद्म, तीसरा वैष्णव, चौथा शैव, पाँचवाँ भागवत, छठा नारदीय और सातवाँ मार्कण्डेय पुराण है २१

आग्नेयमष्टमं चैव भविष्यन्नवमं स्मृतम् ।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ।२२।
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम् ।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा ।२३।
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्ड च ततः परम् ।
महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने ।२४।
तथा चोपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च ।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च ।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत् ।२५।

यत्रैतत्तव मैत्रेय पुराणं कथ्यते मया।
एतद्वैष्णवसंज्ञं वै पाद्मस्य समनन्तरम् ।२६।
सर्गे च प्रतिसर्गे च वंशमन्वन्तरादिषु।
कथ्यते भगवान्विष्णुरशेषेष्वेत्र सत्तम ।२७।

इसी प्रकार आँठवाँ पुराण आग्नेय है। नौवाँ भविष्य पुराण, दसवां ब्रह्मवैवर्त्त तथा ग्यारहवाँ लैंग पुराण कहा जाता है ।२२। बारहवाँ वाराह, तेरहवां स्कान्द, चौदहवाँ वामन, पन्द्रहवाँ कौर्म, सोलहवाँ मात्स्य, सत्रहवाँ गारुड़ और अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है। हे महामुने! अठारह महापुराण यही हैं ।२३-२४। इनके अतिरिक्त और बहुत-से उपपुराण मुनिजनों ने बताये हैं। इन सबमें सृष्टि, प्रलय, देवादि के वंशों का वर्णन, मन्वन्तर और विभिन्न राज-वंशों के वृत्तान्त हैं ।२५। हे मैत्रेयजी! मैं तुम्हें जो पुराण इस समय सुना रहा हूँ वह पाद्मपुराण के पश्चात् कहा गया वैष्णव नामक महापुराण है ।२३। इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वन्तरादि का वर्णन करते हुए सर्वत्र केवल भगवान् विष्णु का ही संकीर्तन किया गया है ।२७।

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ।२८।
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः।
अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव ताः ।२६।
ज्ञेया ब्रह्मर्षयः पूर्वं तेभ्यो देवर्षयः पुनः।
राजर्षयः पुनस्तेभ्य ऋषिप्रकृतयस्त्रयः ।३०।
इति शाखास्समाख्याताशाखाभेदास्तथैव च।
कर्तारश्चैव शाखानां भेदहेतुस्तथोदितः ।३१।
सर्वमन्वन्तरेष्वेवं शाखाभेदास्समाः स्मृताः।
प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे द्विज ।३२।
एतत्ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया।
मैत्रेय वेदसम्बन्धः किमन्यत्कथयामि ते ।३३।

जो चौदह विद्याएँ प्रसिद्ध हैं, उनमें छः वेदांग, चार वेद, मीमांसा न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र हैं ।२८। इन्हीं में आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्व और अर्थशास्त्र को मिला लेने पर यह सब अठारह विद्याएँ हो जाती हैं। ऋषि तीन प्रकार हैं—प्रथम प्रकार के ब्रह्मर्षि, दूसरे देवर्षि और तीसरे राजर्षि ।२९-३०। इस प्रकार मैंने तुम्हें वेदों की शाखा, उनके भेद, उन के रचने वाले और शाखा-भेद के कारण भी बता दिये हैं ।३१। इसी प्रकार सब मन्वन्तरों में एक जैसे ही शाखा-भेद रहते हैं। हे विप्र ! प्रजापति श्रीब्रह्माजी से प्रकट हुई श्रुति ही नित्य है, यह सब तो उसके विकल्प ही समझो ३२। हे मैत्रेयजी ! तुमने जो वेद-विषयक जिज्ञासा की थी, उस सबका वर्णन मैंने किया है, अब बताओ और क्या सुनना चाहते हो, जिसका मैं वर्णन करूँगा ? ।३३।

—:❀:—

साँतवाँ अध्याय

यथावत्कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽसि मया गुरो ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वेकं तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ।१।
सप्त द्वीपानि पातालविधयश्च महामुने ।
सप्तलोकाश्च येऽन्तः स्था ब्रह्माण्डस्यास्य सर्वतः ।२।
स्थूलैः सूक्ष्मैस्तथा सूक्ष्मसूक्ष्मात्सूक्ष्मतरैस्तथा ।
स्थूलात्स्थूलतरैश्चैव सर्वप्राणिभिरावृतम् ।३।
अङ्गुलस्याष्टभागोऽपि न सोऽस्ति मुनिसत्तम ।
न सन्ति प्राणिनो यत्र कर्मबन्धनिबन्धनाः ।४।
सर्वे चैते वशं यान्ति यमस्य भगवन् किल ।
आयुषोऽन्ते तथा यान्ति यातनास्तत्प्रचोदिताः ।५।
यातनाभ्यः परिभ्रष्टा देवाद्यास्वथ योनिषु ।
जन्तवः परिवर्तन्ते शास्त्राणामेष निर्णयः ।६।

सोऽहमिच्छामि तच्छ्रोतुं यमस्य वशवर्तिनः ।
न भवन्ति नरा येन तत्कर्म कथयस्व मे ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे गुरो ! मेरे समस्त प्रश्नोंका आपने यथावत् उत्तर दिया है। अब एक बात और सुनने की इच्छा है, उसे आप मेरे प्रति कहिए ।१। हे महामुने ! इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत जो सात द्वीप, सात पाताल और सात लोक हैं वे सब स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा थूल और स्थूलतर प्राणियों से परिपूर्ण हैं ।२—३। एक अंगुल का अष्टमांश भी ऐसा नहीं है जहाँ कर्म के बन्धन में बँधे हुए जीवों का निवास न हो ।४। परंतु हे भगवन् ! जब आयु का अन्त होता है, तब ये सब यम के वश में पड़कर उन्हीं के निर्देशन में नरकादि की विभिन्न यातनाएँ भोगते हैं।५। फिर पाप भोग के निःशेष होने पर उन्हें देवादि योनियों में भ्रमण करना होता है—सभी शास्त्र ऐसा कहते हैं ।६। इसलिए, आप मुझे उस कर्म को बताइये, जिसे करके मनुष्य को यमराज के वश में नहीं पड़ना होता, मुझे इसी के जानने की इच्छा है।७।

अयमेव मुने प्रश्नो नकुलेन महात्मना ।
पृष्टः पितामहः प्राह भीष्मो यत्तच्छृणुष्व मे ।८।

पुरा ममागतो वत्स सखा कालिङ्गको द्विजः ।
स मामुवाच पृष्टो वै मया जातिस्मरो मुनिः ।९।

तेनाख्यातमिदं सर्वमित्थं चैतद्भविष्यति ।
तथा च तदभूद्वत्स यथोक्तं तेन धीमता ।१०।

स पृष्टश्च मया भूयः श्रद्दधानेन वै द्विजः ।
यद्यदाह न तद्दृष्टमन्यथा हि मया क्वचित् ।११।

एकदा तु मया पृष्टमेतद्यद्भवतोदितम् ।
प्राह कालिङ्गको विप्रस्स्मृत्वा तस्य मुनेर्वचः ।१२।

जातिस्मरेण कथितो रहस्यः परमो मम ।
यमकिङ्करयोर्योऽभूत्संवादस्तं ब्रवीमि ते ।१३।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने ! ऐसा ही प्रश्न पितामह भीष्म से महात्मा नकुल ने किया था। उन्होंने उसका जो उत्तर दिया, वह तुम्हें बताता हूँ सुनो।८। भीष्मजी ने कहा—हे वत्स ! पहिले की बात है—मेरे पास कलिंग देश का एक ब्राह्मण आया। वह मेरा मित्र था। उसने मुझ से कहा—'मेरे प्रश्न करने पर पूर्वजन्म के वृतान्त को जानने वाले एक मुनि ने मुझे बताया था कि यह सब बातें अमुक-अमुक प्रकार होंगी। हे वत्स ! उस मतिमान ने जो बात जिस प्रकार बताई, वह उसी प्रकार हुई।९-१०। इससे उसके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गई और मैंने उससे कुछ अन्य प्रश्न किये। उनका भी जो उत्तर उस विप्रश्रेष्ठ ने दिया उस सबके विपरीत कभी कुछ होता मैंने नहीं देखा।११ जो बात तुमने मुझसे पूछी है, वही बात एक दिन मैंने उस कलिंग देशीय ब्राह्मण से पूछी, तब उस मुनि के वचनों का स्मरण करके मुझे बताया कि उस जातिस्मर मुनि ने यमराज और उनके दूतों के मध्य हुए संवाद के अत्यन्त गूढ़ रहस्य को मुझे सुनाया था। उसे ही मैं जैसे का तैसा तुम्हें सुनाता हूँ।१२-१३।

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्त वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान्प्रभुरहमन्यनृणामवैष्णवानाम् ।१४।

अहममरवरार्चितेन धात्रा यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।
हरिगुरुवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः प्रभवति संयमने ममापि विष्णुः १५

कटकमुकुटकर्णिकादिभेदः कनकमभेदमपीष्यते यथैकम् ।
सुरपशुमनुजादिकल्पनाभिर्हरिरखिलाभिरुदीर्यते तथैकः ।१६।

क्षितितलपरमाणवोऽनिलान्ते पुनरुपयान्ति यथैकतां धरित्र्याः ।
सुरपशुमनुजादयस्तथान्ते गुणकलुषेण सनातनेन तेन ।१७।

हरिममरवरार्चिताङ्घ्रिपद्मं प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्यः ।
तमपगतसमस्तपापबन्धं व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम् ।१८।

इति यमवचनं निशम्य पाशी यमपुरुषस्तमुवाच धर्मराजम् ।
कथय मम विभो समस्तधातुर्भवति हरेः खलु यादृशोऽस्य भक्तः ।१९

न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिमसुहृद्विपक्षपक्षे ।
न हरति न च हन्ति किञ्चिदुच्चैः सितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम् २०
कलिकलुषमलेन यस्य नात्मा विमलमतेर्मलिनीकृतस्तमेनम् ।
मनसि कृतजनार्दनं मनुष्यं सततमवेहि हरेरतीवभक्तम् ।२१।

कालिंग ने कहा-यमराज ने अपने अनुचर को हाथ पाश धारण किये देखकर, उसके कान में कहा—हे अनुचर ! मैं भगवान् विष्णु के अभक्तों का ही स्वामी हूँ, इसलिये भगवान के शरणागतों को मत पकड़ना ।१४। देवताओं के पूज्यनीय विधाता ने मुझे 'यम' नामक पद देकर लोकों के पाप-पुण्य के विचारार्थ नियुक्त किया है । मैं अपने गुरु श्रीहरि के अधीन हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ । वे भगवान् श्रीहरि मुझ पर भी शासन करने में समर्थ हैं ।१५। जैसे एक ही स्वर्ण कटक, मुकुट, कर्णिकादि के भेद से अनेक रूप वाला दिखाई देता है वैसे ही एक ही श्री हरि के देवता मनुष्य और पशु आदि के रूप में नाना भेद कल्पित किये जाते हैं ।१६। जैसे वायु के शान्त होने पर, उससे उड़ते हुए परमाणु भूमि में मिल जाते हैं, वैसे ही गुणों के क्षोभ से उत्पन्न हुए सब देव, मनुष्य, पशु आदि अन्त में उसी सनातन ब्रह्म में लीन हो जाते हैं ।१७। जो मनुष्य देवताओं द्वारा वन्दित भगवान् के चरण कमलों की वन्दना परमार्थ बुद्धि से करता है, वह घृताहुति से प्रदीप्त अग्नि के समान पाप-बंधन से छूट जाता है । तुम ऐसे पुरुष को दूर से देखकर ही वहाँ से चल देना ।१८। यमराज की बात सुनकर पाशधारी उस यमदूत ने उनसे पूछा—हे विभो ! सबके स्वामी भगवान श्रीहरि का भक्त किस प्रकार का होता है, यह मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१९। यमराज ने कहा—जो अपने वर्णाश्रम धर्म से विचलित नहीं होता, अपने सुहृदों और वैरियों में समान भाव रखता हैं, किसी के धन का हरण नहीं करता तथा किसी जीव की हिंसा में प्रवृत्त नहीं होता उस स्वच्छ चित्त मनुष्य को भगवान् विष्णु का भक्त समझो ।२०। जिस स्वच्छ बुद्धि का चित्त कलियुग के कल्पष से मलिन नहीं हुआ, जिसने अपने हृदय में सदैव भगवान् श्रीजनार्दन को धारण कर रखा है, उस मनुष्य को भगवान् श्रीहरि का अतीव भक्त मानो ।२१।

कनकमपि रहस्यवेक्ष्य बुद्ध्या तृणमिव यस्समवैति वै परस्वम् ।
भवति च भगवत्यनन्यचेताः पुरुषवरं तमवेहि विष्णुभक्तम् ।२२।
स्फटिकगिरिशिलामलः क्व विष्णुर्मनसि नृणां क्व च मत्सरादिदोषः ।
न हि तुहिनमयूखरश्मिपुञ्जे भवति हुताशनदीप्तिजः प्रतापः ।२३।
विमलमतिरमत्सरः प्रशान्तश्शुचिचरितोऽखिलसत्त्वमित्रभूतः ।
प्रियहितवचनोऽस्तमानमायो वसति सदा हृदि तस्य वासुदेवः ।२४।
वसति हृदि सनातने च तस्मिन् भवति पुमाञ्जगतोऽस्य सौम्यरूपः ।
क्षितिरसमतिरम्यमात्मनोऽन्तः कथयति चारुतयैव शालपोतः ।२५
यमनियमविधूतकल्मषाणामनुदिनमच्युतसक्तमानसानाम ।
अपगतमदमानमत्सराणां त्यज भट दूरतरेण मानवानाम् ।२६।
हृदि यदि भगवाननादिरास्ते हरिरसिशङ्खगदाधरोऽव्ययात्मा ।
तदघमघविघातकर्तृ भिन्नं भवति कथं सति चान्धकारमर्के ।२७।
हरति परधनं निहन्ति जन्तून् वदति तथानृतनिष्ठुराणि यश्च ।
अशुभजनितदुर्मदस्य पुंसः कलुषमतेर्हृदि तस्य नास्त्यनन्तः ।२८।

जो निर्जन स्थान में पराये स्वर्ण को भी पड़ा देखकर उसे तिनके के समान मानता है और भगवान् श्रीहरि का अनन्य भाव से निरंतर चिंतन करता है, उस मनुष्य श्रेष्ठ को भगवान् का भक्त समझो ।२२। कहाँ तो स्फटिक शिला के तुल्य अत्यन्त असंग भगवान् श्रीहरि और कहाँ मनुष्य के मन में सदा बसे रहने वाले राग द्वेषादि दोष-चन्द्रमा के रश्मि-जाल में अग्नि के तेज जैसे गर्मी का रहना कभी भी सम्भव नहीं है २३। जो मनुष्य स्वच्छ चित्त, मत्सरता-हीन, प्रशान्त, पुनीत चरित्र, सब प्राणियों का प्रेमी, सुहृदय तथा हित की बात कहने वाला, निरभिमान और माया से अलग रहता है उसके हृदय में भगवान् श्री वासुदेव का सदा निवास रहता है ।२४। जब वे सनातन भगवान् हृदय में प्रतिष्ठित होते हैं, तब वह मनुष्य संसार के लिये शांत रूप हो जाता है, जैसे नवीन शालवृक्ष अपने सौन्दर्य से ही अपने में भरे हुए श्रेष्ठ रस का भान करा देता है ।२५। हे दूत ! जिनके पाप-समूह यम-नियम से नष्ट हो गये और

जिनका हृदय निरन्तर भगवान् अच्युत में रमा रहता है तथा जिनमें अह और मात्सर्य नाम मात्र को भी शेष नहीं है, उन मनुष्यों को दूर से छोड़ देना ।२६। जिसके हृदय में खड्ग, शंख, गदा आदि के धारण करने वाले अव्ययात्मा श्रीहरि निवास करते हैं, तो उनके निवास से उसके सम्पूर्ण पापों का क्षय हो जाता है । भला सूर्य के स्थित रहते हुए अँधेरा कैसे रह सकता है ? ।२७। पर-धन का अपहरण करने वाले, प्राणियों की हिंसक मिथ्या और कटु भाषी अथवा अशुभ कर्मों के करने वाले दुष्ट बुद्धि मनुष्य के हृदय में अनन्त भगवान् कभी भी निवास नहीं करते ।२८।

न सहति परसम्पदं विनिन्दां कलुषमतिः कुरुते सतामसाधुः ।
न जयति न ददाति यश्च सन्तं मनसि न तस्य जनार्दनोऽधमस्य ।२६
परमसुहृदि बान्धवे कलत्रे सुततनयापितृमातृभृत्यवर्गे ।
शठमतिरुपयाति योऽर्थतृष्णां तमधमचेष्टमवेहि नास्य भक्तम् ।३०
अशुभमतिरसत्प्रवृत्तिसक्वस्सततमनार्यकुशीलसङ्गमत्तः ।
अनुदिनकृतपापबन्धयुक्तः पुरुषपशुर्न हि वासुदेवभक्तः ।३१।
सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान्परमेश्वरस्य एकः ।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान्विहाय दूरात् ।३२।
कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।
भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ।३३।
वसति मनसि यस्य सोऽव्ययात्मा पुरुषवरस्य न तस्य दृष्टिपाते ।
तव गतिरथ वा ममास्ति चक्रप्रतिहतवीयबलस्य सोऽन्यलोक्यः ।३४

जो मतिहीन मनुष्य पराये वैभव से ईर्ष्या करता है, परायी निंदा में लगा रहता है, सन्तजनों का तिरस्कार करता है, भगवान् श्री हरि का पूजन नहीं करता अथवा दान नहीं देता, उस अधम के हृदय में भगवान् श्रीजनार्दन कभी भी निवास नहीं करते ।२६। जो दुष्ट मति मनुष्य अपने परम सुहृद, बंधु-बांधव, स्त्री, पुत्र, पुत्री, माता, पिता, सेवकादि के प्रति धन की तृष्णा दिखाता है, उस पाप का आचरण करने वाले को तुम कभी भी भगवद्भक्त मत समझना ।३०। जो खोटी बुद्धि वाला मनुष्य मिथ्या कर्मों में तत्पर रहता है, नीच मनुष्यों के साथ रहता या उन जैसा

आचरण करता है तथा पाप युक्त कर्मों के बंधन में दिनों दिन बँधता जाता है उसे मनुष्य के रूप में पशु ही समझो। ऐसा पुरुष कभी भी भगवान् का भक्त नहीं हो सकता।३१। तथा भगवान् के हृदय में स्थित होने के कारण, जिनकी ऐसी स्थिर बुद्धि हो गई है कि मैं और यह समस्त प्रपंच एक मात्र वासुदेव ही हैं उन मनुष्यों को तुम दूर से ही त्याग देना।३२। जो मनुष्य' हे पद्माक्ष ! हे वासुदेव ! हे विष्णो। हे धरणीधर ! हे अच्युत ! हे शंख-चक्र पाणे ! हमें शरण दीजिये' इस प्रकार भगवान् को पुकारते हों, उन पाप रहित मनुष्यों को तुम दूर से ही छोड़ देना।३३। जिस पुरुषवर के अन्तःकरण में उन अव्ययात्मा भगवान् का निवास रहता है, वह जहाँ तक देखता है, वहाँ तक प्रभु चक्र के प्रभाव से तुम या मैं अपने बल-वीर्य के क्षीण हो जाने के कारण नहीं पहुँच सकते, क्योंकि वह तो अन्य लोकों का अधिकारी है।३४।

इति निजभटशासनाय देवो रवितनयस्स किलाह धर्मराजः।
मम कथितमिद च तेन तुभ्यं कुरुवर सम्यगिदं मयापि चोक्तम्
नकुलेतन्ममाख्यातं पूर्वं तेन द्विजन्मना।
कलिङ्गदेशादभ्येत्य प्रीतेन सुमहात्मना।३६
मयाप्येतद्यथान्यायं सम्यग्वत्स तवोदितम्।
यथा विष्णुमृते नान्यत्त्राणं संसारसागरे।३६।
किङ्कराः पाशदण्डाश्च न यमो न च यातनाः।
समर्थास्तस्य यस्यात्मा केशवालम्बनस्सदा।३८।
एतन्मुने समाख्यातं गीतं वैवस्वतेन यत्।
त्वत्प्रश्नानुगतं सम्यक्किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि।३६।

कालिंग ने कहा—हे कुरुश्रेष्ठ ! सूर्य पुत्र धर्मराज ने अपने दूत को इस प्रकार शिक्षामय आदेश दिया। उस जातिस्मर मुनि ने मुझे यह प्रसंग सुनाया था, जिसे मैंने यथावत तुमसे कहा है।३५। भीष्मजी ने कहा—हे नकुल ! कलिंग देश से आये हुए उस ब्राह्मण ने प्रसन्नता सहित मुझसे यह सब कथा कही थी।३६। हे वत्स ! जिस प्रकार, इस संसार में केवल भगवान् विष्णु के अतिरिक्त और कोई भी रक्षक जीव का नहीं हो सकता,

वह सब वृत्तान्त यथावत तुमसे कहा है ।३७। जिसका हृदय निरन्तर श्री केशव भगवान् में लगा है उसका यमराज, उनके दूत, उनका दण्ड तथा यातनाएँ कुछ भी अनिष्ट करने मे समर्थ नहीं हो सकते ।३८। श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने ! तुमने जो कुछ पूछा था, उसके समाधान स्वरूप मैंने तुम्हें स्वयं यमराज का कथन ही भले प्रकार सुना दिया । अब और क्या सुनने की इच्छा करते हो, सो कहो ? ।३९।

—❀❀—

आठवाँ अध्याय

भगवन्भगवान्देवः संसारविजिगीषुभिः ।
समाख्याहि जगन्नाथो विष्णुराराध्यते यथा ।१।
आराधिताच्च गोविन्दादाराधनपरैर्नरैः ।
यत्प्राप्यते फलं श्रोतुं तच्चेच्छामि महामुने ।२।
यत्पृच्छति भवानेतत्सगरेण महात्मना ।
और्वः प्राह यथा पृष्टस्तन्मे निगदतश्शृणु ।३।
सगरः प्रणिपत्यैनमौर्वं पप्रच्छ भार्गवम् ।
विष्णोराराधनोपायसम्बन्धं मुनिसत्तत ।४।
फलं चाराधिते विष्णौ यत्पुंसामभिजायते ।
स चाह पृष्टो यत्नेन तस्मै तन्मेऽखिलं शृणु ।५।
भौमं मनोरथं स्वर्गिवन्द्यं च यत्पदम् ।
प्राप्नोत्याराधिते विष्णौ निर्वाणमपि चोत्तमम् ।६।
यद्यदिच्छति यावच्च फलमाराधितेऽच्युते ।
तत्तदाप्नोति राजेन्द्र भूरि स्वल्पमथापि वा ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवान् ! संसार को जीतने की इच्छा वाले पुरुष भगवान् विष्णु की आराधना किस प्रकार करते हैं । वह मुझे

हे महामुने ! उन भगवान् गोविन्द का आराधन करने पर, उन्हें जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे भी सुनने की मैं इच्छा करता हूँ ।२। श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! तुमने जो प्रश्न किया था, तब उन ऋषि ने उन्हें जो उत्तर दिया था, वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो ।३। हे मुनिवर ! सगर ने उन भृगुवंशी और्व को प्रणाम किया और उनसे भगवान् श्री हरि की आराधना-विधि और उससे प्राप्त होने वाले फल के विषय में प्रश्न किया । उनके प्रश्न का और्व ऋषि ने जो उत्तर दिया, उस सबको सावधानी से सुनो ।४-५। और्व ने कहा—भगवान् विष्णु की आराधना करके मनुष्य पृथिवी विषयक सभी मनोरथ ,स्वर्ग, स्वर्ग में रहने वालों के लिये भी वन्दनीय ब्रह्मपद तथा परम निर्वाणपद भी पा लेता है ।६। हे राजेन्द्र ! वह जिस-जिस फलकी जितनी अभिलाषा करता है, वह थोड़ा हो अथवा कितना भी अधिक हो, भगवान श्री अच्युत की आराधना से इसे अवश्य ही सब मिल जाता है ।७।

यत्तु पृच्छसि भूपाल कथमाराध्यते हरिः ।
तदहं सकलं तुभ्यं कथयामि निबोध मे ।८।
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः ।९।
यजन्यज्ञान्यजत्येनं जपत्येनं जपन्नृप ।
निघ्नन्नन्यान्हिनस्त्येनं सर्वभूतो यतो हरिः ।१०।
तस्मात्सदाचारवता पुरुषेण जनार्दनः ।
आराध्यते स्ववर्णोक्तधर्मानुष्ठानकारिणा ।११।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च पृथिवीपते ।
स्वधर्मतत्परो विष्णुमाराधयति नान्यथा ।१२।
परापवादं पैशुन्यमनृतं च न भाषते ।
अन्योद्वेगकरं वापि तोष्यते तेन केशवः ।१३।
परदारपरद्रव्यपरहिंसासु यो रतिम् ।
न करोति पुमान्भूप तोष्यते तेन केशवः ।१४।

हे राजन् ! तुमने श्रीहरि की आराधना कैसे की जाय, ऐसा जो प्रश्न किया है, वह सभी तुम्हें बतलाता हूँ, यत्न पूर्वक सुनो ।८। वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला पुरुष ही भगवान् विष्णु की आराधना का अधिकारी है, उसके बिना उनकी प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती ।९। हे राजन् ! यजनकर्त्ता पुरुष उन्हीं भगवान् का यजन करता है, जापक उन्हीं का जप करता है तथा परायी हिंसा करने वाला भी उनकी ही हिंसा करता है, क्योंकि भगवान् श्रीहरि सर्वभूतात्मक हैं ।१०। इसीलिये सदाचारी पुरुष को अपने वर्ण के अनुकूल धर्म का आचरण करते हुए भगवान् जनार्दन की ही उपासना करनी चाहिए ।११। हे भूपते ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी अपने-अपने वर्ण धर्म के पालन पूर्वक विष्णु का आराधन करते हैं, किसी और प्रकार से नहीं करते ।१२। जो किसी की निन्दा, पैशुन्य और मिथ्या भाषण नहीं करता और किसी को खेदजनक वचन नहीं कहता, उस पर भगवान् केशव अवश्य ही प्रसन्न होते हैं ।१३। हे राजन् ! जो परनारी, पर-धन तथा पर-हिंसा में कभी भी मन को नहीं लगाता, उससे भगवान् केशव सदा ही संतुष्ट रहते हैं ।१४।

न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः ।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः ।१५।
देवद्विजगुरूणां च शुश्रूषासु सदोद्यतः ।
तोष्यते तेन गोविन्दः पुरुषेण नरेश्वर ।१६।
यथात्मनि च पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तथा ।
हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते सुखम् ।१७।
यस्य रागादिदोषेण न दुष्टं नृप मानसम् ।
विशुद्धचेतसा विष्णुस्तोष्यते तेन सर्वदा ।१८।
वर्णाश्रमेषु ये धर्माश्शास्त्रोक्ता नृपसत्तम ।
तेषु तिष्ठन्नरो विष्णुमाराधयति नान्यथा ।१९।
तदहं श्रोतुमिच्छामि वर्णधर्मानशेषतः ।
तथैवाश्रमधर्मांश्च द्विजवर्य ब्रवीहि तान् ।२०।

हे मानवेन्द्र ! जो पुरुष किसी देहधारी को अथवा अन्य किसी जीव को पीड़ित नहीं करता या उसकी हिंसा नहीं करता उस पर श्री केशव भगवान् सदा प्रसन्न रहते हैं ।१५। जो मनुष्य सदा ही देव ब्राह्मण और गुरुजन की सेवा में लगा रहता है, उससे भगवान् गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं ।१६। जो सभी प्राणियों का हित चिन्तन अपनी सन्तान के समान करता है, वह भगवान् श्रीहरि को सुख पूर्वक प्रसन्न कर लेता है ।१७। जिसका मन रागादि दोषों से मलिन नहीं हुआ है, उस शुद्धचेता पुरुष पर भगवान् विष्णु सदैव प्रसन्न रहते हैं ।१८। हे नृपसत्तम ! शास्त्रों ने जिन-जिन वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन किया हैं, उन-उन के आचरण पूर्वक ही मनुष्य उन भगवान् विष्णु की आराधना कर सकता है, अन्य प्रकार से नहीं ।१९। सगर ने कहा- हे द्विजवर ! अब मैं सभी वर्ण-धर्मों को सुनने की इच्छा करता हूँ, आप उन्हें कहने की कृपा करिये ।२०।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाक्रमम् ।
त्वमेकाग्रमतिर्भूत्वा शृणु धर्मान्मयोदितान् ।२१।

दानं दद्याद्यजेद्देवान्यज्ञस्स्वाध्यायतत्परः ।
नित्योदकी भवेद्विप्रः कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम् ।२२।

वृत्यर्थं याजयेच्चान्यानन्यानध्यापयेत्तथा ।
कुर्यात्प्रतिग्रहदानं शुक्लार्थान्नयायतो द्विजः ।२३।

सर्वभूतहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद् द्विजः ।
मैत्री समस्तभूतेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम् ।२४।

ग्राव्णि रत्ने च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद्‌ द्विजः ।
ऋतावभिगमः पत्न्यां शस्यते चास्य पार्थिव ।२५।

दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपि वा ।
यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च पार्थिवः ।२६।

शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका ।
तत्रापि प्रथमः कल्पः पृथिवीपरिपालनम् ।२७।

श्रौर्व ने कहा—मैं जिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के धर्म को कहता हूँ, उन्हें एकाग्र मन से सुनो ।२१। ब्राह्मण को उचित है कि वह दान करे, यज्ञों से देवताओं का यजन करे, स्वाध्याय करे, नित्य स्नान, तर्पण तथा अग्न्याधानादि कर्मों को करे, ।२२। अपनी वृत्ति के लिये यज्ञ करावे, शिक्षा दे तथा न्याय से उपार्जित धन में से ही न्याय के अनुकूल द्रव्य का संचय करे ।२३। कभी किसी का अहित-चिन्तन न करे और सदा सब जीवों के हित में तत्पर रहे । सब प्राणियों से मैत्रि-भाव रखना ब्राह्मण का परम धर्म कहा है ।२४। पराये धन में और पाषाण में समान बुद्धि रखे । पत्नी का ऋतु काल में ही सेवन करे, यही ब्राह्मण के लिये उचित कर्म हैं ।२५। क्षत्रियों का कर्त्तव्य है कि ब्राह्मणों को उनकी इच्छानुसार दान दें, नाना प्रकार के यज्ञों को करे और अध्ययन शील रहे ।२६। शस्त्रधारण पूर्वक पृथिवी की रक्षा करना ही क्षत्रिय की श्रेष्ठ आजीविका है, इनमें भी पृथिवी का परिपालन तो सर्वोत्कृष्ट ही है ।२७।

धारित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपाः ।
भवन्ति नृपतेरंशा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ।२८।
दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् ।
प्राप्नोत्यभिमताँल्लोकान्वर्णसंस्थां करोति यः ।२९।
पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं च मनुजेश्वर ।
वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोक पितामहः ।३०।
तस्याप्यध्ययनं यज्ञो दानं धर्मश्च शस्यते ।
नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानं च कर्मणाम् ।३१।
द्विजातिसंश्रितं कर्म तादर्थ्यं तेन पोषणम् ।
क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारूद्भवेन वा ।३२।
शूद्रस्य सन्नतिश्शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ।
अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्सङ्गो विप्ररक्षणम् ।३३।

पृथिवी का पालन करने से ही राजागण धन्य हो जाते हैं, क्योंकि पृथिवी पर जो यज्ञादि कर्म होते हैं, उनका अंश राजा को भी मिलता है ।२८। जो राजा अपने वर्ण-धर्म के प्रति आस्थावान् होता है, वह दुष्टों को

दण्ड और साधुजन का पालन करने वाले अपने कर्म के प्रभाव से ही इच्छित लोकों को प्राप्त कर लेता है ।२९। हे नरेश्वर ! लोक पितामह ब्रह्माजी ने वैश्यों के कर्म पशु-पालन, वाणिज्य और कृषि—यह सब आजीविका के रूप दिये हैं ।३०। वैश्य के लिये भी अध्ययन, यज्ञ, दान और नित्य, नैमित्तिकादि कर्म करना आवश्यक है ।३१। शूद्र को द्विजातियों के प्रयोजनानुकूल कर्म करना चाहिये, वही उसकी आजीविका है, इसके अतिरिक्त वस्तुओं का क्रय-विक्रय या कारीगरी के कार्य से जीवनयापन करे ।३२। नम्रता, शौच, सेवा, स्वामि-भक्ति, मन्त्ररहित, यज्ञ, अस्तेय सत्संग, और ब्राह्मण की रक्षा, शूद्र के यह प्रमुख कर्त्तव्य हैं ।३३।

दानं च दद्याच्छुद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च ।
पित्र्यादिकं च तत्सर्वं शूद्रः कुर्वीत तेन वै ।३४।
भृत्यादिभरणार्थात सर्वेषां च परिग्रहः ।
ऋतुकालेऽभिगमन स्वदारेषु महीपते ।३५।
दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नातिमानिता ।
सत्यं शौचमनायासो मङ्गलं प्रियवादिता ।३६।
मैत्र्यस्पृहा तथा तद्वदकार्पण्यं नरेश्वर ।
अनसूया च सामान्यवर्णानां कथिता गुणाः ।३७।
आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः ।
गुणांस्तथापद्धर्मांश्च विप्रदीनामिमाञ्छृणु ।३८।
क्षात्रं कर्म द्विजस्योक्तं वैश्यं कर्म तथापदि ।
राजन्यस्य वैश्योक्त शूद्रकर्म न चैतयोः ।३९।
सामर्थ्ये सति तत्त्याज्यमुभाभ्यामपि पार्थिव ।
तदेवापदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसङ्करम् ।४०।
इत्येते कथिता राजन्वर्णधर्मा मया तव ।
धर्मानाश्रमिणां सम्यग्ब्रुवतो मे निशामय ।४१।

हे राजन् ! शूद्र के लिये भी दान देना बलिवैश्यदेव, नमस्कार और अल्प यज्ञों का अनुष्ठान करना, पितृ श्राद्धादि करना, अपने आश्रितों

के परि-पालनार्थं सब वर्णों से धन ग्रहण करना और अपनी ही भार्या में ऋतुगामी होना उचित कर्म हैं ।३४-३५। हे राजन् ! इनके अतिरिक्त सब जीवों पर दया, तितिक्षा, अमानिता, सत्य, शौच, मंगलाचरण, प्रियवादिता, मित्रता, अकृपणता, परदोष दर्शन-शून्यता आदि गुण तो सभी वर्णों द्वारा समान रूप से पालनीय हैं ३६-३७। सब वर्णों के यह सामान्य लक्षण कहे गये, अब इन विप्रादि चारों वर्ण के आपद्धर्म और गुणों को सुनो ।३८। आपत्ति काल में ब्राह्मण को क्षत्रिय या वैश्य की वृत्ति का अवलम्बन करना उचित है और क्षत्रिय को केवल वैश्य वृत्त का आश्रय लेना चाहिए । इनको शूद्र वृत्ति का आश्रय लेना कभी भी उचित नहीं है ।३९। जब पुनः समर्थ हो जाय तो इन उपरोक्त वृत्तियों को छोड़ दे, क्योंकि यह तो आपद्काल में ही अवलम्बन करने योग्य है, अन्यथा कर्म सङ्करत्व की प्राप्ति होगी ।४०। हे राजन ! इस प्रकार मैंने वर्ण धर्म का वर्णन तुम्हें सुनाया, अब आश्रम धर्मों का जो निरूपण करता हूँ उसे यत्न से सुनो ।३१।

—:❀❀:—

नवाँ अध्याय

बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः ।
गुरुगेहे वसेद्भूत ब्रह्मचारी समाहितः ।१।
शौचाचारव्रतं तत्र कार्यं शुश्रूषणं गुरोः ।
व्रतानि चरता ग्राह्यो वेदश्च कृतबुद्धिना ।२।
उभे सन्ध्ये रविं भूप तथैवाग्निं समाहितः ।
उपतिष्ठेत्तदा कुर्याद् गुरोरप्यभिवादनम् ।३।
स्थिते तिष्ठेद्व्रजेद्याये नीचैरासीत चासति ।
शिष्यो गुरोर्नृपश्रेष्ठ प्रतिकूलं न सञ्चरेत् ।४।
तेनैवोक्तं पठेद्वेदं नान्यचित्तः पुरःस्थितः ।
अनुज्ञातश्च भिक्षान्नमश्नीयाद्गुरुणा ततः ।५।

अवगाहेदपः पूर्वमाचार्येणावगाहिताः ।
समिज्जलादिकं चास्य कल्यं कल्यमुपानयेत् ।६।

गृहीतग्राह्यवेदश्च ततोऽनुज्ञामवाप्य च ।
गार्हस्थ्यमाविशेत्प्राज्ञो निष्पन्नगुरुनिष्कृतिः ।७।

और्व ऋषि ने कहा—बालक को उपनयन संस्कार के पश्चात् वेदाध्ययन परायण होकर और ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरु गृह में निवास करना चाहिये ।१। वहां रह कर वह शौच और आचार-व्रत का पालन तथा गुरु-सेवा करे एवं व्रतादि के पालन पूर्वक स्थिर चित्त से वेदाध्ययन करे ।२। हे राजन् ! दोनों सन्ध्याओं में एकाग्रमन से सूर्य और अग्नि की उपासना करे तथा गुरुदेव का अभिवादन करे ।३। जब गुरुजी खड़े हों, तब खड़ा हो जाय, जब चलें तब पीछे पीछे चले और जब बैठें तब नीचे बैठ जाय। इस प्रकार करते हुए कभी भी गुरु के विरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहिए ।४। गुरुजी कहें तभी उनके सामने बैठ कर वेद का अध्ययन करे और जब उनकी आज्ञा हो तब भिक्षा से प्राप्त अन्न का भोजन करे ।५। जब आचार्य जल में स्नान करलें तब स्नान करे और नित्य प्रति उनके लिये समिधा, जल, कुश, पुष्पादि लाकर एकत्र करे ।६। इस प्रकार वेदाध्ययन को पूर्ण करके मतिमान शिष्य गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके उन्हें गुरु-दक्षिणा दे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो ।७।

विधिनावाप्तदारस्तु धनं प्राप्य स्वकर्मणा ।
गृहस्थकार्यमखिलं कुर्याद्भूपाल शक्तितः ।८।

निवापेन पितृनर्चन्यज्ञैर्देवांस्तथातिथीन् ।
अन्नैर्मुनींश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ।९।

भूतानि बलिभिश्चैव वात्सल्येनाखिलं जगत् ।
प्राप्नोति लोकान्पुरुषो निजकर्मसमार्जितान् ।१०।

भिक्षाभुजश्च ये केचित्परिव्राड्ब्रह्मचारिणः ।
तेऽप्यत्रैव प्रतिष्ठन्ते गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ।११।

वेदाहरणकार्याय तीर्थस्नानाय च प्रभो ।
अटन्ति वसुधां विप्राः पृथिवीदर्शनाय च ।१२।
अनिकेता ह्यनाहारा यत्र सायंगृहाश्च ये ।
तेषां गृहस्थः सर्वेषां प्रतिष्ठा योनिरेव च ।१३।
तेषां स्वागतदानादि वक्तव्यं मधुरं नृप ।
गृहागतानां दद्याच्च शयनासनभोनम् ।१४।

हे राजन् ! उस समय विधिवत् किसी योग्य कन्या का पाणिग्रहण करके अपने वर्ण से अनुकूल वृत्ति के द्रव्योपार्जन करे तथा अपनी शक्ति के अनुसार व्ययादि कार्य करे ।८। पितरों की पिण्डादानादि से, देवताओं की यज्ञादि के अनुष्ठान से अतिथियों की अन्न-दान से, ऋषियों की स्वाध्याय से, प्रजापति की पुत्रोत्पादन से, भूतों की बलि से, और सम्पूर्ण विश्व की वात्सल्य भाव से, सन्तुष्ट करे । अपने इन कर्मों के द्वारा वह पुरुष श्रेष्ठ से श्रेष्ठ लोक को प्राप्त कर लेता है ।९-१०। भिक्षावृत्ति पर निर्भर रहने वाले परिव्राजकों और ब्रह्मचारियों आदि का आश्रय भी यह गृहस्थाश्रम ही है, इसीलिये इसे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ।११। हे राजन् ! ब्राह्मणगण वेदाध्ययन, तीर्थ स्नान और देव-दर्शन आदि के निमित्त पृथिवी पर भ्रमण करते रहते है ।१२। उनमें से जिनका कोई निश्चित घर और भोजनादि की व्यवस्था नहीं होती वे जहाँ सायं-काल हो जाता हैं, वहीं रात्रि-विश्रमार्थ ठहर जाते हैं । उनका भी आश्रय यह गृहस्थाश्रम ही है ।१३। हे राजन् ! जब ऐसे व्यक्ति अपने घर पर आवें तब उनका मीठे वचनों और कुशलादि पूछने से स्वागत करना चाहिये । उन्हें ठहरने को निवास, शय्या, आसन और भोजनादि भी अपने सामर्थ्यानुसार देना चाहिये ।१४।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ।१५।
अवज्ञानमहङ्कारो दम्भश्चैव गृहे सतः ।
परितापोपघातौ च पारुष्यं च न शस्यते ।१६।

यस्तु सम्यक्करोत्येवं गृहस्थः परमं विधिम् ।
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोत्यनुत्तमान् ।१७।
वयःपरिणतो राजन्कृतकृत्यो गृहाश्रमी ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ।१८।
पर्णमूलफलाहारः केशश्मश्रुजटाधरः ।
भूमिशायी भवेत्तत्र मुनिस्सर्वातिथिर्नृप ।१९।
चर्मकाशकुशैः कुर्यात्परिधानोत्तरीय के ।
तद्वत्त्रिषवणं स्नानं शस्तमस्य नरेश्वर ।२०।
देवताभ्यर्चनं होमस्सर्वाभ्यागतपूजनम् ।
भिक्षा बलिप्रदानं च शस्तमस्य नरेश्वर ।२१।

जिनके घर पर आया हुआ अतिथि निराश होकर लौटता है, वह अपने सब पाप कर्म उस गृहस्थ को देकर उसके सभी पुण्यकर्मों के साथ ले जाता है ।१५। अतिथि का अपमान, उसके प्रति गर्व और दम्भ व्यवहार, उसे कोई वस्तु देकर उसका पश्चात्ताप, कटु भाषण अथवा उस पर प्रहार करना नितान्त अनुचित है ।१६। इस प्रकार अपने वर्ण-धर्म का भले प्रकार पालन करने वाला गृहस्थ सभी बंधनों से छूट कर अत्युत्तम लोकों में जाता है ।१७ हे राजन ! जब गृहस्थ धर्म का पालन करते-करते अवस्था ढल जाय, तब अपनी स्त्री के पालन का भार पुत्रों को सौंप या उसे भी अपने साथ लेकर वन को प्रस्थान करे ।१८। वहाँ फल, पुष्प, पत्रादि आहार करे, दाढ़ी, मूँछ और जटादि को धारण करे भूमि पर सोवे और मुनिवृत्ति से रहता हुआ अतिथि की सेवा में तत्पर रहे ।१९। चर्म, काश और कुशों से ओढने-बिछाने के वस्त्र बनावे और तीनों सन्ध्य स्नान करे ।२०। देवपूजन, हवन, अतिथि-सत्कार, भिक्षा, बलिवैश्व देव आदि सभी कर्म उसके लिए कर्त्तव्य है ।२१।

वन्यस्नेहेन गात्राणामभ्यङ्गश्चास्य शस्यते ।
तपश्च तस्य राजेन्द्र शीतोष्णादिसहिष्णुता ।२२।
यस्त्वेतां नियतश्चर्यां वानप्रस्थाश्चरेन्मुनिः ।
स दहत्यग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकांश्च शाश्वतान् ।२३।

चतुर्थश्चाश्रमो भिक्षोः प्रोच्यते यो मनीषिभिः ।
तस्य स्वरूपं गदतो मम श्रोतुं नृपार्हसि ।२४।
पुत्रद्रव्यकलत्रेषु त्यक्तस्नेहोनराधिप ।
चतुर्थमाश्रमस्थानं गच्छेन्निर्धूतमत्सरः ।२५।
त्रैवर्गिकांस्त्यजेत्सर्वानारम्भानवनीपते ।
मित्रादिषु समो मैत्रस्समस्तेष्वेव जन्तुषु ।२६।
जरायुजाण्डजादीनां वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
युक्तः कुर्वीत न द्रोहं सर्वसङ्गांश्च वर्जयेत् ।२७।

हे नृपेन्द्र ! वन के तैलों को शरीर में मलना और शीत-ताप सहना यह उसकी तपस्या के ही अंग हैं ।२२। जो वानप्रस्थी इन नियत कर्मों को करता है, वह अपने सभी दोषों को भस्म कर डालता है और तब उसे नित्य लोकों की प्राप्ति होती है ।२३। अब मैं उस चतुर्थ आश्रम का वर्णन करता हूँ, जिसे ज्ञानीजन भिक्षु आश्रम कहते हैं, तुम उसे सावधान चित्त से श्रवण करो ।२४। हे राजन् ! तीसरे आश्रम के पश्चात् पुत्र, धन और स्त्री आदि की प्रीति को छोड़ कर और मात्सर्य-रहित होकर चौथे आश्रम में प्रवेश करना चाहिये ।२५। हे अवनीपते ! भिक्षु को धर्म अर्थ और काम रूपी त्रिवर्ग विषयक सब कर्मों का नितान्त त्याग करना चाहिये । शत्रु-मित्रादि के प्रति समता का भाव तथा सभी जीवों से सुहृदता यह उसके आवश्यक कर्त्तव्य हैं । २६। निरन्तर समाहित रहे । जरायुज, अण्डज, स्वेदज आदि सब प्राणियों से मन, वचन, कर्म से द्वेष न करे और सब प्रकार की वासनाओं का त्याग करे ।२७।

एकरात्रस्थितिर्ग्रामे पञ्चरात्रस्थितिः पुरे ।
तथा तिष्ठेद्यथाप्रीतिर्द्वेषो वा नास्य जायते ।२८।
प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थं पर्यटेद् गृहान् ।२९।
कामः क्रोधस्तथा दर्पमोहलोभादयश्च ये ।
तांस्तु सर्वान्परित्यज्य परिव्राड् निर्ममो भवेत् ।३०।

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः ।
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो य भयं विद्यते क्वचित् ।३१।

कृत्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं
शारीरमग्निं स्यमुखे जुहोति ।
विप्रस्तु भैक्ष्योपहितैर्हविर्भि-
श्चिताग्निकानां व्रजति स्म लोकान ।३२।

मोक्षाश्रम यश्चरते यथोक्तं
शुचिस्सुखं कल्पितबुद्धियुक्तः ।
अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तः
स ब्रह्मलोकं श्रयते द्विजातिः ।३३।

ग्राम में एक रात्रि तथा नगर में पाँच रात्रि निवास करे और इतने दिन भी इस प्रकार रहे जिससे किसी से द्वेष अथवा प्रीति न हो सके ।२८। जब घरों में चूल्हा ठन्डा हो जाय और घर के सब लोग भोजन कर चुकें तब प्राण रक्षा के निमित्त ऊँचे वर्णों में से किसी के यहाँ जा कर भिक्षा ले ।२९। परिव्राजक को काम, क्रोध, दर्प, मोह, लोभ आदि का त्याग करके ममता-रहित होना चाहिये ।३०। सभी प्राणियों को अभय प्रदान करता हुआ जो मुनि पृथिवी पर विचरण करता है, उसे भी कभी किसी से भय प्राप्त नहीं होता ।३१। चतुर्थ आश्रम स्थित जो ब्राह्मण अपने देह में स्थित प्राणादि के उद्देश्य से ही अपने मुख में भिक्षान्न रूपी हवि को जठराग्नि में होमता है, उसके कारण उसे अग्निहोत्रियों के लोकों की प्राप्ति होती है ।३२। जो ब्राह्मण बुद्धियोग वाला होकर विधि-वत् आचरण करता हुआ, मोक्षाश्रम का पालन करता और बिना ईंधन की अग्नि के समान शान्त होता है, उसे अन्त में ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है ।३३।

—:※:—

दसवाँ अध्याय

कथितं चतुराश्रम्यं चातुर्वर्ण्यं क्रियास्तथा ।
पुंसः क्रियामहं श्रोतुमिच्छामि द्विजसत्तमा ।१।
नित्यनैमित्तिकाः काम्याः क्रियाः पुंसामशेषतः ।
समाख्याहि भृगुश्रेष्ठ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ।२।
यदेतदुक्तं भवता नित्यनैमित्तिकाश्रयम् ।
तदहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना मम ।३।
जातस्य जातकर्मादिक्रियाकाण्डमशेषतः ।
पुत्रस्य कुर्वीत पिता श्राद्धं चाभ्युदयात्मकम् ।४।
युग्मांस्तु प्राङ्मुखान्विप्रान्भोजयेन्मनुजेश्वर ।
यथा वृत्तिस्तथा कुर्याद्दैवं पित्र्यं द्विजन्मनाम् ।५।
दध्ना यवैः सबदरैर्मिश्रान्पिण्डान्मुदा युतः ।
नान्दीमुखेभ्यस्तीर्थेन दद्याद्दैवेन पार्थिव ।६।
प्राजापत्येन वा सर्वमुपचारं प्रदक्षिणम् ।
कुर्वीत तत्तथाशेषवृद्धिकालेषु भूपते ।७।

सगर ने कहा—हे द्विजवर ! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णों के कर्म मेरे प्रति कहे, अब मैं आपके श्रीमुख से मनुष्यों के कर्मों को श्रवण करना चाहता हूँ ।१। हे भृगुवर ! आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये कृपया मनुष्यों के नित्य-नैमित्तिक और काम्यादि समस्त कर्मों को मुझसे कहिये ।२। और्व ने कहा—आपने नित्य-नैमित्तिक आदि के विषय में प्रश्न किया, उस सबको कहता हूँ सावधान होकर सुनो ।३। पिता को पुत्र का जन्म होने पर उसके सब जात-कर्मादि संस्कार तथा आभ्युदयात्मक श्राद्ध करना उचित है ।४। युग्म ब्राह्मणों को पूर्व की ओर मुख करके बिठावे तथा द्विजातियों के अनुकूल व्यवहारानुसार देवता और पितरों की तृप्ति के लिये श्राद्ध करे ।५। तथा दैवतीर्थ द्वारा नान्दीमुख पितरों को दही, जौ और बदरीफल के मिश्रित पिण्ड दे ।६। अथवा कनिष्ठिका के मूल में जो

प्रजापत्यतीर्थ कहा है उससे सब उपचार द्रव्यों का दान करे। इसी प्रकार सब वृद्धिकालों में करना चाहिये ।७।

ततश्च नाम कुर्वीत पितैव दशमेऽहनि ।
देवपूर्वं नराख्यं हि शर्मवर्मादिसंयुतम् ।८।
शर्मेति ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रसंश्रयम् ।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ।९।
नार्थहीनं न चाशस्तं नापशब्दयुतं तथा ।
नामङ्गल्यं जुगुप्स्यं वा नाम कुर्यात्समाक्षरम् ।१०।
नातिदीर्घं नातिह्रस्वं नातिगुर्वक्षरान्वितम् ।
सुखोच्चार्यं तु तन्नाम कुर्याद्यत्प्रवणाक्षरम् ।११।
ततोऽनन्तरसंस्कारसंस्कृतो गुरुवेश्मनि ।
यथोक्तविधिमाश्रित्य कुर्याद्विद्यापरिग्रहम् ।१२।
गृहीतविद्यो गुरवे दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् ।
गार्हस्थ्यमिच्छन्भूपाल कुर्याद्दारपरिग्रहम् ।१३।
ब्रह्मचर्येण वा कालं कुर्यात्संकल्पपूर्वकम् ।
गुरोश्शुश्रूषणं कुर्यात्तत्पुत्रादेरथापि वा ।१४।
वैखानसो वापि भवेत्परिव्राडथ वेच्छया ।
पूर्वसङ्कल्पितं यादृक् तादृक्कुर्यान्नराधिप ।१५।

जन्म के दसवें दिन पिता अपने पुत्र का नामकरण करे। नाम के पहिले देव वाचक शब्द और फिर वर्ण संज्ञक शर्मा, वर्मा आदि लगावे ।८। ब्राह्मण के नाम में शर्मा क्षत्रिय के नामान्त में वर्मा, वैश्य के लिये गुप्त और शूद्र के लिये दास शब्द का प्रयोग करे ।९। जो नाम रखा जाय वह अर्थहीन, अपशब्द वाला अमांगलिक अथवा कुत्सित नहीं होना चाहिये और उसके अक्षरों में समानता नहीं होनी चाहिये ।१०। बहुत बड़ा, बहुत छोटा अथवा कठिन अक्षरों से युक्त नाम भी नहीं रखना चाहिये। जिसका उच्चारण सुगमता से हो सके और जिसके पीछे लघुवर्ण हो, ऐसा नामकरण करे।११। फिर उपनयन संस्कार होने पर गुरु-गृह में निवास-पूर्वक विधिवत् विद्याध्ययन करावे।१२। हे राजन्! जब वह शिष्य

विद्याध्ययन कर चुके तब गुरुजी को दक्षिणा देकर यदि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहे तो विधि पूर्वक विवाह करे।१३। गृहस्थाश्रम-प्रवेश की इच्छा न हो तो संन्यास ग्रहण करे। हे राजन् ! इसमें विचार पूर्वक जैसा निश्चय किया गया हो, वही करना चाहिये ।१४-१५।

वर्षैरेकगुणां भार्यामुद्वहेत्त्रिगुणस्स्वयम् ।
नातिकेशामकेशां वा नातिकृष्णां न पिङ्गलाम् ।१६।
निसर्गतोऽधिकाङ्गीं वा न्यूनाङ्गीमपि नोद्वहेत् ।
नाविशुद्धां सरोमां वाकुलजां वापि रोगिणीम् ।१७।
न दुष्टां दुष्टवाक्यां वा व्यङ्गिनीं पितृमातृतः ।
न श्मश्रुव्यञ्जनवतीं न चैव पुरुषाकृतिम् ।१८।
न घर्घरस्वरां क्षामां तथा काकस्वरां न च ।
नानिबन्धेक्षणां तद्वद्वृत्ताक्षीं नोद्वहेद्बुधः ।१९।
यस्याश्च रोमशे जङ्घे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नतौ ।
गण्डयोःकूपरौ यस्या हसन्त्यास्तां न चोद्वहेत् ।२०।
नातिरूक्षच्छविं पाण्डुकरजामरुणेक्षणाम् ।
आपीनहस्तपादां च न कन्यामुद्वहेद् बुधः ।२१।

यदि विवाह की इच्छा हो तो तृतीयांश आयु की कन्या का पाणिग्रहण करे। वह अधिक केश वाली अथवा अल्पकेश वाली भी न हो, अधिक साँवली या पाण्डु वर्ण वाली स्त्री को ग्रहण न करे ।१७। दुष्ट स्वभावी, कड़वे वचन बोलने वाली, अंगहीना, मूँछों वाली, पुरुष जैसी आकृति वाली, घर्घर शब्द वाली, अत्यंत भिंची हुई जुबान या कौए जैसे शब्द वाली, पक्ष्मशून्या अथवा वृत्ताकार नेत्र वाली स्त्री के साथ विवाह न करे ।१८-१९। जाँघों पर रोम वाली, ऊँचे टखनों वाली और हँसते समय जिसके कपोलों में गढ़े पड़ जाते हों, उस स्त्री के साथ भी विवाह करना अनुचित है ।२०। मलीन कान्ति वाली, पीले नख वाली, लाल नेत्र वाली, भारी हाथ-पाँव वाली कन्या भी विवाह के लिये त्याज्य समझे ।२१।

न वामनां नातिदीर्घां नोद्वहेत्संहतभ्रुवम् ।
न चातिच्छिद्रदशनां न करालमुखीं नरः ।२२।
पञ्चमीं मातृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम् ।
गृहस्थश्चोद्वहेत्कन्यां न्यायेन विधिना नृप ।२३।
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वराक्षसौ चान्यौ पैशाचश्चाष्टमो मतः ।२४।
एतेषां यस्य यो धर्मो वर्णस्योक्तो महर्षिभिः ।
कुर्वीत दारग्रहणं तेनान्यं परिवर्जयेत् ।२५।
सधर्मचारिणीं प्राप्य गार्हस्थ्यं सहितस्तया ।
समुद्वहेद्ददात्येतत्सम्यगूढं महाफलम् ।२६।

अत्यंत नाटी, बहुत लम्बी, जुड़ी हुई भृकुटिवाली, असमान दाँतों वाली तथा जिनके दाँत बाहर निकले हों, ऐसी कन्या से भी विवाह नहीं करना चाहिये ।२२। हे राजन् ! जिस कन्या का मातृ पक्ष से पाँचवीं पीढ़ी तक और पितृ पक्ष से सातवीं पीढ़ी तक संबंध हो, ऐसी कन्या से कभी विवाह न करे ।२३। विवाह ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच भेद से आठ प्रकार के होते हैं ।२४। महर्षियों ने इनमें से जिस विवाह को उचित बताया है, उसी के द्वारा नारि परिग्रह करे अन्य विधियों का त्याग करे ।२५। इस प्रकार सहधर्मिणी को पाकर उसके साथ गृहस्थाश्रम का पालन करे, क्योंकि पालन किया जाने वाला गार्हस्थ्य धर्म महान् फल का दाता होता है ।२६।

—❀❀—

ग्यारहवाँ अध्याय

गृहस्थस्य सदाचारं श्रोतुमिच्छाम्यहं मुने ।
लोकादस्मात्परमाच्च यमातिष्ठन्न हीयते ।१।

श्रूयतां पृथिवीपाल सदाचारस्य लक्षणम् ।
सदाचारवता पुंसा जितौ लोकावुभावपि ।२।
साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः ।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारस्स उच्यते ।३।
सप्तर्षयोऽथ मनवः प्रजानां पतयस्तथा ।
सदाचारस्य वक्तारः कर्त्तारश्च महीपते ।४।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय मनसा मतिमान्नृप ।
प्रबुद्धश्चिन्तयेद्धर्ममर्थं चाप्यविरोधिनम् ।५।
अपीडया तयोः काममुभयोरपि चिन्तयेत् ।
दृष्टादृष्टविनाशाय त्रिवर्गे समदर्शिता ।६।
परित्यजेदर्थकामौ धर्मपीडाकरौ नृप ।
धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकविद्विष्टमेव च ७।

सगर बोले–हे मुने ! अब मैं गृहस्थ के सदाचारों को सुनने की इच्छा करता हूँ, जिनका आचरण करने वाला मनुष्य इहलोक और पर-लोक से पतन को प्राप्त नहीं होता ।१ ।और्व ने कहा—हे राजन् ! अब अपने प्रश्न के अनुसार सदाचार के लक्षण सुनो। उसका पालन करने वाला मनुष्य इहलोक-परलोक दोनों जीतने वाला होता है ।२। सत् शब्द का अर्थ साधु होता है और दोष-रहित को ही साधु कहते हैं । उस साधु पुरुष का आचरण ही सदाचार कहा गया है ।३। हे पृथिवीपते ! इस सदाचार के कहने वाले तथा इसका पालन करने वाले सप्तर्षि, मनु तथा प्रजापति हैं ।४। हे राजन् ! मतिमान पुरुष को स्वस्थ चित्त से ब्राह्म मुहूर्त्त में उठ कर अपने धर्म तथा धर्म-कार्य में बाधक विषयों पर विचार करना चाहिये ।५। और उस कार्य का भी विचार करे जिससे धर्म और अर्थ की हानि न हो । इस प्रकार दृष्टादृष्ट अनिष्ट की शांति के लिये धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों के प्रति समभावी हो ।६। धर्म के विरुद्ध जो अर्थ और काम हैं, उनका त्याग करे और ऐसे धर्म को छोड़ दे जो आगे चल कर दुःखमय हो जाय अथवा समाज के विरुद्ध हो ।७।

ततः कल्यं समुत्थाय कुर्यान्मूत्रं नरेश्वर ।
नैऋर्त्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः ।८।
दूरादावसथान्मूत्रं पुरीषं च विसर्जयेत् ।
पादावनेजनोच्छिष्टे प्रक्षिपेन्न गृहाङ्गणे ।९।
आत्मच्छायां तरुच्छायां गोसूर्याग्न्यनिलांस्तथा ।
गुरुद्विजादींस्तु बुधो नाधिमेहेत्कदाचन ।१०।
न कृष्टे शस्यमध्ये वा गोव्रजे जनसंसदि ।
न वर्त्मनि नद्यादितीर्थेषु पुरुषर्षभ ।११।
नाप्सु नैवाम्भसस्तीरे श्मशाने न समाचरेत् ।
उत्सर्गं वै पुरीषस्य मूत्रस्य च विसर्जनम् ।१२।
उदङ्मुखो दिवा मूत्रं विपरीतमुखो निशि ।
कुर्वीतानापदि प्राज्ञो मूत्रोत्सर्गं च पार्थिव ।१३।
तृणैरास्तीर्य वसुधां वस्त्रप्रावृतमस्तकः ।
तिष्ठेन्नातिचिरं तत्र नैव किञ्चिदुदीरयेत् ।१४।

ब्राह्म मुहूर्त्त में उठने के पश्चात् ग्राम के नैऋत्य कोण वाली दिशा में जितनी दूर छोड़ा हुआ बाण जा सकता है, उतनी दूर से भी आगे बढ़कर मल-मूत्र का त्याग करे और अपने घर के आँगन में पाँव धोने का जल अथवा जूठा जल न डाले ।८-९। अपनी छाया पर या वृक्ष की छाया पर अथवा गौ, सूर्य, अग्नि, वायु, गुरु और द्विजाति वाले किसी पुरुष के सामने जाकर कभी मल मूत्र न छोड़े ।१०। इसी प्रकार जोते हुए खेत, अनाज युक्त भूमि, गौओं के गोष्ठ, जन-सभा, मार्ग के मध्य, नदी आदि तीर्थ, जल या जलाशय के किनारे और श्मशानादि में कभी मल-मूत्र न करे ।११-१२। हे राजन् ! सम्भव हो तो दिन में उत्तर की ओर मुख करके और रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके मूत्रोत्सर्ग करे ।१३। मल त्याग करते समय पृथिवी को तिनकों से ढक ले और सिर पर वस्त्र लपेट ले और उस स्थान पर अधिक समय तक न रहे तथा मुख से भी कुछ न बोले ।१४।

वल्मीकमूषिकोद्भूतां मृदं नान्तर्जलां तथा ।
शौचावशिष्टां गेहाच्च नादद्याल्लेपसम्भवाम् ।१५।
अणुप्राण्युपपन्नां च हलोत्खातां च पार्थिव ।
परित्यजेन्मृदो ह्येतास्सकलाश्शौचकर्मणि ।१६।
एका लिङ्गे गुदे तिस्रो दश वामकरे नृप ।
हस्तद्वये च सप्त स्युर्मृदश्शौचोपपादिकाः ।१७।
अच्छेनागन्धलेपेन जलेनाबुद्बुदेन च ।
आचामेच्च मृद भूयस्तथादद्यात्समाहितः ।१८।
निष्पादिताङ्घ्रिशौचस्तु पादावभ्युक्ष्य तैः पुनः ।
त्रिःपिबेत्सलिल तेन तथा द्विः परिमार्जयेत् ।१९।
शीर्षण्यानि ततः खानि मूर्द्धानं च समालभेत् ।
बाहू नाभि च तोयेन हृदय चापि संस्पृशेत् ।२०।
स्वाचान्तस्तु ततः कुर्यात्पुमान्केशप्रसाधनम् ।
आदर्शाञ्जनमाङ्गल्य दूर्वाद्यालम्भनानि च ।२१।

हे राजन् ! बाँबी की मिट्टी, चूहों द्वारा बिल से निकाली हुई, जल के भीतर की, घर लीपने की, चींटी आदि जीवों द्वारा निकाली हुई, हल द्वारा उखड़ी हुई तथा शौच कर्म से बची हुई मिट्टी को शौच कर्म में काम न ले ।१५-१६। हे राजन् ! उपस्थ में एक बार, गुदा में तीन बार, बाँए हाथ में दस बार और दोनों हाथों से सात बार मिट्टी लगाने से शुद्धि होती है ।१७। फिर निर्गंध और फेनहीन जल से आचमन करे और यत्नपूर्वक अधिक मिट्टी ग्रहण करे ।१८। उससे पाँवों को शुद्ध करे । पाँव-धोने के उपरांत तीन बार कुल्ला करे और फिर दो बार मुख को धोवे ।१९। फिर जल ग्रहण करके उससे इन्द्रियरन्ध्र, मूर्द्धा, बाहु, नाभि और हृदय को स्पर्श करे ।२०। फिर भले प्रकार स्नान करके बालों को सँभारे और आवश्यकतानुसार दर्पण, अञ्जन, दूर्वा आदि मांगलिक द्रव्यों का विधिपूर्वक प्रयोग करे ।२१।

ततस्स्ववर्णधर्मेण वृत्त्यर्थं च धनार्जनम् ।
कुर्वीत श्रद्धासम्पन्नो यजेच्च पृथिवीपते ।२२।

सोमसंस्था हविस्संस्थाः पाकसंस्थास्तु संस्थिताः ।
धने यतो मनुष्याणां यतेतातो धनार्जने ।२३
नदीनदतटाकेषु देवखातजलेषु च ।
नित्यक्रियार्थं स्नायीत गिरिप्रस्रवणेषु च ।२४।
कूपेषूद्धृततोयेन स्नानं कुर्वीत वा भुवि ।
गृहेषूद्धृततोयेन ह्यथवा भुव्यसम्भवे ।२५।
शुचिवस्त्रधरः स्नातो देवर्षिपितृतर्पणम् ।
तेषामेव हि तीर्थेन कुर्वीत सुसमाहितः ।२६।
त्रिरपः प्रीणनार्थाय देवानामपवर्जयेत् ।
ऋषीणां च यथान्यायं सकृच्चापि प्रजापतेः ।२७।
पितृणां प्रीणनार्थाय त्रिरपः पृथिवीपते ।
पितामहेभ्यश्च तथा प्रीणयेत्प्रपितामहान् ।२८।
मातामहाय तत्पित्रे तत्पित्रे च समाहितः ।
दद्यात्पैत्रेण तीर्थेन काम्यं चाप्यच्छृणुष्व मे ।२९।

हे राजन् ! इसके पश्चात् अपने वर्ण-धर्म के अनुसार आजीविका करे और धनोपार्जन पूर्वक यज्ञादि का अनुष्ठान करे ।२२। सोम संस्था, हविस्संस्था और पाकसंस्था—इन सभी धर्मों का आश्रय धन है, इसलिये मनुष्यों को धनोपार्जन करना भी अत्यन्त कर्म है ।२३। नित्य कर्मों का सम्पादन करने के निमित्त पहिले स्नान करना आवश्यक है । इसीलिये नदी, नद, तालाब बावड़ी या पर्वत के झरने आदि में स्नान करना उचित है ।२४। अथवा कुँए से जल लेकर उसके निकटवर्ती भूमि पर स्नान करे यदि वहाँ न करे तो उस जल को अपने घर में लाकर ही उससे स्नान कर ले ।२५। स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारण कर देवता ऋषि और पितरों का उन-उन के तीर्थों से तर्पण करे ।२६। देवताओं और ऋषियों के तर्पण में तीन-तीन बार और प्रजापति के लिये एक ही बार पृथिवी में जल छोड़े ।२७। पितरों और पितामहों की तृप्ति के लिये भी तीन बार ही जल छोड़ना चाहिये, इसी प्रकार प्रपितामहों की तृप्ति करे । मातामह

को और उनके पिता तथा पितामह को यत्न पूर्वक तीर्थ जल से प्रसन्न करे। अब मैं काम्य तर्पण कहता हूँ उसे सुनो ।२८-२९।

मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे गुरुपत्न्यै तथा नृप ।
गुरूणां मातुलानां च स्निग्धमित्राय भूभुजे ।३०।
इद चापि जपेदम्बु दद्यादात्मेच्छया नृप ।
उपकाराय भूतानां कृतदेवादितर्पणम् ।३१।
देवासुरास्तथा यक्षा नागगन्धर्वराक्षसाः ।
पिशाचा गुह्यकास्सिद्धा. कूष्माण्डाः पशवः खगा ।३२।
जलेचरा भूनिलया वाय्वाहाराश्च जन्तवः ।
तृप्तिमेतेन यान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः ।३३।
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः ।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ।३३।
ये बान्धवाबान्धवा वा येऽन्य जन्मनि बान्धवाः ।
ते तृप्तिमखिला यान्तु ये चास्मत्तोयकाङ्क्षिणः ।३५।
यत्र क्वचनसंस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम् ।
इदमाप्यायनायास्तु मया दत्तं तिलोदकम् ।३६।

हे राजन् ! माता को, प्रमाता को, उसकी माता को, गुरु पत्नी को, गुरु को, प्रिय मित्र को अथवा राजा को मेरा दिया हुआ यह जल प्राप्त हो, इस प्रकार कहता हुआ, सब भूतों के लिये देवादि का तर्पण कर के अपने इच्छित सम्बन्धी को जल दे ।३०-३३। देवता, असुर, यक्ष, नाग गंधर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, भूमिचर, वायु का आहार करने वाले सब जीव मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हों—ऐसा देवादि के तर्पण में कहे ।३२-३३। सम्पूर्ण नरकों में स्थित हुए जो-जो जीव विभिन्न प्रकार की यन्त्रणाएँ प्राप्त कर रहे हैं उनकी तृप्ति के लिये जल देता हूँ ।३४। जो मेरे बन्धु हैं अथवा अबन्धु हैं या पहिले किसी जन्म बन्धु थे या जो मुझसे जल-प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वह सभी मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हों ।३५। क्षुधा-पिपासा से व्याकुल कोई भी प्राणी जहाँ कहीं भी हों, वे सब मेरे द्वारा दिये गये इस तिल-जल से तृप्त हो जाँय ।३६।

काम्योदकप्रदानं ते मयतत्कथितं नृप ।
यद्दत्त्वा प्रीणयत्येतन्मनुष्यस्सकलं जगत् ।३७।
जगदाप्यायनोद्भूतं पुण्यमाप्नोति चानघ ।
दत्त्वा काम्योदकं सम्यगेतेभ्यः श्रद्धयान्वितः ।३८।
आचम्य ततो दद्यात्सूर्याय सलिलाञ्जलिम् ।
नमो विवस्वते ब्रह्मभास्वते विष्णुतेजसे ।३९।
जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मसाक्षिणे ।
ततो गृहार्चनं कुर्यादभीष्टसुरपूजनम् ४०।
जलाभिषेकैः पुष्पैश्च धूपाद्यैश्च निवेदनम् ।
अपूर्वमग्निहोत्रं च कुर्यात्प्राग्ब्रह्मणे नृप ।४१।
प्रजापतिं समुद्दिश्य दद्यादाहुति मादरात् ।
गृह्याभ्यः काश्यपायाथ ततोऽनुमतये क्रमात् ।४२।
तच्छेषं मणिके पृथ्वीपर्जन्येभ्यः क्षिपेत्ततः ।
द्वारे धातुर्विधातुश्च मध्ये च ब्रह्मणे क्षिपेत् ।
गृहस्य पुरुषव्याघ्र दिग्देवानपि मे शृणु ।४३।

हे राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे प्रति यह काम्य तर्पण कहा है, जिसे करके मनुष्य सम्पूर्ण विश्व को तृप्ति प्रदान कर सकता है ३७। और हे निष्पाप ! इस उपरोक्त प्रकार से जीवों को श्रद्धा-भाव से काम्य जल देने के कारण उसे संसार की तृप्ति से होने वाले पुण्य की प्राप्ति होती है ।३८। इस प्रकार तर्पण करने के पश्चात् आचमन करे और भगवान् भास्कर को जलाञ्जलि प्रदान करे । भगवान् विवस्वान् को नमस्कार है । वह वेद के ज्ञाता और विष्णु तेज के समान अत्यन्त तेजोमय हैं । वही विश्व के उत्पन्न करने वाले, अत्यन्त पवित्र और कर्मों को देखने वाले हैं । यह कह कर जलाभिषेक करे और पुष्प-धूपादि देता हुआ गृह देवता और इष्ट देवता की पूजा करे । हे राजन् इसके पश्चात् अग्नि होत्र करना चाहिये, जिसमें प्रथम ब्रह्माजी को फिर प्रजापति, गृह्य, काश्यप और अनुमति को क्रमशः आदर भाव से आहुतियाँ प्रदान करे ।३९-४०।

उससे शेष रहे हव्य को पृथिवी और पर्जन्य के निमित्त उदक पात्र में, धाता-विधाता के निमित्त द्वार के दोनों ओर तथा ब्रह्माजी के निमित्त घर के बीच में छोड़े। अब मैं तुम्हें दिशाओं के पूजन की विधि बतलाता हूँ, ध्यान से सुनो ।४३।

इन्द्राय धर्मराजाय वरुणाय तथेन्दवे ।
प्राच्यादिषु बुधो दद्याद्धुतशेषात्मकं बलिम् ।४४।
प्रागुत्तरे च दिग्भागे धन्वन्तरिबलिं बुधः ।
निर्वपेद्वैश्वदेवं च कर्म कुर्यादतः परम् ।४५
वायव्यां वायवे दिक्षु समस्तासु यथादिशम् ।
ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय मानवे च क्षिपेद्बलिम् ।४६।
विश्वेदेवान्विश्वभूतानथ विश्वपतीन्पितॄन् ।
यक्षाणां च समुद्दिश्य बलिं दद्यान्नरेश्वर ।४७।
ततोऽन्यदन्नमादाय भूमिभागे शुचौ बुधः ।
दद्यादशेषभूतेभ्यःस्वेच्छया सुसमाहितः ।४८।

देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धास्सयक्षोरगदैत्यसङ्घाः ।
प्रेताः पिशाचास्तरवस्समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मयात्रदत्तम् ।४९।
पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
प्रयान्तु ते तृप्तिमिद मयान्नं
तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ।५०।

पूर्व में इन्द्र के उद्देश्य से, दक्षिण में यम के उद्देश्य से, पश्चिम में वरुण के तथा उत्तर में चंद्रमा के लिये बची हुई सामिग्री से बलि दे ।४४। पूर्व और उत्तर में धन्वन्तरि के लिये बलि देकर बलिवैश्व देव कर्म करे ।४५। इस समय वायव्य दिशा में केवल वायु को तथा अन्य सभी दिशाओं में वायु को और उन सब दिशाओं को बलि दे । इसी प्रकार ब्रह्माजी, अन्तरिक्ष और सूर्य को उन-उन की दिशाओं में बलि दे ।४६।

फिर विश्वदेवों, विश्वोभूतो, विश्वपतियों, पितरो और यक्षों के निमित्त बलि प्रदान करे ।४७। फिर अन्न लेकर पृथिवी पर समाहित मन से बैठे और सब प्राणियों के उद्देश्य से बलि दे ।४८। और कहे कि देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, दैत्य, प्रेत, पिशाच, वृक्ष, चीटी, पतंगादि जो भी जीव अपने-अपने कर्मबन्धन में बँध कर क्षुधातुर हुए मेरे अन्न की इच्छा करते हैं, उन सभी के लिए मैं अन्न प्रदान करता हूँ, इससे तृप्त और सुखी हों ।४९-५०।

येषां न माता न पिता न बन्धु--
नैवान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति ।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत्
ते यान्तु तृप्तिं मुदिता भवन्तु ।५१।
भूतानि सर्वाणि तथान्नमेत-
दहं च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति ।
तस्मादहं भूतनिकायभूत--
मन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ।५२।
चतुर्दशो भूतगणो य एष
तत्र स्थिता येऽखिलभूतसङ्घाः ।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया विसृष्टं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ।५३।
इत्युच्चार्य नरो दद्यादन्नं श्रद्धासमन्वितः ।
भुवि सर्वोपकाराय गृही सर्वाश्रयो यतः ।५४।
श्वचाण्डालविहङ्गानां भुवि दद्यान्नरेश्वर ।
ये चान्ये पतिताः केचिदपुत्राः सन्ति मानवाः ।५५।
ततो गोदोहमात्रं वै काल तिष्ठेद् गृहाङ्गणे ।
अतिथिग्रहणार्थाय तदूर्ध्वं तु यदेच्छया ।५६।

जिनके माता, पिता, बांधवादि नहीं हैं अथवा किसी के पास अन्नदान का साधन या अन्न नहीं है, मैंने उन्हें तृप्त करने के लिये भूमि पर यह अन्न रख दिया है, वे इसे ग्रहण करके तृप्त तथा सुखी हों ।५१।

समस्त जीव, मैं तथा यह अन्न–सभी कुछ विष्णु हैं, क्योंकि विष्णु से भिन्न कुछ भी कहीं नहीं है। इसलिये सब भूतों के देह रूप इस अन्न को मैं उनकी पुष्टि के निमित्त प्रदान करता हूँ।५२। इस चतुर्दश प्रकार के भूत समुदाय में जितने भी जीव हैं, उन सभी को तृप्त करने के लिये मैंने यह अन्न रखा है, इसीलिये वे इससे प्रसन्न हों।५३। इस प्रकार कहता हुआ गृहस्थ पुरुष श्रद्धा-भाव पूर्वक सब जीवों के हितार्थ पृथिवी में अन्नदान करे, क्योंकि गृहस्थ ही तो सब जीवों का आश्रय स्वरूप है।५४। फिर हे राजन्! श्वान, चाण्डाल, खगगण अथवा अन्य जो-जो भी पतित या पुत्रहीन आदि पुरुष हों, उन सबकी तृप्ति के निमित्त पृथिवी में बलि भाग को रख दे।५५। फिर गौ दोहन का समय होने तक या उससे भी कुछ देर तक अतिथि की प्रतीक्षा में घर के आँगन में खड़ा रहे।५६।

अतिथिं तत्र सम्प्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना ॥
तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥५७॥
श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च ॥
गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद् गृही ॥५८॥
अज्ञातकुलनामानमन्यदेशादुपागतम् ॥
पूजयेदतिथिं सम्यङ् नैकग्रामनिवासिनम् ॥५९॥
अकिञ्चनमसम्बन्धमज्ञातकुलशीलिनम् ॥
असम्पूज्यातिथिं भुक्त्वा भोक्तुकामं व्रजत्यधः ॥६०॥
स्वाध्यायगोत्राचरणमपृष्ट्वा च तथा कुलम् ॥
हिरण्यगर्भबुद्ध्या तं मन्यताभ्यागतं गृही ॥६१॥
पित्रर्थं चापरं विप्रमेकमप्याशयेन्नृप ॥
तद्देश्यं विदिताचारसम्भूतिं पाञ्चयज्ञिकम् ॥६२॥
अन्नाग्रञ्च समुद्धृत्य हन्तकारोदकल्पितम् ॥
निर्वापभूतं भूपाल श्रोत्रियायोपपादयेत् ॥६३॥

यदि अतिथि मिल जाय तो उसे स्वागत पूर्वक आसन दे और चरण धोकर सत्कार करे और श्रद्धापूर्वक उसे भोजन कराता हुआ मधुर वाणी से बातचीत करता हुआ उसके गमनकाल में पीछे-पीछे जाकर उसे

प्रसन्न करना चाहिये ।५७-५८। जिस व्यक्ति के नाम और निवास स्थान आदि का पता न हो, उसी अतिथि का सत्कार करे । अपने ही ग्राम में निवास करने वाला पुरुष आतिथ्य का पात्र होता ।५९। जिसके पास कोई सामान न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके वंशादि का ज्ञान न हो और जो भोजन करने के लिये इच्छुक हो, ऐसे अतिथि का सत्कार न करना या भोजन न कराना अधोगति को प्राप्त कराने वाला है ।६०। आगत अतिथि का अध्ययन, गोत्र, आचरण, कुल आदि कुछ न पूछे और हिरण्यगर्भ बुद्धि से उसका पूजन करे ।६१। हे राजन् ! अतिथि का सत्कार करने के पश्चात् अपने ही ग्राम के एक अन्य पंचयाज्ञिक ब्राह्मण को जिस के कुल और आचरण आदि की जानकारी हो बुलाकर पितर कार्य के लिये भोजन करावे ।६२। उस श्रोत्रिय ब्राह्मण को पहिले ही निकाल अलग रखे हुए हन्तकार संज्ञक अन्न से भोजन करना चाहिये ।६३।

दत्त्वा च भिक्षात्रितयं परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ।
इच्छया च बुधो दद्याद्विभवे सत्यवारितम् ।६४।
इत्येतेऽतिथयः प्रोक्ताः प्रागुक्ताः भिक्षवश्च ये ।
चतुरः पूजयित्वैतान्नृप पापात्प्रमुच्यते ।६५।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ।६६।

धाता प्रजापतिः शक्रो वह्निर्वसुगणोऽर्यमा ।
प्रविश्यातिथिमेते वै भुञ्जन्तेऽन्नं नरेश्वर ।६७।

तस्मादतिथिपूजायां यतेत सततं नरः ।
स केवलमघं भुङ्क्ते यो ह्यतिथिं विना ।६८।

ततः स्ववासिनीदुःखिगर्भिणीवृद्धबालकान् ।
भोजयेत्संस्कृतान्नेन प्रथमं चरमं गृही ।६९।

अभुक्तवत्सु चैतेषु भुञ्जन्भुङ्क्ते स दुष्कृतम् ।
मृतश्च गत्वा नरकं श्लेष्मभुग्जायते नरः ।७०।

इस प्रकार तीन भिक्षायें देने के उपरांत यदि शक्ति हो तो परिव्राजकों और ब्रह्मचारियों को भी विमुख न करके, उन्हें भिक्षा दे ।६४। पहिले के तीन (देव, अतिथि, ब्राह्मण) तथा चौथे भिक्षुक मिलकर यह चारों अतिथि ही कहे जाते हैं। हे नृप ! इन चारों की पूजा करने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है ।६५। जिसके घर से अतिथि विमुख लौटता है, उसे वह अपने समस्त पाप देकर उसके सभी शुभ कर्मों को साथ ले जाते है ।६६। धाता, प्रजापति, इंद्र, अग्नि, वसुगण और अर्यमा-यह सभी देवता अतिथि के शरीर में बैठकर उसके साथ भोजन करते हैं ।६७। इसीलिये अतिथि सत्कार के लिये गृहस्थ पुरुष को सदा यत्नशील रहना चाहिये। जो मनुष्य अतिथि को भोजन कराये बिना' स्वय ही भोजन कर लेता है, वह तो केवल पाप का ही भक्षण करता है ।६८। इसके पश्चात् गृहस्थ अपने घर में रहने वाली विवाहिता पुत्री, रोगिणी गर्भिणी, वृद्ध और बालकों को पहिले उस शुद्ध संस्कृत अन्न से भोजन करावे और फिर स्वयं भोजन करे ।६९। जो गृहस्थ इन सबको खिलाये बिना, स्वयं खा लेता है, वह पाप-भक्षक ही होता है और अन्त में नरक को प्राप्त होकर श्लेष्म भक्षी कीट होता है ।७०।

अस्नाताशी मल भुङ्क्ते ह्यजपी पूयशोणितम् ।
असंस्कृतान्नभुङ् मूत्रं बालादिप्रथमं शकृत् ।७१।
अहोमी च कृमोन्भुङ्क्ते अदत्त्वा विषमश्नुते ।
तस्माच्छृणुष्व राजेन्द्र यथा भुञ्जीत वै गृही ।७२।
भुञ्जतश्च यथा पुंसः पापबन्धो न जायते ।
इह चारोग्यविपुलं बलबुद्धिस्तथा नृप ।७३।
भवत्यरिष्टशांतिश्च वरिपक्षाभिचारिका ।
स्नातो यथावत्कृत्वा च देवर्षिपितृतर्पणम् ।७४।
प्रशस्तरत्नपाणिस्तु भुञ्जीत प्रयतो गृही ।
कृते जपे हुते वह्नौ शुद्धवस्त्रधरो नृप ।७५।
दत्त्वातिथिभ्यो विप्रेभ्यो गुरुभ्यस्संश्रिताय च ।
पुण्यगन्धश्शस्तमाल्यधारी चैव नरेश्वर ।७६।

एकवस्त्रधरोऽथार्द्रपाणिपादो महीपते ।
विशुद्धवदनः प्रीतो भुञ्जीत न विदिङ्मुख ।७७।

जो मनुष्य स्नान के बिना ही भोजन कर लेता है, उसे मल भक्षण करने वाला समझो । जप किये बिना भोजन कर लेना रुधिर और पूय पान करना है । असंस्कृत अन्न का भोजन करने वाला मूत्र पीता है, अथवा जो बालक वृद्धादि से पहिले भोजन कर लेता है, उसे विष्ठा का आहार करने वाला जानो ।७१। हवन किये बिना भोजन करने वाला कीड़ों का और बिना दान किये खा लेने वाला विष का भोजन करता है । इसीलिये गृहस्थ जिस प्रकार भोजन करे उस विधि का श्रवण करो । स्नान के अनन्तर देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण कर हाथ में श्रेष्ठ रत्न धारण पूर्वक पवित्रता से भोजन करे । जप और अग्नि के बाद शुद्ध वस्त्र पहिरे तथा अतिथि, ब्राह्मण, गुरुजन और अपने आश्रितों को भोजन कराने के पश्चात् श्रेष्ठ पुष्पमालादि धारण और हाथ-पाँव प्रक्षालन आदि से शुद्ध होकर भोजन करे और भोजन करते समय में इधर-उधर दृष्टिपात न करे ७२—७७।

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न चेवान्यमना नरः ।
अन्नं प्रशस्त पथ्यं च प्रोक्षितं प्रोक्षणोदकैः ।७८।
न कुत्सिताहृतं नैव जुगुप्सावदसंस्कृतम् ।७९।
दत्वा तु भक्तं शिष्येभ्यः क्षुधितेभ्यस्तथा गृही ।
प्रशस्तशुद्धपात्रे तु भुञ्जताकुपितो नृप ।८०।
नासन्दिसंस्थिते पात्रे नादेशे च नरेश्वर ।
नाकाले नातिसङ्कीर्णे दत्वाग्रं च नरोऽग्नये ।८१।
मन्त्राभिमन्त्रितं शस्तं न च पर्युषितं नृप ।
अन्यत्र फलमूलेभ्यश्शुष्कशाखादिकात्तथा ।८२।
तद्वद्धारीतकेभ्यश्च गुडभक्ष्येभ्य एव च ।
भुञ्जीतोद्धृतसाराणि न कदापि नरेश्वर ।८३।
नाशेषं पुरुषोऽश्नीयादन्यत्र जगपीहते ।
मध्वम्बुदधिसर्पिभ्यस्सक्तुभ्यश्च विवेकवान् ।८४।

अन्यमनस्क भाव को त्यागकर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर पथ्य अन्न को मंत्रपूत जल छींटे देकर उसका आहार करे ।७८। किसी दुराचारी पुरुष से प्राप्त, घृणोत्पादक या बलि वैश्वदेव आदि संस्कारों से रहित अन्न को त्याग दे तथा अपने भोजन योग्य अन्न में से कुछ अंश अपने शिष्य अथवा अन्य क्षुधार्त व्यक्तियों को देकर शुद्ध पात्र में अन्न रख कर उसका भक्षण करे ।७९-८०। किसी वेत आदि के आसन पर स्थित पात्र में, अयोग्य या संकुचित स्थान में अथवा असमय में भोजन न करे। प्रथम अग्नि को अन्न का अग्रभाग देकर ही भोजन करे ।८१। मंत्रपूत, प्रशस्त तथा ताजा अन्न का भोजन करे। परन्तु फल, मूल और सूखी शाखाओं के और चटनी या गुड़ के पदार्थों के प्रति यह नियम लागू नहीं है। सारहीन पदार्थों का भोजन न करना ही इस कथन का उद्देश्य है ।८२-८३। हे भूपते ! मधु, जल घृत, दही, सत्तू आदि के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ को पूरा ही भक्षण न करे ।८४।

अश्नीयात्तन्मयो भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् ।
लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तादिकांस्ततः ।८५।
प्राग्द्रवं पुरुषोऽश्नीयान्मध्ये कठिनभोजनः ।
अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलारोग्ये न मुञ्चति ।८६।
अनिन्द्यं भक्षयेदित्थं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।
पञ्चग्रास महामौनं प्राणाद्याप्यायन हि तत् ।८७।
भुक्त्वा सम्यगथाचम्य प्राङ् मुखोदङ् मुखोऽपि वा ।
यथावत्पुनराचामेत्पाणी प्रक्षाल्य मूलतः ।८८।
स्वस्थः प्रशान्तचित्तस्तु कृतासनपरिग्रहः ।
अभीष्टदेवतानां तु कुर्वीत स्मरणं नरः ।८९।
अग्निराप्याययेद्धातुं पार्थिवं पवनेरितः ।
दत्तावकाशं नभसा जरयत्वस्तु मे सुखम् ।९०।
अन्नं बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च ।
भवत्येतत्परिणतं ममास्त्वव्याहतं सुखम् ।९१।

एकाग्र मन से भोजन करना चाहिये । पहिले मीठे फिर नमकीन फिर खट्टे और अन्त में कडुवे तीक्ष्ण पदार्थों का भोजन करे ।८५। जो मनुष्य प्रथम द्रव पदार्थ, मध्य में कठिन पदार्थ और अन्त में पुन: द्रव पदार्थ भक्षण करता है, उसके बल और आरोग्य का कभी क्षय नहीं होता ।८६। इस प्रकार अनिषिद्ध पदार्थों का वाणी के संयम पूर्वक भोजन करे । अन्न का कभी तिरस्कार न करे । पहिले पाँचग्रास मौन रहकर खाय, वह पंचप्राणों की तृप्ति करने वाले हैं ।८७। भोजन के पश्चात् भले प्रकार आचमन करे और पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके हाथों को उन के मूल देश तक धोकर पुन: विधिवत् आचमन करे ।८८। फिर स्वस्थ और शांत मन से आसन पर स्थित हो और अपने इष्ट देवताओं का ध्यान करे ।८९। प्राणवायु से प्रदीप्त हुआ जठराग्नि आकाश मे आकाशमय अन्न का परिपाक करता हुआ मेरी देहगत पार्थिव धातुओं का पोषण करे जिससे मैं सुखी रहूँ ।९०। यह अन्न मेरे देह में स्थित पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के बल की वृद्धि करे तथा इन्हीं चारों तत्वों के रूप में हुआ यह अन्न मुझे सुखदायक हो ।९१।

प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ।
अन्नं पुष्टिकरं चास्तु ममाप्यव्याहतं सुखम् ।९२।।
अगास्तिरग्निर्बडवानलश्च भुक्तं मयान्नं जरयत्वशेषम् ।
सुखं च मे तत्परिणामसंभवं यच्छत्वरोगो मम चास्तु देहे ।
विष्णुस्समस्तेन्द्रियदेहदेही प्रधानभूतो भगवान्यथैक: ।
सत्येन तेनात्तमशेषमन्नमारोग्यदं मे परिणाममेतु ।९४।
विष्णुरत्ता तथैवान्नं परिणामश्च वै तथा ।
सत्येन तेन मद्भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा ।९५।
इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमृज्य तथोदरम् ।
अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रित: ।९६।
सच्छास्त्रादिविनोदेन सन्मार्गादविरोधिना ।
दिनं नयेत्ततस्सन्ध्यामुपतिष्ठेत्समाहित: ।९७।

यह अन्न मेरे प्राणापान, समान, उदान और व्यान को पुष्ट करे, जिससे मुझे बाधा रहित सुख मिल सके ।९२। मेरे भोजन किये हुए सब

अन्न को अगस्ति नामक अग्नि और वड़वानल पकावें, उसके परिणाम से उत्पन्न होने वाला सुख दें और उनसे मेरे देह को आरोग्य-लाभ हो ।९३। देह तथा इन्द्रियादि के अधिष्ठाता केवल भगवान श्रीहरि ही प्रधान हैं, इस सत्य के प्रभाव से मेरे भोजन का सब अन्न पककर मुझे आरोग्य-लाभ करावे ९४। भोजन करने वाला, अन्न तथा उसका परिपाक—यह सब विष्णु ही हैं । इसी सत्य के प्रभाव से मेरे भोजन किये हुए इस अन्न का परिपाक हो ।९५। इस प्रकार कहकर अपने पेट पर हाथ फेरे और यत्न पूर्वक अधिक श्रम उत्पन्न न करने वाले कार्यों को करने लगे ।९६। दिवस का शेष काल सत् शास्त्रों के देखने तथा श्रेष्ठ मार्ग से विरोध न करने वाले विनोदों में बितावे और सायकाल में यत्नपूर्वक संध्योपासन करे ।९७।

दिनान्तसन्ध्यां सूर्येण पूर्वामृक्षैर्युतां बुधः ।
उपतिष्ठेद्यथान्याय्यं सम्यगाचम्य पार्थिव ।।९८।।
सर्वकालमुपस्थानं सन्ध्ययोः पार्थिवेष्यते ।
अन्यत्र सूतकाशौचविभ्रमातुरभीतितः ।९९।
सूर्येणाभ्युदितो यश्च त्यक्तः सूर्येण व स्वपन् ।
अन्यत्रातुरभावात्तु प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ।।१००।।
तस्मादनुदिते सूर्ये समुत्थाय महीपते ।
उपतिष्ठेन्नरस्सन्ध्यामस्वपश्च दिनान्तजाम् ।१०१।
उपतिष्ठन्ति वै सन्ध्यां ये न पूर्वां न पश्चिमाम् ।
व्रजन्ति ते दुरात्मानस्तामिस्रं नरकं नृप ।१०२।
पुनः पाकमुपादाय सायमप्यवनीपते ।
वैश्वदेवनिमित्तं वै पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ।१०३।
तत्रापि श्वपचादिभ्यस्तथैवान्नविसर्जनम् ।
अतिथिं चागतं तत्र स्वशक्त्या पूजयेद् बुधः ।।१०४।।

हे राजन् ! सायंकाल में सूर्यास्त से पहिले और प्रातः काल में तारों के अस्त न होने से पूर्व विधिवत् आचमनादि करके सन्ध्योपासन करना चाहिये ।९८। यदि सूतक, अशौच, उन्माद, रोग या भयादि में से किसी प्रकार की बाधा न हो तो नित्य प्रति ही सन्ध्योपासन करना चाहिये

।९९। रोगकी अवस्था के अतिरिक्त और कभी भी जो मनुष्य सूर्य के उदयास्त काल में सोता रहता है, उस प्रायश्चित का भागी होना होता है १००। इसलिये हे राजन् ! गृहस्थ पुरुष को सूर्योदय होने से पहिले ही उठकर प्रात:कालीन संध्या करनी चाहिये, सायंकालीन सन्ध्या के समय भी संध्योपासन करे, शयन न करे ।१०१। हे राजन् ! जो मनुष्य प्रात: कालीन और सायंकालीन संध्यावंदन से विरत रहते हैं, उन दुरात्माओं को अन्धतामिस्र नरक की प्राप्ति होती हैं ।१०२। फिर सायकाल में परिपक्व किये अन्न से गृहिणी मंत्रहीन बलिवैश्वदेव करे १०३। इस समय भी श्वपचादि को अन्न दे और आगत अतिथि का भी अपनी शक्ति भर पूजन करे ।१०४।

पादशौचासनप्रह्वस्वागतोक्त्या च पूजनम् ।
ततश्चान्नप्रदानेन शयनेन च पार्थिव । १०५।
दिवातिथौ तु विमुखे गते यत्पातकं नृप ।
तदेवाष्टगुणं पुंसस्सूर्योढे विमुखे गते । १०६।
तस्मात्स्वशक्त्या राजेन्द्र सूर्योढमतिथिं नर: ।
पूजयेत्पूजिते तस्मिन्पूजितास्सर्वदेवता: ।१०७।
अन्नशाकाम्बुदानेन स्वशक्त्या पूजयेत्पुमान् ।
शयनप्रस्तरमहीप्रदानैरथवापि तम् । १०८।
कृतपादादिशौचस्तु भुक्त्वा सायं ततो गृही ।
गच्छेच्छय्यामस्फुटितामपि दारुमयीं नृप ।१०९।
नाविशाला न वै भग्ना नासमा मलिना न च ।
न च जन्तुमयीं शय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम् ।११०।
प्राच्यां दिशि शिरश्शस्तं याम्यायामथ वा नृप ।
सदैव स्वपत: पुंसो विपरीतं तु रोगदम् ।१११।

हे राजन् ! अतिथि सत्कार में प्रथम पग-प्रक्षालन, आसन दान, स्वागत सूचक विनीत वचन, भोजन तथा शय्या आदि की व्यवस्था करना उचित है । हे नृप ! जो पाप दिन में आये हुए अतिथि के लौटने से होता है, उससे अष्टगुण पाप सूर्यास्त के समय आये हुए अतिथि के विमुख चले

जाने से होता है।१०६। इसलिये सूर्यास्त काल में आये हुए अतिथि का अवश्य ही शक्ति भर सत्कार करना चाहिए, क्योंकि उसका पूजन होने में सभी देवताओं का पूजन निहित है।१०७। जिस प्रकार हो सके भोजन के लिये अन्न, शाक अथवा जल ही दे, शयन के लिए शय्या न हो तो घास फूस बिछा दे अथवा भूमि ही बता दे। तात्पर्य यह है कि यथाशक्ति उसका सत्कार करे।१०८। हे राजन्! फिर वह गृहस्थ सायंकालीन भोजन करे और हाथ-पाँव धोकर छिद्रादि से रहित काष्ठमयी शय्या पर शयन करे।१०९। ऐसी शय्या पर शयन न करे जो बहुत बड़ी, ऊँची-नीची, टूटी अथवा मैली हो या उसमें जीव भरे हों।११०। शयन के समय पूर्व अथवा दक्षिण की ओर शिर रखे, अन्य दिशाओं में शिर रखना रोग उत्पन्न करने वाला होता है।१११।

ऋतावुपगमश्शस्तस्स्वपत्न्यामवनीपते।
पुन्नाम क्षुर्क्षभे कालेज्येष्ठायुग्मासु रात्रिषु।११२।
नाद्यूनां तु स्त्रियं गच्छेन्नातुरां न रजस्वलाम्।
नानिष्टां न प्रकुपितां न च गर्भिणीम्।११३।
नादक्षिणां नान्यकामां नान्ययोषितम्।
क्षुत्क्षामां नातिभुक्तां वा स्वयं चैभिर्गुणैर्युतः।११४।
स्नातस्स्रग्गन्धधृक्प्रीतो नाध्मातः क्षुधितोऽपि वा।
सकामस्सानुरागश्च व्यवायं पुरुषो व्रजेत्।११५।
चतुर्दश्यष्टमो चैव तथामा चाथ पूर्णिमा।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च।११६।
तैलस्त्रीमांसम्भोगी सर्वेष्वेतेषु वै पुमान्।
विण्मूत्रभोजन नाम प्रयाति नरकं मृतः।११७।
अशेषपर्वस्वेतेषु तस्मात्संयमिभिर्बुधैः।
भाव्यं सच्छास्त्रदेवेज्याध्यानजप्यपरैर्नरैः।११८।

हे राजन्! ऋतुकाल को प्राप्त हुई अपनी ही भार्या से समागम करे। पुंलिग नक्षत्र में युग्म रात्रियों में बहुत बात गये तथा श्रेष्ठ समय देखकर ही नारी से संगति करे।११२। अप्रसन्न मन वाली, रोगिणी,

रजस्वला, अभिलाषा-हीन क्रोधमयी, दुःखिनी या गर्भवती के साथ संगति उचित नहीं है ।११३। जो सरल स्वभाव की न हो, अभिलाषा-हीन या दूसरे पुरुष की कामना वाली हो, भूख से व्याकुल या अधिक भोजन किये हुए हो ऐसी पत्नी अथवा कोई स्त्री गमन योग्य नहीं हैं । यदि अपने में भी इन दोषों की स्थिति हो तो उस दशा में भी संगति नहीं करनी चाहिये ।११४। स्नान करके पुष्पमाला तथा गंध लेपनादि से युक्त होकर काम और अनुरागके सहित स्त्री के पास जाय और अतिभोजन करके अथवा भूखा रहने की अवस्था में संगति न करे ।११५। हे नृपेन्द्र ! चौदस, अष्टमी अमावस, पूर्णिमा तथा सूर्य की संक्रान्ति–यह सब पर्व-दिवस हैं ।११६। इनमें तैल-मर्दन और नारी संयोग मृत्यु के अनन्तर मल-मूत्र युक्त नरक की प्राप्ति कराने वाला है ।११७। विद्वान पुरुषों को इन सभी पर्व-दिनों में संयम पूर्वक सत्-शास्त्रों का अध्ययन, देववन्दन, यज्ञानुष्ठान, जप और ध्यानादि कार्य करने चाहिये ।११८।

नान्ययोनावयोनौ वा नोपयुक्तौषधस्तथा ।
द्विजदेवगुरूणां च व्यवायी नाश्रमे भवेत् ।११९।
चैत्यचत्वरतीर्थेषु नैव गोष्ठे चतुष्पथे ।
नैव श्मशानोपवने सलिलेषु महीपते । १२०।
प्रोक्तपर्वस्वशेषेषु नैव भूपाल सन्ध्ययोः ।
गच्छेद्व्यवाय मतिमान्न मूत्रोच्चारपीडितः ।१२१।
पर्वस्वभिगमोऽधन्यो दिवा पापप्रदो नृप ।
भुवि रोगावहो नृणामप्रशस्तो जलाशये ।१२२।
परदारान्न गच्छेच्च मनसापि कथञ्चन ।
किमु वाचास्थिबन्धोऽपि नास्ति तेषु व्यवायिनाम् ।१२३।
मृतो नरकमभ्येति हीयतेऽत्रापि चायुषः ।
परदाररतिः पुंसामिह चामुत्र भीतिदा ।१२४।
इति मत्वा स्वदारेषु ऋतुमत्सु बुधो व्रजेत् ।
यथोक्तदोषहीनेषु सकामेष्वनृतावपि १२५।

गौ, बकरी आदि भिन्न योनि और अयोनि से समागम न करे ।

औषधि प्रयोग द्वारा भी यह कार्य वर्जित है, तथा ब्राह्मण, देवता या गुरु के आश्रम में भी संगति करने का निषेध है ।११६। चैत्य, वृक्ष के नीचे, आँगन, तीर्थ, पशुशाला, चौराहा, श्मशान, उपवन और जल भी नारी संग के लिये निषिद्ध कहे हैं ।१२०। पहिले कहे हुए सभी पर्व-दिवसों में, प्रातः अथवा सायं समय या मल-मूत्र का वेग होने की स्थिति में भी मैथुन-कर्म वर्जित है ।१२१। हे राजन् ! पर्व दिनों का नारी-संग धन को नष्ट करने वाला है, दिन का मैथुन पाप-फल का देने वाला है, पृथिवी पर मैथुन-कर्म रोग-प्रद है तथा जल में किया गया प्रसंग अमंगल जनक है १२२। पर-नारी से तो वाणी या मन से भी संग न करे, क्योंकि ऐसा मैथुन अस्थि-बन्धन-विहीन अर्थात् अस्थिहीन शरीर–कीटादि की योनि प्राप्त कराने वाला होता है ।१२३ परनारी में आसक्ति इहलोक और पर-लोक दोनों स्थानों पर भयावह होती है । इहलोक में आयु का ह्रास और परलोक में नरक की प्राप्ति होती है ।१२४। ऐसा समझ कर मतिमान पुरुष अपनी ही स्त्री से ऋतुकाल में संग करे और यदि किसी समय विशेष मन हो तो बिना ऋतुकाल के भी स्वनारी-संयोग में प्रवृत्त हो ।१२५।

—: ❀ ❀ :—

बारहवाँ अध्याय

देवगोब्राह्मणान्सिद्धान्वृद्धाचार्यास्तथार्चयेत् ।
द्विकालं च नमेत्सन्ध्यामग्नीनुपचरेत्तथा ।१।
सदानुपहते वस्त्रे प्रशस्ताश्च महौषधीः ।
गारुडानि च रत्नानि बिभृयात्प्रयतो नरः २।
प्रस्निग्धामलकेशश्च सुगन्धश्चारुवेषधृक् ।
सितास्सुमनसो हृद्या बिभृयाच्च नरस्सदा ।३।
किञ्चित्परस्वं न हरेन्नाल्पमप्यप्रियं वदेत् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयान्नान्यदोषानुदीरयेत् ।४।
नान्यस्त्रियं तथा वैरं रोचयेत्पुरुषर्षभ ।
न दुष्टं यानमारोहेत्कूलच्छायां न संश्रयेत् ।५।

विद्विष्टपतितोन्मत्तबहुवैरादिकीटकैः ।
बन्धकी बन्धकीभर्त्तुः क्षुद्रानृतकथैस्सह ।६।
तथातिव्ययशीलैश्च परिवादरतैश्शठैः ।
बुधो मैत्रीं न कुर्वीत नैकः पन्थानमाश्रयेत् ।७।

और्व ने कहा—गृहस्थ मनुष्य प्रतिदिन देवता, गौ, ब्राह्मण, सिद्धगण, गुरुजन और आचार्य का पूजन करे तथा दोनों समय सन्ध्या-पासन और अग्निहोत्रादि करे ।१। संयम पूर्वक रहे, छिद्रहीन दो वस्त्र, श्रेष्ठ औषधियाँ तथा गारुड रत्न को धारण करे ।२। अपने बालों को स्वच्छ और चिकने रखे, सुगन्धमय वेशभूषा और मनोहर श्वेत-पुष्पों को धारण करे ।३। किसी के किंचित् मात्र धन का भी अपहरण या स्वल्प रूप में भी अप्रिय भाषण न करे । मिथ्या वचन प्रिय हो तो भी न बोले और परदोषों को किसी से न कहे ।४। परनारी में प्रीति न करे, किसी के साथ वैर करने में रुचि न रखे, निन्दित सवारी में न बैठे और नदी-तट की छाया का कभी आश्रय न ले ।५। बुद्धिमान पुरुष को उचित है कि वह लोकनिंदित, पतित, उन्मत्त, बहुतों के वैरी या दूसरों को पीड़ित करने वाले पुरुषों से तथा कुलटा, कुलटा के पति मिथ्याभाषी अत्यन्त व्यय करने वाले, परनिन्दा में रुचि रखने वाले और दुष्टों के साथ कभी मित्रता न करे । निर्जन मार्ग में कभी अकेला न चले ।६—७।

नावगाहेज्जलौघस्य वेगमग्रे नरेश्वर ।
प्रदीप्तं वेश्म न विशेन्नारोहेच्छिखरं तरोः ।८।
न कुर्याद्दन्तसङ्घर्षं कुष्णीयाच्च न नासिकाम् ।
नासंवृतमुखो जृम्भेच्छ्वासकासौ विसर्जयेत् ।९।
नोच्चैर्हसेत्सशब्दं च न मुञ्चेत्पवनं बुधः ।
नखान्न खादयेच्छिन्द्यान्न तृणं न महीं लिखेत् १०।
न श्मश्रुभक्षयेल्लोष्टं न मृद्नीयाद्विचक्षणः
ज्योतींष्यमेध्यशस्तानि नाभिवीक्षेत च प्रभो ।११।
नग्नां परस्त्रियं चैव सूर्यं चास्तमयोदये ।
न हुङ्कुर्याच्छवं गन्धं शवगन्धौ हि सोमजः ।१२।

चतुष्पथं चैत्यतरूं श्मशनोपवनानि च ।
दुष्टस्त्रीसन्निकर्षं च वर्जयेन्निशि सर्वदा ।१३।
पूज्यदेवद्विजज्योतिश्छायां नातिक्रमेद्बुधः ।
नैकश्शून्याटवीं गच्छेत्तथा शून्यगृहे वसेत् ।१४।

हे नरेश्वर ! जल प्रवाह के वेग के सामने से कभी स्नान न करे, जलते हुए घर में कभी न घुसे तथा वृक्ष के शिखर पर भी न चढ़े ।८। दाँतों का आपस में घर्षण न करे, नासिका को न कुरेदे । बंद मुँह जमुहाई लेना, खांसन या श्वाँस छोड़ना वर्जित है ।९। जोर से न हँसे, अधोवायु का शब्द सहित त्याग न करे, नखों को न चबावे, तिनका न तोड़े तथा भूमि पर न लिखे ।१०। मूँछ-दाढ़ी के बालों को भी न चबावे, दो ढेलों को परस्पर में न घिसे, तथा निन्दित और अशुद्ध नक्षत्रों का दर्शन न करे ।११। नग्नावस्था वाली परनारी को न देखे, उदय या अस्त होते हुए सूर्य के दर्शन न करे, शव या शव की गन्ध से घृणा न करे, क्योंकि शव-गन्ध चंद्रमा का अंश है ।१२। चौराहा, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन तथा दुष्ट स्त्री की निकटता—इन सबको रात्रिकाल में त्याग दे ।१३। अपने पूजनीय देवता, ब्राह्मण और ज्योतियों की छाया को कभी भी न लांघे तथा सूने जंगल या सूने घर में भी अकेला न रहे ।१४।

केशास्थिकण्टकामेध्यबलिभस्मतुषांस्तथा ।
स्नानार्द्रं धरणीं चैव दूरतः परिवर्जयेत् ।१५।
नानार्यनाश्रयेत्कांश्चिन्न जिह्मं रोचयेद् बुधः ।
उपसर्पेन्न वै व्यालं चिरं तिष्ठेन्न वोत्थितः ।१६।
अतीव जागरस्वप्ने तद्वत्स्नानासने बुधः ।
न सेवेत तथा शय्यां व्यायामं च नरेश्वर ।१७।
दंष्ट्रिणश्शृङ्गिणश्चैव प्राज्ञो दूरेण वर्जयेत् ।
अवश्यायं च राजेन्द्र पुरोवातातपौ तथा ।१८।
न स्नायान्न स्वपेन्नग्नो न चैवोपस्पृशेद् बुधः ।
मुक्तकेशश्च नाचामेद्देवाद्यार्चं च वर्जयेत् ।१९।

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा ।
नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विजवाचनिके जपे ।२०।
नाममञ्जसशीलैस्तु सहासीत कथञ्चन
सद्वृत्तसन्निकर्षो हि क्षणार्द्धमपि शस्यते ।२१।

केश, अस्थि, काँटे, अशुद्ध वस्तु, बलि, भस्म, तुष और स्नान से गीली हुई भूमि को दूर से ही त्याग दे ।१५। अनार्य पुरुष का संग और कुटिल मनुष्य में आसक्ति न करे, सर्प के समीप में न जाय और नींद खुलने पर देर तक न लेटे ।१६। जागने, सोने, स्नान करने, बैठने, शय्या पर लेटने और व्यायाम करने में अधिक देर न लगावे ।१७। दाँत और सींग वाले पशुओं को, ओस को, सामने की वायु को सर्वथा छोड़ दे १८। नंगा होकर स्नान, शयन और आचमन न करे और बालों को खोल कर आचमन या देव-पूजन ही करे ।१९। हवन देव-पूजन, आचमन, पुण्याहवाचन और जप में एक वस्त्र धारण पूर्वक ही प्रवृत्त न हो ।२०। संशय हृदय पुरुषों का कभी साथ न करे। सदाचारी पुरुषों का सदा साथ करे, क्योंकि ऐसे मनुष्यों के साथ तो आधे क्षण रहना भी प्रशंसनीय है ।२१।

विरोधं नोत्तमैर्गच्छेन्नाधमैश्च सदाबुधः ।
विवाहश्च विवादश्च तुल्यशीलैर्नृपेष्यते ।२२।
नारभेत कलिं प्राज्ञश्शुष्कवैरं च वर्जयेत् ।
अप्यल्पहानिस्सोढव्या वैरेणार्थागमं त्जेत् ।२३।
स्नातो नाङ्गानि सम्भार्जेत्स्नानशाट्या न पाणिना ।
न च निर्धूनयेत्केशान्नाचामेच्चैव चोत्थितः ।२४।
पादेन नाक्रमेत्पादं न पूज्याभिमुखं नयेत् ।
नोच्चासनं गुरोरग्रे भजेताविनयान्वितः ।२५।
अपसव्यं न गच्छेच्च देवागारचतुष्पथान् ।
माङ्गल्यपूज्यांस्व तथा विरीतान्न दक्षिणम् २६ः
सोमार्काग्न्यम्बु वायूनां पूज्यानां च न सम्मुखम् ।
कुर्यान्निष्ठीवविण्मूत्रसमुत्सर्गं च पण्डितः ।२७।

तिष्ठन्न मूत्रयेत्तद्वत्पथिष्वमि न मूत्रयेत् ।
श्लेष्मविण्मुत्ररक्तानि सर्वदैव न ङ्घरेत् ।२८।

श्रेष्ठ अथवा नीच पुरुषों से कभी विरोध न करे, क्योंकि विवाद और विवाह—यह दोनों ही कार्य समान पुरुषों से करने उचित है ।२२। कलह की वृद्धि न करे, व्यर्थ का वैर हो तो उसे भी छोड़ दे यदि थोड़ी-सी हानि उठाने पर भी वैर की समाप्ति होती हो तो उसमें चूके नहीं२३। स्नान करके स्नान से भीगी हुई धोती या हाथ से देह को न पोंछे, खड़े-खड़े ही बालों को न झाड़े और न आचमन करे ।२४। पैर पर पैर न रखे गुरुजनों के सामने पाँव न पसारे तथा उनके सामने उच्चासन पर कभी न बैठे ।२५। देव मन्दिर, चौराहा, मांगलिक द्रव्य और पुज्य पुरुष इनको बाँये रख कर न निकले तथा इनके विपरीतों को दाँये और रख कर न चले ।२६। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, वायु और पूज्य व्यक्तियों के समक्ष न थूके और न मल-मूत्र विसर्जन करे ।२७। मार्ग में या खड़े होकर मूत्र-त्याग न करे और कफ, मल, मूत्र तथा रुधिर को न लांघे ।२८।

श्लेष्मशिङ्घाणिकोत्सर्गो नन्नकाले प्रशस्यते ।
बलिमङ्गलजप्यादौ न होमे न महाजने ।२९।
योषितो नावमन्येत न चासां विश्वसेद् बुधः ।
न चैवेर्ष्या भवेत्तासु न धिक्कुर्यात्कदाचन ।।३०।
मङ्गल्यपुष्परत्नाज्यपूज्याननभिवाद्य च ।
न निष्क्रमेद् गृहात्प्राज्ञस्सदाचारपरो नरः ।३१।
चतुष्पथान्नमस्कुर्यात्काले होमपरो भवेत् ।
दीनानभ्युद्धरेत्साधूनुपासीत बहुश्रुतान् ।३२।
देवर्षिपूजकस्सम्यक्पितृपिण्डोदकप्रदः ।
सत्कर्ता चातिथीनां यः स लोकानुत्तमान्व्रजेत् ।३३।
हितं मितं प्रियं काले वश्यात्मा योऽभिभाषते ।
स याति लोकनाह्लादहेतुभूतान्नृपाक्षयान् ।३४।
धीमान्ह्रीमान्क्षमायुक्तो ह्यास्तिको विनयान्वितः ।
विद्याभिजनवृद्धानां याति लोकाननुत्तमान् ।।३५।।

भोजन, देव-पूजन, मांगलिक कार्य और जप-होमादि के समय या श्रेष्ठ पुरुषों के समक्ष थूकना, छींकना आदि कर्म न करे ।२६। स्त्रियों का अपमान, उनसे ईर्षा, उनका विश्वास न करे और न उन्हें निन्दित ही करे ।३०। मांगलिक द्रव्य, पुष्प, रत्न, घृत तथा पूज्य पुरुषों का अभिवादन किये बिना बुद्धिमान जन अपने घर से बाहर नहीं जाते ।३१। मार्ग चलते में चौराहों को नमस्कार करे, समय होने पर हवन करे, दीनों का उद्धार करे और बहुश्रुत साधुओं की संगति में रहे ।३२। जो पुरुष देवताओं और ऋषियों का पूजन, पितरों को पिण्डोदक-दान अतिथि का सत्कार करता है, वह पुण्यलोकों को प्राप्त होता है ।३३। जो पुरुष इन्द्रियों को जीतकर समय के अनुसार हितकारी, अल्प और प्रिय वचन कहता है, वह आह्लाद के हेतुभूत अक्षय लोकों में जाता हैं ।३४। जो पुरुष बुद्धिमान, लज्जावान्, क्षमावान्, आस्तिक और विनयशील होता है, वह विद्वान् और कुलीन पुरुषों के योग्य श्रेष्ठ लोकों कोप्राप्त होता है ।३५।

अकालगर्जितादौ च पर्वस्वाशौचकादिषु ।
अनध्यायं बुधः कुर्यादुपरागादिके तथा ।३६।
शमं नयति यः क्रुद्धान्सर्वबन्धुरमत्सरो ।
भीताश्वासनकृत्साधुस्स्वर्गस्तस्याल्पकं फलम् ।३७।
वर्षातपादिषु च्छत्री दण्डी रात्र्यटवीषु च ।
शरीरत्राणकामो वै सोपानत्कस्सदा व्रजेत् ।।३८।।
नोर्ध्वं न तिर्यग्दूरं वा न पश्यन्पर्यटेद् बुधः ।
युगमात्रं महीपृष्ठं नरो गच्छेद्विलोकयन् ।।३९।।
दोषहेतूमशेषांश्च वश्यात्मा यो निरस्यति ।
तस्य धर्मार्थकामानां हानिर्नाल्पापि जायते ।।४०।।
सदाचाररतः प्राज्ञो विद्याविनयशिक्षितः ।
पापेऽप्यपापः पुरुषे ह्यभिधत्ते प्रियाणि यः ।
मैत्रीद्रवान्तःकरणस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ।।४१।।
ये कामक्रोधलोभानां वीतरागा न गोचरे ।
सदाचारस्थितास्तेषामनुभावैर्धृता मही ।।४२।।

असमय में मेघ-गर्जन कर रहे हों, पर्व-दिन हो अशौचकाल या चन्द्र-सूर्यग्रहण का अवसर हो, ऐसे समय में बुद्धिमान् पुरुष को अध्ययन नहीं करना चाहिये ।३६। जो पुरुष क्रोध में भरे हुये के क्रोध को शान्त करने वाला, डरे हुए को सान्त्वना देने वाला, मत्सरता-रहित, सभी का बन्धु एव साधु स्वभाव है, उसके लिए तो अत्यल्प फल समझो ।३७। देह-रक्षा की कामना करने वाले पुरुष को वर्षा या धूप के समय छाता धारण करना चाहिये, रात्रिकाल में अथवा वन में जाय तो हाथ में दण्ड लेले और जहाँ कहीं भी जाना हो तो सदा जूते पहिन कर जाय ।३८। ऊपर की ओर, इधर-उधर या दूरस्थ पदार्थों को देखता हुआ न चले, केवल चार हाथ तक पृथिवी को देखते हुए चलना चाहिये ।३९। जो पुरुष इंद्रियों को वश में करके दोष-प्राप्ति के सभी साधनों का त्याग करता है, उसके धर्म, अर्थ और काम का किंचित मात्र भी क्षय नहीं होता ।४०। जो पापी के प्रति भी पापमय व्यवहार न करने वाला पुरुष विद्या, विनय, सदाचार और ज्ञान से सम्पन्न है तथा अपना अन्तःकरण मित्रता से द्रवीभूत रहने के कारण जो कुटिल पुरुषों से भी प्रिय भाषण करता है, मोक्ष सदा उस के हाथ में रहती है ।४१। जो रागादि से विरक्त हुए महापुरुष, काम, क्रोध और लोभादि के वश में कभी न पड़कर सदैव सदाचार में तत्पर रहते हैं, उन्हीं के प्रभाव से यह पृथ्वी टिकी हुई है ।४२।

तस्मात्सत्यं वदेत्प्राज्ञो यत्परप्रीतिकारणम् ।
सत्यं यत्परदुःखाय तदा मौनपरो भवेत् ।४३।
प्रियमुक्तं हितं नैतदिति मत्वा न तद्वदेत् ।
श्रेयस्तत्र हितं वाच्यं यद्यप्यत्यन्तमप्रियम् ।४४।
प्राणिनामुपकाराय यथैवेह परत्र च ।
कर्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान्भजेत् ।४५।

इस प्रकार सभी ज्ञानी पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वह उसी प्रकार का सत्य बोलें, जिससे दूसरों को सुख मिले । यदि किसी सत्य वाक्य से दूसरों का अहित होता हो तो मौन रहना ही उचित है ।४३। यदि प्रिय वाक्य भी हितकारी न हो उसे भी न कहे, केवल हित करने वाले वाक्य ही

चाहे वह अत्यन्त अप्रिय ही क्यों न हों ।४४। बुद्धिमान् पुरुष को इहलोक और परलोक में जिससे प्राणियों का हित साधन होता दीखे, उसी कार्य को मन, वचन और कर्म से करना चाहिये ।४५।

—:※:—

तेरहवाँ अध्याय

सचैलस्य पितुः स्नानं जाते पुत्रे विधीयते ।
जातकर्म तदा कुर्याच्छ्राद्धमभ्युदये च यत् ।१।
युग्मान्देवांश्च पित्र्यांश्च सम्यक्सव्यक्रमाद् द्विजान् ।
पूजयेद्भोजयेच्चैव तन्मना नान्यमानसः ।।२।।
दध्यक्षतैस्सबदरै प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।
देवतीर्थेन वै पिण्डान्दद्यात्कायेन वा नृप ।।३।।
नान्दीमुखः पितृगणास्तेन श्राद्धेन पार्थिव ।
प्रीयन्ते तत्तु कर्त्तव्यं पुरुषैस्सर्ववृद्धिषु ।।४।।
कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशेषु च वेश्मनः ।
नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ।५।
सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने ।
नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत्प्रयतो गृही ।।६।।
पितृपूजाक्रमः प्रोक्तो वृद्धावेष सनातनः ।
श्रूयतामवनीपाल प्रेतकर्मक्रियाविधिः ।७।

और्व ने कहा—पुत्र का जन्म होने पर पिता वस्त्रों के सहित स्नान करे और फिर जात-कर्म संस्कार और आभ्युदयिक श्राद्ध करे ।१। फिर सयमचित्त होकर देवताओं और पितरों के निमित्त क्रमशः दाँयी ओर बाँयी ओर दो-दो ब्राह्मणों को बिठाकर उनका पूजन करे और फिर उन्हें भोजन करावे ।२। पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर दही, अक्षत और बदरीफल से निर्मित पिण्डों को देवतीर्थ या प्रजापति तीर्थ से दे ।३। इस

आभ्युदयिक श्राद्ध के द्वारा नान्दीमुख नामक पितरों की प्रसन्नता प्राप्त की जाती है। इसलिए सब प्रकार-अभिवृद्धि के निमित्त इसका अनुष्ठान करना उचित है।४। पुत्री या पुत्र के विवाह में, नामकरण संस्कार में, चूडाकर्म में, गृह प्रवेश में सीमन्तोन्नयन में और पुत्रादि का मुख देखने के समय गृहस्थ को एकाग्र मन से नान्दीमुख पितरों की पूजा करनी चाहिये।५-६। हे राजन् ! आभ्युदयिक श्राद्ध में पितर-पूजन का यह सनातन क्रम मैंने तुमसे कहा है, अब प्रेत-क्रिया की विधि कहता हूँ. उसे श्रवण करो।७।

प्रेतदेहं शुभैः स्नानैस्स्नापितं स्रग्विभूषितम् ।
दग्ध्वा ग्रामाद्बहिः स्नात्वा सचैलस्सलिलाशये ।८।
यत्र तत्र स्थितायैतदमुकायेति वादिनः ।
दक्षिणाभिमुखा दद्युर्बान्धवास्सलिलाञ्जलीन् ।।९।।
प्रविष्टाश्च समं गोभिर्ग्रामं नक्षत्रदर्शने ।
कटकर्म ततः कुर्युर्भूमौ प्रस्तरशायिनः ।१०।
दातव्योऽनुदिनं पिण्डः प्रेताय भुवि पार्थिव ।
दिवा च भक्तं भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ ।११।
दिनानि तानि चेच्छातः कर्त्तव्यं विप्रभोजनम् ।
प्रेता यान्ति तथा तृप्तिं बन्धुवर्गेण भुञ्जता ।।१२।।
प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ।
वस्त्रत्यागबहिस्स्नाने कृत्वा दद्यात्तिलोदकम् ।।१३।।

शव को भले प्रकार स्नान कराने के पश्चात् पुष्प-मालाओं से विभूषित शव को ग्राम से बाहर ले जाकर दाह-संस्कार करना चाहिये। फिर जलाशय में वस्त्र सहित स्नान करके दक्षिण की ओर मुख करके 'यत्र तत्र स्थिता तदमुकाय'—इस वाक्य का उच्चारण करते हुए जलाञ्जलि देनी चाहिये।८-९। फिर गोधूलि काल में जब तारा मण्डल दिखाई देने लगे, तब ग्राम प्रवेश कर कटकर्म कर घास-फूँस की शय्या पर, भूमि पर ही शयन करे।१०। मृत पुरुष के निमित्त नित्य प्रति पृथ्वी पर पिण्ड-दान करे और केवल दिन के समय एक बार माँस-रहित भात का भोजन करे।११। यदि अशौच, काल में ब्राह्मण भोजन कराना चाहें तो उन्हें

भोजन करावे, क्योंकि उस समय ब्राह्मण और बन्धुजन के भोजन करने से मृत जीव तृप्त होता है।१२। अशौच के प्रथम दिन, तृतीय दिन, सातवें और नौवें दिन वस्त्र त्यागकर बहिर्देश में स्नान करने के पश्चात् तिल-जल देना चाहिये।१३।

चतुर्थेऽह्नि च कर्तव्यं तस्यास्थिचयनं नृप।
तदूर्ध्वमङ्गसंस्पर्शः सपिण्डानामपीष्यते।१४।
योग्याः सर्वक्रियाणां तु समानसलिलास्तथा।
अनुलेपमपुष्पादिभोगादन्यत्र पार्थिव।१५।
शय्यासनोपभोगश्च सपिण्डानामपीष्यते।
भस्मास्थिचयनादूर्ध्वं संयोगो न तु योषिताम्।१६।
बाले देशान्तरस्थे च पतिते च मुनौ मृते।
सद्यश्शौचं तथेच्छातो जलाग्न्युद्बन्धनादिषु।१७।
मृतबन्धोर्दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते।
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते।१८।
विप्रस्यैतद् द्वादशाहं राजन्यस्याप्यशौचकम्।
अर्धमासं तु वैश्यस्य मासं शूद्रस्य शुद्धये।१९।
अयुजो भोजयेत्कामं द्विजानन्ते ततो दिने।
दद्याद्दर्भेषु पिण्डं च प्रेतायोच्छिष्टसन्निधौ॥२०॥
वार्यायुधप्रतोदास्तु दण्डश्च द्विजभोजनात्।
स्प्रष्टव्योऽन्तरैर्वर्णैः शुद्धेरन्ते ततः क्रमात्॥२१॥

हे राजन्! अशौच के चौथे दिन मृतक की अस्थि संचित करे, उसके बाद अपने सपिण्ड बांधवों का अङ्ग स्पर्श करे।१४। उस समय में सपिण्ड पुरुष चंदन और पुष्प धारण आदि क्रिया तो नहीं कर सकते, परन्तु अन्य सब कर्म कर सकते हैं।१५। भस्म और अस्थि-संचयन पश्चात् सपिण्ड जनों को शय्या और आसन के उपयोग की छूट है, परन्तु स्त्री-संसर्ग वर्जित है।१६। बालक, दूसरे देश में स्थित, पतित और तपस्वी की मृत्यु होने पर या जल में डूब कर, जल कर या फांसी आदि

लगाकर आत्मघात करने पर अशौच शीघ्र ही दूर हो जाता है।१७। जिस कुटुम्ब में मृत्यु हुई हो, उसका अन्न दस दिन तक भोजन न करे और अशौच काल में, दान, परिग्रह, हवन, स्वाध्याय आदि भी न करे।१८। यह दस दिन का अशौच ब्राह्मण का कहा है, क्षत्रिय का अशौच बारह दिन का और वैश्य का पन्द्रह दिन का होता है तथा शूद्र की अशौच से निवृत्ति एक मास में होती है।१९। अशौच की समाप्ति पर अयुग्म, अर्थात् ऊना (नौ, ग्यारह, तेरह) आदि संख्यक ब्राह्मणों को भोजन करावे और उनकी जूठन के पास ही प्रेत की तृप्ति के लिये कुश के आसन पर पिण्ड दे।२०। शुद्धि हो जाने पर तथा ब्राह्मण भोजन होने के पश्चात् ब्राह्मणादि चारों वर्णों को पहिले जल का, फिर शस्त्र का, फिर कोड़ा का और फिर सबके अन्त लाठी का स्पर्श करना चाहिये।

ततस्स्ववर्णधर्मा ये विप्रादीनामुदाहृताः।
तान्कुर्वीत पुमाञ्जीवेन्निजधर्मार्जनैस्तथा।२२।
मृताहनि च कर्तव्यमेकोद्दिष्टमतः परम्।
आह्वानादिक्रियादैवनियोगरहितं हि तत्।२३।
एकोऽर्घ्यस्तत्र दातव्यस्तथैवैकपवित्रकम्।
प्रेताय पिण्डो दातव्यो भुक्तवत्सु द्विजातिषु॥२४॥
प्रश्नश्च तत्राभिरतिर्यजमानैर्द्विजन्मनाम्।
अक्षय्यममुकस्येति वक्तव्यं विरतौ तथा।२५।
एकोद्दिष्टमयो धर्म इत्यमावत्सरात्स्मृतः।
सपिण्डीकरणं तस्मिन्काले राजेन्द्र तच्छृणु।२६।

फिर ब्राह्मणादि के जो-जो वर्ण धर्म कहे हैं, उन्ही का आचरण करते हुए आजीविका का उपार्जन करे।२२। इसके पश्चात् प्रतिमास मृतक की मृत्यु तिथि के दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे, जो कि आवाहनादि क्रिया और विश्वेदेव संबन्धी कर्म से रहित हो।२३। उस समय एक अर्घ्य और एक पवित्रक दे। यदि बहुत से ब्राह्मण भोजन करें तो भी मृतक के लिये एक ही पिण्ड दे।२४। फिर यजमान द्वारा पूछे जाने पर ब्राह्मण 'अभिरताः स्म' कहें और पिण्ड दान की समाप्ति पर 'अमुकस्य अक्षय्यम्'

इत्यादि वाक्य का उच्चारण करें।२५। इस प्रकार यह एकोद्दिष्ट कर्म एक वर्ष तक करना चाहिये। वर्ष के समाप्त होने पर सपिण्डीकरण (वर्षी) करे, उसका विधान सुनो।२६।

एकोद्दिष्टविधानेन कार्यं तदपि पार्थिव।
संवत्सरेऽथ षष्ठे वा मासे वा द्वादशेऽह्नि तत्।२७।
तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम्।
पात्रं प्रतस्य तत्रैकं पैत्रं पात्रत्रयं तथा।२८।
सेचयेत्पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं ततस्त्रिषु।
ततः पितृत्वमापन्ने तस्मिन्प्रेते महीपते।२९।
श्राद्धधर्मैरशेषैस्तु तत्पूर्वानर्चयेत्पितृन्।
पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा भ्राता वा भ्रातृसन्ततिः।।३०।
सपिण्डसन्ततिर्वापि क्रियार्हो नृप जायते।
तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः।३१।
मातृपक्षसपिण्डेन सम्बद्धा ये जलेन वा
कुलद्वयेऽपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्याः क्रिया नृप।३२।
सङ्घातान्तर्गतैर्वापि कार्याः प्रेतस्य च क्रियाः।
उत्सन्नबन्धुरिक्थाद्वा कारयेदवनीपतिः।३३।

यह सपिण्डीकरण कर्म भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध की विधि से एक वर्ष छः मास अथवा बारह दिन के पश्चात् ही किया जा सकता है।२७। इसमें तिल, गंध और जल सहित चार पात्र रखने चाहिये। इनमें से एक पात्र मृत व्यक्ति का तथा तीन पात्र पितरों के होते हैं।२८। फिर मृत व्यक्ति के पात्र में स्थित जलादि से पितरों के पात्रों को सींचे। इस प्रकार मृत व्यक्ति को पितृत्व की प्राप्ति हो जाय, तब सभी श्राद्ध धर्मों के द्वारा प्रथम मृत व्यक्ति का और फिर पितरों का पूजन करे। अपने सपिण्ड में उत्पन्न पुरुष-पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भ्राता, भतीजा आदि ही श्राद्धादि कर्म करने का अधिकारी होता है। यदि इनमें से कोई न हो तो समानोदक (सगोत्र) की संतान या मातृ-पक्ष के सपिण्ड या समानोदक इस कर्म को कर सकता है। यदि मातृकुल या पितृकुल दोनों में से कोई भी न हो तो

स्त्रीं ही इस क्रिया को कर सकती है ।२९-३२। स्त्री के अभाव में मृतक का कोई साथी करे । यदि उसका भी अभाव हो तो राजा को ही मृतक के द्रव्य से उसका सब प्रेत कर्म करना चाहिये ।३३।

पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः
त्रिप्रकाराः क्रियाः सर्वास्तासां भेदं शृणुष्व मे ।३४।
आदाहवार्यायुधादिस्पर्शाद्यन्तास्तु याः क्रियाः ।
ता पूर्वा मध्यमा मासि मास्येकोद्दिष्टसंज्ञिताः ।३५।
प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादानु।
क्रियन्ते याः क्रियाः पित्र्याः प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तराः ।३६।
पितृमातृसपिण्डैस्तु समानसलिलस्तथा ।
सङ्घातान्तर्गतैर्वापि राज्ञा तद्धनहारिणा ।३७।
पूर्वाः क्रियाश्च कर्तव्याः पुत्राद्यैरेव चोत्तराः ।
दौहित्रैर्वा नृपश्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयैस्तथा ।३८।
मृताहनि च कर्तव्याः स्त्रीणामप्युत्तराः क्रियाः ।
प्रतिसंवत्सरं राजन्नेकोद्दिष्टविधानतः ।।३९।
तस्मादुत्तरसंज्ञायाः क्रियास्ताः शृणु पार्थिव ।
यथा यथा च कर्तव्या विधिना येनचानघ ।४०।

प्रेत कर्म के तीन प्रकार हैं—पूर्व कर्म, मध्यम कर्म और उत्तर कर्म। इन सबके लक्षण पृथक-पृथक हैं, उन्हें भी सुनो ।३३। दाह संस्कार से जलशस्त्रादि के स्पर्श तक जितने भी संस्कार हैं, वे सब पूर्व कर्म कहे गये हैं तथा प्रतिमास किया जाने वाला एकोद्दिष्ट श्राद्ध मध्यम कर्म है ।३५। सपिण्डीकरण के बाद जब मृतक पितृत्व को प्राप्त हो जाता है, तब उसके प्रति किये जाने वाले सब कर्म उत्तर कर्म कहे जाते है ।३६। माता, पिता, सपिण्ड, समानोदक, साथी अथवा उसका धनाधिकारी राजा—यह सब उसके पूर्व कर्म करने के अधिकारी हो सकते हैं, परन्तु उत्तर कर्म पुत्र, दौहित्र या उनकी सन्तान ही कर सकती है ।३६-३८। हे राजन् ! स्त्रियों का उत्तर कर्म भी प्रतिवर्ष मृत्यु-दिवस पर एकोद्दिष्ट

श्राद्ध विधि से ही अवश्य कर्तव्य है ।३९। इसलिये हे निष्पाप ! वे उत्तर क्रियाएँ जिस-जिस व्यक्ति के द्वारा जिस-जिस विधान से करनी चाहिये, उन्हें भी अब ध्यान से श्रवण करो ।४०।

—:❀❀:—

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मेन्द्ररुद्रनासत्यसूर्याग्निवसुमारुतान् ।
विश्वेदेवान्पितृगणान्वयांसि मनुजान्पशून् ।१।
सरीसृपानृषिगणान्यच्चान्यद्भूतसंज्ञितम् ।
श्राद्धं श्रद्धान्वितः कुर्वन्प्रीणयत्यखिलं जगत् ।।२।।
मासि मास्यसिते पक्षे पञ्चदश्यां नरेश्वर ।
तथाष्टकासु कुर्वीत काम्यान्कालाञ्छृणुष्व मे ।३।
श्राद्धार्हमागतं द्रव्यं विशिष्टमथ वा द्विजम् ।
श्राद्धं कुर्वीत विज्ञाय व्यतीपातेऽयने तथा ।।४।
विषुवे चापि सम्प्राप्ते ग्रहणे शशिसूर्ययोः ।
समस्तेष्वेव भूपाल राशिष्वर्के च गच्छति ।५।
नक्षत्रग्रहपीडासु दुष्टस्वप्नावलोकने ।
इच्छाश्राद्धानि कुर्वीत नवसस्यागमे तथा ।६।
अमावास्या यदा मैत्रविशाखास्वातियोगिनी ।
श्राद्धैः पितृगणास्तृप्तिं तथाप्नोत्यष्टवार्षिकीम् ।७।

और्व ने कहा—श्रद्धा भाव से श्राद्ध कर्म करने वाला मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि वसुगण, मरुद्गण, विश्वेदेवा, पितरगण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सरीसृप, ऋषिगण और भूतगण आदि संपूर्ण विश्व को प्रसन्न करने में समर्थ होता है।१-२। हे राजन् ! प्रत्येक महीने की अमावस और अष्टका (हेमन्त और शिशिर ऋतुओं के शुक्ल पक्ष की अष्टमी) पर श्राद्ध करे। अब काम्य श्राद्ध का समय कहता हूँ, उसे सुनो।३। जब श्राद्ध के योग्य कोई पदार्थ घर में आवे अथवा किसी

विशिष्ट ब्राह्मण का आगमन हो या उत्तरायण अथवा दक्षिणायन का आरम्भ हो या व्यतीपात हो तब काम्य श्राद्ध को करे ।४। विषुव संक्रान्ति सूर्य-चन्द्रग्रहण, सूर्य का प्रत्येक राशि मे प्रवेश होते समय, नक्षत्र या ग्रह के पीड़ित होने पर, दुःस्वप्न देखने पर अथवा घर में नया अन्न आवे तब काम्य-श्राद्ध करना उचित है ।५-६। जिस अमावस में अनुराधा, विशाखा या स्वाति नक्षत्र का योग हो, उसमें श्राद्ध करने से पितरों की आठ वर्ष के लिये तृप्ति हो जाती है ।७।

अमावास्या यदा पुष्ये रौद्रे चर्क्षे पुनर्वसौ ।
द्वादशाब्दं तथा तृप्तिं प्रयान्ति पितरोऽर्चिताः ।८।
वासवाजैकपादर्क्षे पितृणां तृप्तिमिच्छताम् ।
वारुणे वाप्यमावास्या देवानामपि दुर्लभा ।९।
नवस्वृक्षेष्वमावास्या यदैतेष्ववनीपते ।
तदा हि तृप्तिदं श्राद्धं पितृणां शृणु चापरम् ।१०।
गीतं सनत्कुमारेण यथैलाय महात्मने ।
पृच्छते पितृभक्ताय प्रश्रमावनताय च ११।
वैशाखमासस्य च या तृतीता नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।
नभस्यमासस्य च कृष्णपक्षे त्रयादशी पञ्चदशी च माघे१२।
एता युगाद्याः कथिताः पुराणेष्वनतपुण्यास्तिथयश्चतस्रः ।
उपप्लवे चन्द्रमसा रवेश्च त्रिष्वष्टकास्वप्ययनद्वये च ।१३।
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्र दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्य ।
श्राद्धं कृतं तेन समासहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ।१४।

जिस अमावस में पुष्य, आर्द्रा या पुनर्वसु नक्षत्र का योग हो उसमें पूजित हुए पितर बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं । परन्तु धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपदा या शतभिषा नक्षत्र वाली अमावस पितरों को तृप्त करने वालों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है ९। जब अमावस इन नौ नक्षत्रों के योग से सम्पन्न होती है तब जो श्राद्ध किया जाता है वह पितरों के लिये अत्यंत तृप्ति देने वाला होता है । इन तिथियों के अतिरिक्त भी जो तिथियाँ पितृभक्त इला-पुत्र पुरुरवा के पूछने पर श्री सनत्कुमारजी ने बताईं थीं, उनके विषय में भी

सुनो ।१०-११। श्री सनत्कुमारजी ने कहा–वैशाख शुक्ल पक्ष की तीज कार्तिक शुक्ला नौमी, भादों कृष्ण तेरस और माघ मास की अमावस— यह चार तिथियाँ पुराणों में 'युगाद्या' कही गयी हैं, यह अनन्त पुण्य-फल के देने वाली हैं। चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण के समय, तीन अष्टकाओं में, उत्तरायण के या दक्षिणायन के आरम्भ में जो पुरुष पितरों के निमित्त एकाग्र चित्त से तिलोदक देता है, वह उन्हें एक हजार वर्ष के लिये तृप्त कर देता है–इस परम रहस्य को स्वयं पितरों ने ही कहा है।१२-१४।

माघेऽसिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन ।
ऋक्षेण कालस्स परः पितृणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ ।
काले घनिष्ठा यदि नाम तस्मिन्भवेत्त भूपाल तदा पितृभ्यः ।
दत्तं जलान्नं प्रददाति तृप्तिं वर्षायुतं तत्कुलजैर्मनुष्यैः ।१६।
तत्रैव चेद्भाद्रपदा नु पूर्वा काले यथावत्क्रियते पितृभ्यः ।
श्राद्धं परां तृप्तिमुपेत्य तेन युगं सहस्रं पितरस्स्वपन्ति ।१७।
गङ्गां शतद्रूं यमुनां विपाशां सरस्वतीं नैमिषगोमतीं वा ।
तत्रावगाह्यार्चनमादरेण कृत्वा पितृणां दुरितानि हन्ति ।१८।
गायन्ति चैतत्पितरः कदानु वर्षामघातृप्तिमवाप्य भूयः ।
माघासितान्ते शुभतीर्थतोयैर्यास्याम तृप्तिं तनयादिदत्तैः ।१९।
वित्तं च वित्तं च नृणां विशुद्धं शस्तश्च कालः कथितो विधिश्च।
पात्रं यथोक्तं परमा च भक्तिर्नृणां प्रयच्छन्त्यभिवाञ्छितानि २०।

यदि कभी शतभिषा नक्षत्र माघी अमावस के दिन हो तो उस दिन किया जाने वाला श्राद्ध पितरों की तृप्ति के लिये परमोत्कृष्ट काल वाला कहा है। जो अल्प पुण्य वाले पुरुष हैं, उनको ऐसा सुयोग प्राप्त नहीं होता।१५। यदि उस माघ की अमावस में घनिष्ठा नक्षत्र का योग हो जाय, तो अपने ही वंशोत्पन्न पुरुष द्वारा दिये गये अन्न-जल से पितरगण दस हजार वर्ष तक को तृप्त रहते हैं।१६। यदि उस अमावस के साथ पूर्व भद्रापद का योग हो जाय तब श्राद्ध करने से पितरों को परम तृप्ति-लाभ होता है और वे एक हजार युग तक सोते रहते हैं।१७। गंगा

शतद्रू, यमुना, विपाशा, सरस्वती और नैमिषारण्य में स्थित गोमती में स्नान करके पितरों का आदर सहित पूजन करे तो मनुष्य उनके सभी पापों का नाश कर देता है।१८। पितरगण सदा ही गाते रहते हैं कि वर्षाकाल के मघा नक्षत्र में तृप्त होकर फिर माघ की अमावस के दिन अपने वंशजों की पुण्यतीर्थों वाली जलाञ्जलि से हम कब तृप्त होंगे ? ।१९। चित्त की शुद्धि, पवित्र धन, प्रशस्तकाल, उपरोक्त विधि, योग्य पात्र और परम भक्ति--यह सभी, मनुष्य को वांछित फल प्रदान करने वाले हैं।२०।

पितृगीतान्तथैवात्र स्लोकांस्ताञ्छृणु पार्थिव ।
श्रुत्वा तथैव भवता भाव्यं तत्रादृतात्मना ।२१।

अपि धन्यः कुले जायादस्माकं मतिमान्नरः ।
अकुर्वन्वित्तशाठ्यं यः पिण्डान्नो निर्वपिष्यति ।२२।

रत्नं वस्त्र महायानं सर्वभोगादिकं वसु ।
त्रिभवे सति विप्रेभ्यो योऽस्मानुद्दिश्य दास्यति ।२३।

अन्नेन वा यथाशक्त्या कालेऽस्मिन्भक्तिनम्रधीः ।
भोजयिष्यति विप्राग्र्यांस्तन्मात्रविभवो नरः ।२४।

असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यमामं स्वशक्तितः ।
प्रदास्यति द्विजाग्र्येभ्यः स्वल्पां वापि दक्षिणाम् ।२५।

तत्राप्यसामर्थ्ययुतः कराग्राग्रस्थितांस्तिलान् ।
प्रणम्य द्विजमुख्याय कस्मैचिद्भूप दास्यति ।२६।

तिलैस्सप्ताष्टभिर्वापि समवेतं जलाञ्जलिम् ।
भक्तिनम्रस्समुद्दिश्य भुव्यस्माकं प्रदास्यति ।२७।

यतः कुतश्चित्सम्प्राप्य गोभ्यो वापि गवाह्निकम् ।
अभावे प्रीणयन्नस्माञ्छ्रद्धायुक्तः प्रदास्यति ।२८।

सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः ।
सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैर्वदिष्यति ।२९।

न मेऽस्ति वित्तं न धनं च नान्यच्छ्राद्धोपयोग्यंस्वपितृन्नतोऽस्मि ।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य ।३०।

इत्येतत्पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम् ।
यः करोति कृत तेन श्राद्धं भवति पार्थिव ।३१।

हे राजन् ! अब तुम पितरों द्वारा गाये हुए कुछ श्लोकों को सुनो, जिन्हें सुन लेने पर वैसा ही आचरण करना उचित है ।२१। क्या हमारे वंश में कोई ऐसा बुद्धिमान और धन्य पुरुष होगा जो धन-लोलुपता को त्याग कर हमारे निमित्त पिण्ड देगा ।२२। जो धन होने पर हमारे लिये ब्राह्मणों को रत्न, वस्त्र, महायान या सर्वभोग सामिग्री प्रदान करेगा ।२३। या यदि केवल अन्न वस्त्र वाला होने पर श्राद्ध के समय विनम्रता पूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणों को हमारे निमित्त अन्न का ही भोजन करायेगा ।२४। अथवा अन्न देने में भी समर्थ न होने पर ब्राह्मणों को कच्चा धान्य और स्वल्प दक्षिणा ही दे सकेगा २५। कदाचित् ऐसा भी करने योग्य न होगा तो किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को एक मुट्ठी तिल ही प्रदान करेगा ।१६। यदि इसमें भी असमर्थ हो तो हमारे निमित्त भक्ति भाव से झुकते हुए केवल सात-आठ तिलों के सहित जलाञ्जलि ही देगा ।२७। यदि ऐसा भी न करे सके तो कहीं से चारा लाकर श्रद्धा और प्रेम के सहित गौ को भक्षण करायेगा ।२८। यदि इनका मिलना भी सम्भव न हो तो वन में जाकर अपनी बगल को दिखाता हुआ सूर्यादि लोकपालों से उच्चस्वर में ऐसा कहेगा कि श्राद्ध-कर्म के योग्य मेरे पास न वित्त है, न धन है, न कोई अन्य सामिग्री ही है, इसलिये मैं अपने पितरों को नमस्कार करता हूँ वे मेरी भक्ति से तृप्त हो जाँय । मैंने अपनी दोनों भुजाएँ आकाश की ओर ऊँची कर रखी हैं ।३०। और्व ने कहा—हे पार्थिव ! धन के होने या उसके अभाव में पितरों ने जो बताया है, उसके अनुकूल आचरण करने पर भी विधि-वत् श्राद्ध हो ही जाता है ।३१।

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्राह्मणान्भोजयेच्छ्राद्धे यद्गुणांस्तान्निबोध मे ।
त्रिणाचिकेतस्त्रि मधुस्त्रिसुपर्णःषडङ्गवित् ।१।
वेदविच्छ्रोत्रियो योगी तथा वै ज्येष्ठसामगः ।
ऋत्विक्स्वस्रेयदौहित्रजामातृश्वशुरास्तथा ।२।
मातुलोऽय तपोनिष्ठः पञ्चाग्न्यभिरतस्तथा ।

मातुलोऽथ तपोनिष्ठः पञ्चाग्न्यभिरतस्तथा ।
शिष्यास्सम्बन्धिनश्चैव मातापितृरतश्च यः ।३।
एतान्नियोजयेच्छ्राद्धे पूर्वोक्तान्प्रथमे नृप ।
ब्राह्मणान्पितृतुष्ट्यर्थमनुकल्पेष्वनन्तरान् ।४।
मित्रध्रुक्कुनखी क्लीबश्श्यावदन्तस्तथा द्विजः ।
कन्यादूषयिता वह्निवेदोज्झस्सोमविक्रयी ।५।
अभिशस्तस्तथा स्तेनः पिशुनो ग्रामयाजकः ।
भृतकाध्यापकस्तद्वद्भृतकाध्यापितश्च यः ।६।
परपूर्वापतिश्चैव मातापित्रोस्तथोज्झकः ।
वृषलीसूतिपोष्टा च वृषलीपतिरेव च ।७।
तथा देवलकश्चैव श्राद्धे नार्हति केतनम् ।८।

और्व ने कहा—हे राजन् ! श्राद्ध के समय जैसे-जैसे गुण वाले ब्राह्मणों को भोजन कराना उचित है, उसे कहता हूँ, सुनो । त्रिणाचिकेत, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, षडाङ्गविद, वेदवेत्ता, श्रोत्रिय, योगी, ज्येष्ठ-सामग, ऋत्विक्, भानजा, दौहित्र, जामातृ, श्वसुर, मामा, तपस्वी, पंचाग्नि-निष्ठ, शिष्य, सम्बन्धी तथा माता-पिता के प्रियजन—इन ब्राह्मणों को श्राद्ध में निमन्त्रित करे । इनमें से पहिले कहे हुओं को पूर्व कर्म में और पीछे कहे हुओं को पितरों की तृप्ति वाले कर्म में नियुक्त कर भोजन करावे ।१—४। मित्रघाती, विकृतनखी, पुंसत्वहीन, मलीन दाँत वाला, कन्यागामी, अग्नि और वेद से हीन सोम-विक्रेता लोकनिन्दित, चोर, पिशुन कर्म वाला, ग्राम पुरोहित, वेतन-भोगी अध्यापक, पुनर्विवाहिता का पति, माता-पिता को त्याग देने वाला, शूद्र की सन्तान का पालक, शूद्रा का पति और देवताओं से जीविका चलाने वाला ब्राह्मण श्राद्ध में बुलाने को अयोग्य है ५—८।

प्रथमेऽह्नि बुधश्शस्ताञ्छ्रोत्रियादीन्निमन्त्रयेत् ।
कथयेच्च तथैवैषां नियोगान्पितृदैविकान् ।९।
ततः क्रोधव्यवायादीनायासं तैर्द्विजैस्सह ।
यजमानो न कुर्वीत दोषस्तत्र महानयम् ।१०।

श्राद्धे नियुक्तो भुक्त्वा वा भोजयित्वा नियुज्य च ।
व्यवायी रेतसो गर्ते मज्जयत्यात्मनः पितॄन् ।११।
तस्मात्प्रथममत्रोक्तं द्विजाग्र्याणां निमंत्रणम् ।
अभिमन्त्र्य द्विजानेवमागतान्भोजयेद्यतीन् ।१२।
पादशौचादिना गेहमागतान्पूजयेद् द्विजान् ।
पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ।१३।
पितॄणामयुजो युग्मान्देवानामिच्छया द्विजान् ।
देवानामेकमेकं वा पितॄणां च नियोजयेत् ।१४।

श्राद्ध से पहिले दिन ही श्रोत्रिय आदि ब्राह्मणों को निमंत्रित कर के उन्हें बता दे कि आपको पितृ-श्राद्ध में और आपको विश्वेदेव-श्राद्ध में नियुक्त करना है ।९। श्राद्ध करने वाला पुरुष और वे निमन्त्रित ब्राह्मण भी उस दिन क्रोधादि, नारी-संग या परिश्रम का कोई कार्य न करें, क्यों कि श्राद्ध कर्म में इसका अत्यन्त दोष कहा है ।१०। श्राद्ध में निमन्त्रित होकर अथवा भोजन करके या श्राद्ध निमन्त्रण देकर या भोजन कराकर जो नारी-संग करता है, वह अपने पितरों को ही वीर्य-कुण्डी में डुबाता है ।११। इसलिये श्राद्ध के पहिले दिन यत्न पूर्वक उपरोक्त विशिष्ट गुण सम्पन्न ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे और श्राद्ध के दिन यदि कोई अनिमंत्रित सद्ब्राह्मण घर पर आ जांय, तो उन्हें भी भोजन करा दे ।१२। पहिले उन ब्राह्मणों के चरण धोवे, फिर हाथ धोकर आचमन कराने के बाद उन्हें आसन प्रदान करे ।१३। अपने सामर्थ्य के अनुसार पितरों के लिये अयुग्म (पांच, सात, नौ आदि) तथा देवताओं के लिये युग्म (दो चार, छः आदि) ब्राह्मण बुलावे अथवा दोनों के लिये एक-एक ब्राह्मण ही नियुक्त करे ।१४।

तथा मातामहश्राद्धं वैश्वदेवसमन्वितम् ।
कुर्वीत भक्तिसम्पन्नस्तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ।१५।
प्राङ् मुखान्भोजयेद्विप्रान्देवानामुभयात्मकान् ।
पितृमातामहानां च भोजयेच्चाप्युदङ्मुखान् ।१६।

पृथक्तयोः केचिदाहुः श्राद्धस्य करणं नृप ।
एवत्रैकेन पाकेन वदन्त्यन्ये महर्षयः ।१७।
विष्टरार्थं कुशं दत्त्वा सम्पूज्यार्घ्यं विधानतः ।
कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां तदनुज्ञया ।१८।
यवाम्बुना च देवानां दद्यादर्घ्यं विधानवित् ।
स्रग्गन्धधूपदीपांश्च तेभ्यो दद्याद्यथाविधि ।१९।
पितॄणामपसव्यं तत्सर्वमेवोपकल्पयेत् ।
अनुज्ञां च ततः प्राप्य दत्त्वा दर्भान्द्विधाकृतान् ।२०।
मन्त्रपूर्वं पितॄणां तु कुर्याच्चावाहनं बुधः ।
तिलाम्बुना चाप्यसव्यं दद्यादर्घ्यादिक नृप ।२१।

इसी प्रकार वैश्वदेव के सहित मातामह (नाना) का श्राद्ध करना चाहिये । अथवा पितृ-पक्ष और मातामह पक्ष दोनों के निमित्त एक श्राद्ध ही कर सकता है ।१५। देवपक्ष के ब्राह्मणों को पूर्व की ओर मुख करके बैठावे और पितृ तथा मातामह पक्ष के ब्राह्मणों के उत्तराभिमुख बैठाकर भोजन करावे ।१६। हे राजन् ! कोई महर्षि तो पितृ-पक्ष और मातामह पक्ष के श्राद्धों को पृथक्-पृथक् करने का विधान करते हैं और किसी ने एक साथ तथा एक ही पाक में करना ठीक बताया है ।१७। पहिले आमन्त्रित ब्राह्मणों के लिये कुशा बिछाकर फिर उनका अर्घ्यदानादि से पूजन करे और उनकी अनुमति प्राप्त करके देवताओं का आवाहन करे ।१८। फिर श्राद्ध विधि का ज्ञाता पुरुष जौ मिले हुए जल से देवताओं को अर्घ्य दे और फिर धूप, दीप, गन्ध और पुष्पमालादि समर्पित करे ।१९। पितरों के निमित्त किये जाने वाले सब उपचार अपसव्य-भाव (दांये, कन्धे पर जनेऊ करके) से करने चाहिये । फिर ब्राह्मणों की अनुमति प्राप्त कर दो भागों में विभक्त कुशों का दान कर मन्त्रोच्चारण पूर्वक पितरों का आवाहन करे और अपसव्य रहकर ही तिलोदक से अर्घ्यादि प्रदान करे ।२०—२१।

काले तत्रातिथिं प्राप्तमन्नकामं नृपाध्वगम् ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः कामं तमपि भोजयेत् ।२२।

योगिनो विविधै रूपैर्नराणामुपकारिणः ।
भ्रमन्ति पृथिवीमेतामविज्ञातस्वरूपिणः ।२३।
तस्मादभ्यर्चयेत्प्राप्तं श्राद्धकालेऽतिथि बुधः ।
श्राद्धक्रियाफलं हन्ति नरेन्द्रापूजितोऽतिथिः ।२४।
जुहुयाद्वयञ्जनक्षारवर्जमन्नं ततोऽनले ।
अनुज्ञातो द्विजैस्तैस्तु त्रिकृत्वः पुरुषर्षभ ।२५।
अग्नये कव्यवाहाय स्वाहेत्यादौ नृपाहुतिः ।
सोमाय वै पितृमते दातव्या तदनन्तरम् ॥२६॥
वैवस्ताया चैवान्य तृतीया दीयते ततः ।
हुतावशिष्टमल्पान्नं विप्रपात्रेषु निर्वपेत् ।२७।

हे राजन् ! यदि उस काल कोई क्षुधार्त मार्ग चलता हुआ व्यक्ति अतिथि रूप से आ पहुंचे तो ब्राह्मणों की अनुमति लेकर उसे भी भोजन कराना चाहिए ।२२। क्योंकि बहुत से अज्ञात योगिगण जन-कल्याण की भावना से विविध रूप में भूतल पर विचरण करते रहते हैं ।१३। इसलिए विद्वान मनुष्य को श्राद्ध काल में अपने घर पर आये हुए अतिथि का अवश्य पूजन करना चाहिए । वैसा न करने से यह विमुख हुआ अतिथि समस्त श्राद्ध क्रिया को विफल कर देता है -२४। हे राजन् ! फिर उन ब्राह्मणों की आज्ञा से नमक हीन तथा शाक-रहित अन्न से अग्नि में तीन आहुतियां प्रदान करे ।२५। उनमें से 'अग्नये कव्यवाहाय स्वाहा' कहकर प्रथम, 'सोमाय पितृमते स्वाहा' कहकर द्वितीय और 'वैवस्वताय स्वाहा' कहकर तीसरी आहुति देनी चाहिए । फिर हुतावशिष्ट अन्न में से थोड़ा-थोड़ा सब ब्राह्मणों के पात्रों में परोसे ।२६-२७।

ततोऽन्नं मृष्टमत्यर्थमभीष्टमतिसंस्कृतम् ।
दत्वा जुषध्वमिच्छातो वाच्यमेतदनिष्ठुरम् ।२८।
भोक्तव्य तैश्च तच्चित्तै मौनिमिस्सुमुखैः सुखम् ।
अक्रुद्धयता चात्वरता देयं तेनापि भक्तितः ।२९।
रक्षोघ्नमंत्रपठनं भूमेरास्तरणं तिलैः
कृत्वा ध्येयास्स्वपितरस्त एव द्विजसत्तमाः ।३०।

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
मम तृप्तिं प्रयान्त्वद्य विप्रदेहेषु संस्थिताः ।३१।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
मम तृप्तिं प्रयान्त्वद्य होमाप्यायितमूर्तयः ।३२।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
तृप्तिं प्रयान्तु पिण्डेन मया दत्तेन भूतले ।३३।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
तृप्तिं प्रयान्तु मेभिक्त्या मयैतत्समुदाहृतम् ।३४।
मातामहस्तृप्तिमपैतु तस्य तथा पिता तस्य पिता ततोऽन्यः
विश्वे च देवाः परमां प्रयांतु तृप्तिं प्रणश्यतु च यातुधानाः ।३५।
यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्यभोक्ताव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र ।
तत्सन्निधानादपयांतु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ।३६।

फिर भले प्रकार सिद्ध किये हुए मधुर अन्न को इच्छानुसार सब ब्राह्मणों को परोस कर अत्यन्त मीठी वाणी से भोजन करने को कहे २८। ब्राह्मण भी उस भोजन को मन लगाकर मौन धारण पूर्वक सुख से भोजन करें तथा यजमान भी क्रोध और शीघ्रता को त्याग कर भक्ति सहित उन के भोजन करते में परोसता रहे ।२९। फिर रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ करके श्राद्ध के स्थान पर तिल छिड़के और उन ब्राह्मणों का पितृ रूप से इस प्रकार ध्यान करे ।३०। इन ब्राह्मणों के देहों में प्रतिष्ठित हुए और मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आदि तृप्ति को प्राप्त हों ।३१। होम के द्वारा मेरे पितामह और प्रपितामह बलवान होते हुए तृप्ति को प्राप्त हों ।३२। पृथिवी पर मैंने जो पिण्ड दिये हैं, उससे मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्त हों ।३३। मैंने भक्तिभाव से इस समय जो कुछ निवेदन किया है, उसी के द्वारा मेरे पिता, पितामह तृप्त हों ३४। मेरे नाना, नाना के पिता और उनके भी पिता तथा विश्वे-देवगण परम तृप्ति को प्राप्त हों तथा सभी राक्षस नष्ट हो जांय ।३५। समस्त हव्य कव्य के भोक्ता यज्ञेश्वर अव्यात्मा श्री हरियहाँ विराजमान हैं, इसलिये उनकी सन्निधि से सभी राक्षसगण और असुरगण यहाँ सेइसो समय पलायन करें ।३६।

तृप्तेष्वेषु विकिरेदन्नं विप्रेषु भूतले ।
दद्यादाचमनार्थाय तेभ्यो वारि सकृत्सकृत् ।३७।
सुतृप्तैस्तैरनुज्ञातस्सर्वेणान्नेन भूतले ।
सतिलेन ततः पिण्डान्सम्यग्दद्यात्समाहितः ।३८।
पितृतीर्थेनसतिलेन तथैव सलिलाञ्जलिम् ।
मातामहेभ्यस्तेनैव पिण्डांस्तीर्थेन निर्वपेत् ।।३९।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु पुष्पधूपादिपूजितम् ।
स्वपित्रे प्रथमं पिण्डं दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ।।४०।
पितामहाय चैवान्यं तत्पित्रे च तथापरम् ।
दर्भमूले लेपभुजः प्रीणयेल्लेपघर्षणैः ।४१।
पिण्डैर्मातामहांस्तद्वद्गन्धमाल्यादिसंयुतैः ।
पूजयित्वा द्विजाग्र्याणां दद्याच्चाचमनं ततः ।।४२।।
पितृभ्यः प्रथमं भक्त्या तन्मनस्को नरेश्वर ।
सुस्वधेत्याशिषा युक्तां दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ।४३।
दत्वा च दक्षिणां तेभ्यो वाचयेद्वैश्वदेविकान् ।
प्रीयन्तामिह ये विश्वेदेवास्तेन इतीरयेत् ।४४।
तथेति चोक्ते तैर्विप्रैः प्रार्थनीयास्तथाशिषः ।
पश्चाद्विसर्जयेद्देवान्पूर्वं पित्र्यान्महीपते ।४५।

फिर जब ब्राह्मण भोजन कर लें तब थोड़ा-सा अन्न लेकर पृथ्वी पर डाले और आचमन के लिये उन्हें और एक बार जल दे ३८। तदनन्तर अच्छी प्रकार से सन्तुष्ट हुए उन ब्राह्मणों की अनुमति से पृथिवी पर अन्न और तिल के पिण्ड दे।३८। फिरपितृतीर्थ से तिलोदक की जलाञ्जलि दे। नाना आदि के निमित्त भी उसी पितृतीर्थ से पिण्डदान आदि करना चाहिए ।३९। ब्राह्मणों की जूठन के पास ही दक्षिण दिशा की ओर अग्र भाग करके जो कुश बिछाये हों, उन पर प्रथम अपने पिता के निमित्त पुष्प-धूपादि से अर्चित पिण्ड दे ।४०। फिर एक पिण्ड पितामह के निमित्त और पश्चात् एक पिण्ड प्रपितामह के लिये दान करे। फिर कुश-मूल में लगे अन्न को पोंछ कर लेपभोजी पितरों की तृप्ति करे ।४१। इसी

प्रकार गन्ध पुष्पमाल आदि से पूजित पिण्डों से नाना आदि को तृप्त करें और ब्राह्मणों को आचमन करावे ।४२। फिर भक्तिभाव पूर्वक खड़े हो कर प्रथम पितृपक्ष के ब्राह्मणों से 'सुस्वधा' कहलाता हुआ आशीर्वाद प्राप्त करे और शक्ति भर दक्षिणा दे ।४३। विश्वेदेव पक्ष के ब्राह्मणों के पास जाकर उन्हें दक्षिणा दे और निवेदन करे कि विश्वदेवता प्रसन्न हों ।४४। जब वे ब्राह्मण 'ऐसा ही हो' कहें तब उनसे आशीर्वाद मांगे और पितृ-पक्ष के ब्राह्मणों को पहिले और देवपक्ष के ब्राह्मणों को उनके पश्चात् विदा करे ।४५।

मातामहानामप्येवं सह देवैः क्रमः स्मृतः ।
भोजने च स्वशक्त्या च दाने तद्वद्विसर्जने ।४६।
आपादशौचनात्पूर्वं कुर्याद्देवद्विजन्मसु ।
विसर्जनं तु प्रथमं पैत्रमातामहेषु वै ।४७।
विसर्जयेत्प्रीतिवचस्सम्मान्याभ्यर्थितांसततः ।
निवर्तेताभ्यनुज्ञात आद्वारंताननुव्रजेत् ।४८।
ततस्तु वैश्वदेवाख्यं कुर्यान्नित्यक्रियां बुधः ।
भुञ्जाच्चैव समं पूज्यभृत्यबन्धुभिरात्मनः ।४९।
एवं श्राद्धं बुधः कुर्यात्पित्र्यं मातामहं तथा ।
श्राद्धैराप्यायिता दद्युस्सर्वान्कामान्पितामहाः ।५०।
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ।
रजतस्य कथा दानं तथासङ्कीर्तनादिकम् ।५१।
वर्ज्यानि कुर्वता श्राद्धं क्रोधोऽध्वगमनं त्वरा ।
भोक्तुरप्यत्र राजेन्द्र त्रयमेतन्न शस्यते ।५२।
विश्वेदेवास्सपितरस्तथा मातामहा नृप ।
कुलं चाप्यायते पुंसा सर्वं श्राद्धं प्रकुर्वताम् ।५३।
सोमाधारः पितृगणो योगाधारश्च चन्द्रमाः ।
श्राद्धे योगिनियोगस्तु तस्माद्भूपाल शस्यते ।।५४।।
सहस्रस्यापि विप्राणां योगी चेत्पुरतः स्थितः ।
सर्वान्भोक्तृंस्तारयति यजमानं तथा नृप ।५५।

विश्वेदेवताओं के सहित नाना आदि के श्राद्ध में भी ब्राह्मण-भोजन, दान, विसर्जनादि का यही क्रम कहा गया है ।४६। पितृपक्ष तथा नानापक्ष–दोनों प्रकार के श्राद्धों में पग प्रक्षालनादि सभी कर्म प्रथम देव-पक्षीय ब्राह्मणों के करे । परन्तु पितृपक्षीय या नानापक्षीय ब्राह्मणों को पहिले विदा करे ।४७। प्रीतिमय वचनों सहित सम्मान करते हुये उन ब्राह्मणों को विदा करे तथा उनके पीछे-पीछे द्वार तक जाकर उनकी आज्ञा होने पर घर में लौट आवे ।४८। इसके पश्चात् वैश्वदेव नामक नित्य कर्म करके अपने पूजनीय व्यक्तियों, बन्धुजनों और भृत्यगणों के सहित भोजन करे ।४९। इस प्रकार बुद्धिमान पुरुष को पितृश्राद्ध और मातामह श्राद्ध का अनुष्ठान करना चाहिये । श्राद्ध से तृप्त हुए पितृगण सभी अभिलाषाओं के पूर्ण करने वाले हैं ।५०। श्राद्ध के समय पुत्री का पुत्र, दिन का आठवाँ मुहूर्त्त, तिल, चाँदी का दान तथा उसकी बात कहना–यह सब पवित्र समझे जाते हैं ।५१। श्राद्ध करने वाले को क्रोध करना, कहीं जाना और श्राद्ध कर्म में उतावलापन करना वर्जित माना गया है और श्राद्ध में भोजन करने वालों को भी उक्त तीनों बातें निषिद्ध हैं ।५२। हे नृप ! श्राद्धकर्त्ता पुरुष से विश्वेदेवगण, पितरगण, नाना और कुटुम्बीजन सभी प्रसन्न रहते हैं ।५३। पितरों का आधार चन्द्रमा का आधार योग है, इसलिये श्राद्ध में योगियों का नियुक्त किया जाना अत्यंत श्रेष्ठ है ।५४। हे नृप ! श्राद्ध में भोजन करने वाले एक हजार ब्राह्मणों के सामने यदि एक योगी हो, तो वह एक ही योगी यजमान के सहित उन सबका उद्धार करने में समर्थ है ।५५।

—:❀:—

सोलहवाँ अध्याय

हविष्यमत्स्यमांसैस्तु शशस्य नकुलस्य च ।
सौकरच्छागलैणेयरौरवैर्गवयेन च ।।१।।
औरभ्रगव्यैश्च तथा मासवृद्धया पितामहाः ।
प्रयान्ति तृप्तिं मांसैस्तु नित्यं वार्ध्रीणसामिषैः ।।२।।

खड्गमांसमतीवात्र कालशाकं तथा मधु।
शस्तानि कर्मण्यत्यन्ततृप्तिदानि नरेश्वर।
गयामुपेत्य यः श्राद्धं करोति पृथिवीपते।
सफलं तस्य तज्जन्म जायते पितृतुष्टिदम्।
प्रशान्तिकास्सनीवाराश्श्यामाका द्विविधास्तथा।
वन्यौषधीप्रधानास्तु श्राद्धार्हाः पुरुषर्षभ।५।
यवाः प्रियङ्गवो मुद्गा गोधूमा व्रीहयस्तिलाः।
निष्पावाः कोविदाराश्च सर्षपाश्चात्र शोभनाः।६।

श्रौर्व ने कहा—हविष्यादि का भोजन करने से पितरों की एक मास तक तृप्ति रहती है। श्राद्ध कर्म में काल शाक और मधु आदि अत्यंत प्रशस्त तथा अधिकाधिक तृप्ति के देने वाले हैं।१—३।

हे राजन्! गया में जाकर श्राद्ध करने से मनुष्य का पितरों को तृप्त करने वाला वह जीवन सफल होता है।४। देवधान्य, नीवार तथा सफेद या काले रङ्ग के समा और प्रमुख-प्रमुख वनौषधि श्राद्ध के लिए उपयुक्त मानी गई हैं।५। जौ, प्रियंगु, मूँग, गेहूँ, धान, तिल, मटर, कचनार तथा सरसों को श्राद्ध में श्रेष्ठ माना गया है।६।

अकृताग्रयणं यच्च धान्यजातं नरेश्वरः।
राजमाषानणूंश्चैव मसूरांश्च विसर्जयेत्।७।
अलाबुं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम्।
गान्धारककरम्बादिलवणान्यौषराणि च।८।
आरक्ताश्चैव निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च।
वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते।।९।
नक्ताहृतमनुच्छिन्नं तृप्यते न च यत्र गौः।
दुर्गन्धि फेनिलं चाम्बु श्राद्धयोग्य न पार्थिव।१०।
क्षीरमेकशफानां यदौष्ट्रमाविकमेव च।
मार्गं च माहिषं चैव वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि।११।

षण्ढापविद्धचाण्डालपापिपाषण्डरोगिभिः ।
कृकवाकुश्वनग्नैश्च वानरग्रामसूकरैः ।१२।
उदक्यासूतकाशौचिमृतहारैश्च वीक्षिते ।
श्राद्धे सुरा न पितरो भुञ्जते पुरुषर्षभ ।१३।

जिससे नवान्न यज्ञ न हुआ हो वह अन्न, बड़े छोटे उरद, मसूर, काशीफल, गाजर, प्याज, शलजम, शालि, धान्य का आटा, ऊसर भूमि में उत्पन्न नमक, हींग आदि वस्तुएँ तथा वे अन्य पदार्थ जिनका शास्त्रों में विधान नहीं है, सब श्राद्ध में वर्जित है ।७ ६। हे राजन् ! रात्रि काल में लाया हुआ जल, क्षुद्र जलाशय का अथवा जिसमें गौ भी तृप्त न हो सकती हों ऐसे गढ़े का जल या फेन और दुर्गन्धमय जल श्राद्ध में त्याज्य है ।१०। एक खुर वाले पशु का, भेड़, ऊँटनी या मुर्गी का तथा भैंस का दूध भी श्राद्ध में उपयुक्त नहीं से ।११। हे पुरुष श्रेष्ठ ! नपुंसक, समाज-बहिष्कृत, चाण्डाल, पातकी, पाखंडी, रोगी, कुक्कुट, कुत्ता, बन्दर, ग्राम्य शूकर, नग्न पुरुष, रजस्वला, स्त्री, जन्म मरण के सूतक या अशौच वाले मनुष्य तथा शव उठाने वाले पुरुष—इनमें से किसी की दृष्टि पड़ जाय तो देवता या पितर कोई भी अपना भाग श्राद्ध में ग्रहण नहीं करते १२-१३।

तस्मात्परिश्रिते कुर्याच्छ्राद्धं श्रद्धासमन्वितः ।
उर्व्यां च तिलविक्षेपाद्यातुधानान्निवारयेत् ।१४।
नखादिना चोपपन्नं केशकीटादिभिर्नृप ।
न चैवाभिषवैर्मिश्रमन्नं पर्युषित तथा ।१५।
श्रद्धासमन्वितैर्दत्तं पितृभ्यो नामगोत्रतः ।
यदाहारास्तु ते जातास्तदाहारत्वमेति तत् ।।१६।।
श्रूयते चापि पितृभिर्गीता गाथा महीपते ।
इक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्य कलापोपवने पुरा ।१७।
अपि नस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मार्गशीलिनः ।
गयामुपेत्य ये पिण्डान्दास्यन्त्यस्माकमादरात् ।१८।

अपि नस्स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।
पायसं मधुसर्पिस्र्यां वेर्षासु च मघासु च ।१९।
गौरीं वाप्युद्वहेत्कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।
यजेत वाश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणावता ।२०।

इसलिये किसी घिरे हुएस्थान में (घर आदि मे) श्रद्धा सहित श्राद्ध करना चाहिये । राक्षसों की निवृत्ति के लिये पृथिवी में तिल छिड़के १४। जिस अन्न में नख, केश, या कीटादि पड़े हों अथवा जो निचोड़ कर निकाले हुए रस से युक्त या बासी हो, वह अन्न श्राद्ध में वर्जित है ।१५। श्राद्धपूर्वक तथा नाम-गोत्र का उच्चारण करते हुए दिया जाने वाला अन्न पितरो के योग्य होकर उन्हें प्राप्त होता है ।१६। इस विषय में सुना जाता है कि पूर्वकाल मे पितरों ने मनुपुत्र राजा इक्ष्वाकु के प्रति कहा था ।१७। क्या हमारे वंश में सन्मार्ग पर चलने वाले ऐसे पुरुष होंगे जो गया में जाकर हमारे निमित्त पिण्ड देंगे ।१८। क्या हमारे कुल में कोई ऐसा भी होगा जो मघानक्षत्र वाली वर्षाकालीन त्रयोदशी को हमारे निमित्त मधु और घृत से युक्त खीर प्रदान करेगा ? ।१९। या गौरी कन्या का दान करेगा (अर्थात् दस वर्ष की आयु में ही उसका विवाह कर देगा) नीला साँड़ छोड़ेगा अथवा विधिपूर्वक दक्षिणा वाले अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करेगा ? ।२०।

—:❀❀:—

सत्रहवाँ अध्याय

इत्याह भगवानौर्वस्सगराय महात्मने ।
सदाचारं पुरा सम्यङ् मैत्रेय परिपृच्छते ।१।
मयाप्येतदशेषेण कथितं भवतो द्विज ।
समुल्लङ्घ्य सदाचारं कश्चिन्नाप्नोति शोभनम् ।२।
षण्ढापविद्धप्रमुखा विदिता भगवन्मया ।
उदक्याद्याश्च मे सम्यङ् नग्नमिच्छामि वेदितुम् ।३।

को नग्नः किं समाचारो नग्नसंज्ञां नरो लभेत् ।
नग्नस्वरूपमिच्छामि यथावत्कथितं त्वया ।
श्रोतुं धर्मभृतां श्रेष्ठ न ह्यस्त्यविदितं तव ।।४।।
ऋग्यजुस्सामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृतिर्द्विज ।
एतामुज्झति यो मोहात्स नग्नः पातकी द्विज ।५।
त्रयी समस्तवर्णानां द्विज संवरणं यतः ।
नग्नो भवत्युज्झितायामतस्तस्यां न संशयः ।६।
इदं च श्रूयतामन्यद्यद्भीष्माय महात्मने ।
कथयामास धर्मज्ञो वसिष्ठोऽस्मत्पितामहः ।७।

श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेय जी ! भगवान् और्व ने महात्मा सगर के प्रश्न का उत्तर देते हुये गृहस्थ के सदाचार की इस प्रकार व्याख्या की थी ।१। हे द्विज ! मैंने भी इस विषय को तुम्हारे प्रति भले प्रकार कह दिया है । सदाचार उल्लंघन करने वाले किसी भी पुरुष को सद्गति प्राप्त नहीं हो सकती ।२। श्रीमैत्रेयजी ने कहा-हे भगवान् ! नपुंसक, बहिष्कृत तथा रजस्वलादि को तो मैं भले प्रकार समझता हूँ, परन्तु इस समय मैं 'नग्न' के विषय में जानने की इच्छा करता हूँ ।३। नग्न कौन है, कैसे आचरण वाले पुरुष को नग्न कहा है ? मैं आपसे नग्न का स्वरूप सुनना चाहता हूँ, क्योंकि आपसे कोई विषय छुपा नहीं है ।४। श्री पराशरजी ने कहा-हे द्विज ! ऋक, साम और यजुः यह वेदत्रयी वर्णों के आचरण रूप हैं । मोहवश इसे त्याग देने वाला पापी पुरुष ही 'नग्न' कहा जाता है ५। सब वर्णों का आचरण वेदत्रयी ही है, उसका त्याग कर देने पर ही पुरुष 'नग्न' संज्ञक होता है ।६। हमारे पितामह वसिष्ठजी ने महात्मा भीष्म से इस विषय में जो कहा था, उसे सुनो ।७।

मयापि तस्य गदतश्श्रुतमेतन्महात्मनः ।
नग्नसम्बन्धि मैत्रेय यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।८।
देवासुरमभूद्युद्धं दिव्यमब्दशतं पुरा ।
तस्मिन्पराजिता देवा दैत्यैर्ह्रादिपुरोगमैः ।९।

क्षीरोदस्योत्तरं कूलं गत्वातप्यन्त वै तपः ।
विष्णोराराधनार्थाय जगुश्चेमं स्तवं तदा ।१०।
आराधनाय लोकानां विष्णोरीशस्य यां गिरम् ।
वक्ष्यामो भगवानाद्यस्तया विष्णुः प्रसीदतु ।११।
यतो भूतान्यशेषाणि प्रसूतानि महात्मनः ।
यस्मिश्च लयमेष्यन्ति कस्तं स्तोतुमिहेश्वरः ।१२।
तथाप्यरातिविध्वस्तवीर्याभयार्थिनः ।
त्वां स्तोष्यामस्तवोक्तीनां याथार्थ्यंनैवगोचरे ।१३।

हे मैत्रेय जी तुमने जो नग्न विषयक प्रश्न किया है, उसी विषय में मैंने भी महात्मा वशिष्ठजी ने भीष्म से कुछ जो कहा था, वह सब सुना था ८। प्राचीनकाल की बात है—सौ दिव्य वर्षों तक देवताओं और दैत्यों में परस्पर संग्राम हुआ । उसमें ह्लाद-प्रभृति दैत्यों ने देवताओं को हरा दिया इसलिये देवताओं ने क्षीर सागर के उत्तरी तट पर जाकर तप किया और भगवान् श्रीहरि को प्रसन्न करने के लिये इस स्तोत्र को गाया ।१०। देवताओं ने कहा—लोकनायक भगवान् विष्णु की आराधना के हेतु हम जिस वाणी को कहते हैं, उससे वे आदि पुरुष भगवान् हम पर प्रसन्न हों ।११। जिनसे सब भूतों की उत्पत्ति हुई है और वे भूत उन्हीं में लीन हो जायेंगे, ऐसे उन परमात्मा की स्तुति करने की सामर्थ्य किस में है ? यद्यपि आप के यथार्थ रूप का वाणी से वर्णन नहीं हो सकता, फिर भी हम शत्रुओं द्वारा पराजित एवं पराक्रमहीन होकर विजय और पराक्रम कीप्राप्ति की स्तुति करते हैं १३।

त्वमुर्वी सलिलं वह्निर्वायुराकाशमेव च ।
समस्तमन्तः करणं प्रधान तत्परः पुमान् ।१४।
एकं तवैतद्भूतात्मन्मूर्त्तामूर्तमयं वपुः ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं स्थानकालविभेदवत् ।१५।
तत्रेश तवयत्पूर्वं त्वन्नाभिकमलोद्भवम् ।
रूपं विश्वोपकाराय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ।१६।

शक्रार्करुद्रवस्वश्विमरुत्सोमादिभेदवत् ।
वयमेकं स्वरूपं ते तस्मै देवात्मने नमः ।१७।
दम्भप्रायमसम्बोधि तितिक्षादमवर्जितम् ।
यद्रूपं तव गोविन्द तस्मै दैत्यात्मने नमः ।१८।
नातिज्ञानवहा यस्मिन्नाड्यः स्तिमिततेजसि ।
शब्दादिलोभि यत्तस्मै तुभ्यं यक्षात्मने नमः ।१९।
क्रौर्यमायामयं घोरं यच्च रूपं तवासितम् ।
निशाचरात्मने तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तम ।२०।
स्वर्गस्थधर्मिसद्धर्मफलोपकरणं तव ।
धर्माख्यं च तथा रूपं नमस्तस्मै जनार्दन ।२१।

हे प्रभो ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तःकरण, मूल-प्रकृति तथा प्रकृति से परे-यह सब आप ही हैं ।१४। ब्रह्मा से तृण पर्यन्त जीव तथा कालादि भेद वाले इन मूर्त्त और अमूर्त पदार्थों से युक्त यह प्रपंच आप ही का देह है ।१५। उसमें आपके नाभि-पद्म से जगत् के हितार्थ उत्पन्न हुआ जो आपका प्रथम स्वरूप है, उस ब्रह्मात्मा को नमस्कार है १६। इन्द्र,सूर्य,रुद्र,वसुगण,अश्विनीद्वय,मरुद्गण और चंद्रमा आदि के भेद से उत्पन्न हुए हम भी आपके ही रूप हैं, इसलिये आपके इस देव रूप को नमस्कार है १७। हे गोविन्द ! आपकी जो मूर्ति दम्भ और अज्ञान से युक्त तथा तितिक्षा और दम से परे है, उस दैत्य रूप को नमस्कार है १८। जिस मंद-सत्व रूप में हृदयस्थ नाड़ियाँ ज्ञान का अत्यन्त वहन करने वाली नहीं होतीं तथा जो शब्दादि विषयों का अभिलाषी होता है, आपके उस यक्ष रूप को नमस्कार है ।१९। हे पुरुषोत्तम ! आप का जो तमोमय स्वरूप क्रूरता और माया से सम्पन्न है, उस राक्षस रूप को नमस्कार है ।२०। हे जनार्दन ! आपका जो रूप स्वर्गवासी धार्मिकों के यज्ञादि धर्मों के फल की प्राप्ति कराने वाला है उस धर्म रूप को नमस्कार है ।२१।

हर्षप्रायमसंसर्गि गतिमद्गमनादिषु ।
सिद्धाख्यं तव यद्रूपं तस्मै सिद्धात्मने नमः ।२२।

अतितिक्षालनं क्रूरमुपभोगसहं हरे ।
द्विजिह्वं तव यद्रूपं तस्मै नागात्मने नमः ।२३।
यवबोधि च यच्छान्तमदोषमपकल्मषम् ।
ऋषिरूपात्मने तस्मै विष्णो रूपाय ते नमः ।२४।
भक्षयत्यथ कल्पान्ते भूतानि यदवारितम् ।
त्वद्रूपं पुण्डरीकाक्ष तस्मै कालात्मने नमः ।२५।
सम्भक्ष्य सर्वभूतावि देवादीन्यविशेषतः ।
नृत्यत्यन्ते च यद्रूपं तस्मं रुद्रात्मने नमः ।२६।
प्रवृत्त्या रजसो यच्च कर्मणां करणात्मकम् ।
जनार्दन नमस्तस्मै त्वद्रूपाय नरात्मने ।२७।
अष्टाविंशद्वधोपेतं यद्रूपं तामसं तव ।
उन्मार्गगामि सर्वात्मस्तस्मै वश्यात्मने नमः ।२८।

आपका जो रूप जल, अग्नि आदि गमन स्थानों को प्राप्त होकर भी सदा निर्लेप और प्रसन्न रहता है, आपके उस सिद्ध नामक स्वरूप को नमस्कार है।।२२।।आपका जो स्वरूप अक्षमा का आधार,अत्यन्त क्रूर तथा भोग में अत्यन्त समर्थ है, उस दो जीभ वाले नाग को नमस्कार है ।२३। हे विष्णो ! आपका जो रूप ज्ञान युक्त, शान्त, निर्दोष तथा कल्मष रहित है, उस मुनि को नमस्कार है ।२४। आपका जो स्वरूप कल्प के अन्त में सभी भूतों का अनिवार्य रूप से भक्षण कर लेता है, उस काल रूप को नमस्कार है ।२५। प्रलयकाल में देवादि सब प्राणियों को सामान्य रूप से से भक्षण करके नृत्य करने वाले आपके रुद्र रूप को नमस्कार है ।२६। आपका जो रूप रजोगुण की प्रवृति के कारण कर्मों का करने वाला है, उस मनुष्य रूप को नमस्कार है ।२७। हे सर्वात्मान ! जो अट्ठाइस वध युक्त तमोमय तथा उन्मार्गगामी रूप है, उस पशु रूप को नमस्कार है ।२८।

यज्ञाङ्गभूतं यद्रूपं जगतः स्थितिसाधनम् ।
वृक्षादिशेदैष्षड्वेदि तस्मै मुख्यात्मने नमः ।२९।

तिर्यङ् मनुष्यदेवादि व्योमशब्दादिकं चयत् ।
रूपं तवादेः सर्वस्य तस्मै सर्वात्मने नमः ।३०।
प्रधानबुद्ध्यादिमयादशेषाद्यदन्यदस्मात्परमं परात्मन् ।
रूपं तवाद्य यदनन्यतुल्यं तस्मै नमः कारणकारणाय ।३१।
शुक्लादिदीर्घादिघनादिहीनमगोचरं यच्च विशेषणानाम् ।
शुद्धातिशुद्धं परमर्षिदृश्यं रूपाय तस्मै भगवन्नताः स्मः ३२
यन्नः शरीरेषु यदन्यदेहेष्वशेषवस्तुष्वजमक्षयं यत् ।
तस्माच्च नान्यद्व्यतिरिक्तमस्ति ब्रह्मस्वरूपाय नताः स्म तस्मै
सकलमिदमजस्य यस्य रूपं परमपदात्मवतस्सनातनस्य ।
तमनिधनमशेषबीजभूतं प्रभुममलं प्रणतास्स्म वासुदेवम् ३४।

जो विश्व की स्थिति का साधन स्वरूप तथा यज्ञ का अंगभूत है और जो वृक्ष, लता गुल्म, वीरुध, तृण और गिरि-इन छः भेदों वाला है उस मुख्यात्मक रूप को नमस्कार है ।२९। तिर्यक्, मनुष्यक-देवतादि जीव आकाशादि भूत और शब्दादि गुण-इन सभी आदि भूत आप सर्वात्मा को नमस्कार है ।३०। हे परमात्मन् ! प्रधानादि जो सम्पूर्ण जगत् से परे आपका रूप सबका आदि कारण और अनुपम है आपके उस प्रकृति आदि के कारणों के भी कारणस्वरूप को नमस्कार है ।३१। जो शुक्ल आदि रंग से, दीर्घता आदि परिणाम से और घनता आदि गुणों से रहित होने के कारण सब विशेषणों का अविषय, परमर्षियों के लिये दर्शनीय तथा शुद्ध से भी शुद्ध है आपके उस रूप को नमस्कार है ।३२। हमारे या अन्य जीवों के देहों में और सभी पदार्थों में जो वर्तमान है तथा जो अजन्मा और अविनाशी है, उससे पृथक् कोई भी नहीं है उस ब्रह्म स्वरूप को हमारा नमस्कार है ।३३। जिनका आत्मा परमपद ब्रह्म ही है, ऐसे जिन सनातन अजन्मा भगवान् का रूप ही यह सम्पूर्ण प्रपंच है और जो सबके बीज भूत अविनाशी या मल-रहित हैं, उन भगवान वासुदेव को नमस्कार है ।३४।

स्तोत्रस्य चावसाने ते ददृशुः परमेश्वरम् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं गरुडस्थं सुरा हरिम् ।३५।

तमूचुस्सकला देवा: प्रणिपातपुरस्सरम् ।
प्रसीद नाथ दैत्येभ्यस्त्राहि नश्शरणार्थिन: ।३६।
त्रैलोक्ययज्ञभागाश्च दैत्यैर्ह्रादपुरोगमै: ।
हृता नो ब्रह्मणोऽप्याज्ञामुल्लङ्घ्य परमेश्वर ।।३७।।
यद्यप्यशेषभूतस्य वयं ते च तवांशजा ।
तथाप्यविद्याभेदेन भिन्नं पश्यामहे जगत् ।३८।
स्ववर्णधर्माभिरता वेदमार्गानुसारिण: ।
न शक्यास्तेऽरयो हन्तुमस्माभिस्तपसावृता: ।३९।
तमुपायमशेषात्मन्नस्माकं दातुमर्हसि ।
येन तानसुरान्हन्तुं भवेम भगवन्क्षमा: ।४०।
इत्युक्तो भगवांस्तेभ्यो मायामोहं शरीरत: ।
समुत्पाद्य ददौ विष्णु: प्राह चेदं सुरोत्तमान् ।४१।
मायामोहोऽयमखिलान्दैत्यांस्तान्मोहयिष्यति ।
ततो वध्या भविष्यन्ति वेदमार्गवहिष्कृता: ।४२।
स्थितौ स्थितस्य मे वध्या यावन्त: परिपन्थिन: ।
ब्राह्मणो ह्यधिकारस्य देवदैत्यादिका. सुरा: ।४३।
तद्गच्छत न भी: कार्या मायामोहोऽयमग्रत: ।
गच्छन्नद्योपकाराय भवतां भविता सुरा: ।४४।
इत्युक्ता: प्रणिपत्यैनं ययुर्देवा यथागतम् ।
मायामोहोऽपि तैस्सार्द्धं ययौ यत्र महासुरा: ।४५।

श्रीपराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! स्तुति के पूर्ण होते ही उन देवताओं ने शंख, चक्र, गदाधारी भगवान् श्रीहरि को गरुड़ पर चढ़े हुए अपने सामने देखा ।३५। उन्हें देखते ही सब देवताओं ने उन्हें प्रणाम करके कहा—हे नाथ ! हम पर प्रसन्न होकर दैत्यों से हम शरणागतों को बचाइये ।३६। हे परमेश्वर ! ह्राद प्रभृति दैत्यों ने ब्रह्माजी की आज्ञा न मान कर हमारे और त्रैलोक्य के यज्ञ भागों का अपहरण किया है ।३७। यद्यपि हम और वे आप ही सर्वभूत के अंश से उत्पन्न हुए हैं, फिर भी हम

अविद्या के वशीभूत होकर इस विश्व को पृथक्-पृथक् देखते हैं ।३८। हमारे वैरी भी अपने वर्ण धर्म के पालक, वेद मार्ग पर चलने वाले तथा तपोनिष्ठ हैं, इसलिये हम उनका वध करने में समर्थ नहीं है ३९। इसलिये हे सर्वात्मन् ! हमें कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे कि हम उनको मारने में समर्थं हो सकें ।४०। श्री पराशरजी ने कहा— उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु ने अपने देह से मोह की उत्पत्ति कर उसे देवताओं को देते हुए कहा ।४१। यह माया-मोह उन सभी दैत्यों को मोहित कर देगा तब वे वेद मार्ग को त्याग देंगे, जिससे तुम उनका वध करने में समर्थ होगे ।४२। हे देवताओ ! कोई भी देवता हो या दैत्य, ब्रह्माजी के कार्य में बाधक होने से सृष्टि की रक्षा के कारण मेरे द्वारा मारने योग्य होते हैं ।४३। इसलिये हे देवताओ ! तुम अब जाओ । भय का त्याग करो । यह माया-मोह वहाँ जाकर तुम्हारे लिये उपकारी होगा ।४४। श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् की आज्ञा सुनकर देवतागण उन्हें प्रणाम कर अपने-अपने स्थान को गये और माया-मोह भी असुरों के पास पहुँचा ।४५।

—: ❀ ❀ :—

अठारहवाँ अध्याय

तपस्यभिरतान्सोऽथ मायामोहो महासुरान् ।
मैत्रेय ददृशे गत्वा नर्मदातीरसंश्रितान् ।।१।।
ततो दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपिच्छधरो द्विज ।
मायामोहोऽसुरान् श्लक्ष्णमिदं वचनमब्रवीत् ।।२।।
हे दैत्यपतयो ब्रूत यदर्थं तप्यते तपः ।
ऐहिकं वाथ पारत्र्यं तपसः फलमिच्छथ ।३।
पारत्र्यफललाभाय तपश्चर्या महामते ।
अस्माभिरियमारब्धा किं वा तेऽत्र विवक्षितम् ।।४।।
कुरुध्वं मम वाक्यानि यदि मुक्तिमभीप्सथ ।
अर्हध्वमेनं धर्मं च मुक्तिद्वारमसंवृतम् ।।५।।

धर्मो विमुक्तेरर्होऽयं नैतस्तादपरो वरः ।
अत्रैव संस्थिताः स्वर्गं विमुक्त वा गमिष्यथ ।६।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेय जी ! फिर माया मोह ने वहाँ पहुँच कर देखा कि वे महान् असुर नर्मदा नदी के तीर पर तपस्या में तत्पर हैं ।१। तब उस मयूर पंख धारण करने वाले नग्न एवं मुड़े हुए बाल वाले माया मोह ने उन असुरों से अत्यन्त मीठे वचनों में कहा ।२। माया-मोह ने कहा हे दैत्यपतियो ! कहो तुम यह तप किस हेतु कर रहे हो तुम किसी लौकिक फल की कामना करते हो अथवा कोई पारलौकिक फल पाना चाहते हो ? ।३। असुरों ने कहा-हे श्रेष्ठ बुद्धि वाले ! पारलौ-किक कामना की सिद्धि के लिए ही हमने यह तप आरम्भ किया है । इस विषय में तुम हमसे क्या कहना चाहते हो ? ।४। माया-मोह ने कहा—यदि आप मोक्ष की कामना करते हैं तो मैं जो कहता हूँ,वह करो । आप आप इस मोक्ष के खुले द्वार रूप इस धर्म का पालन करो ।५। यह धर्म की सिद्धि में अत्यन्त उपयोगी है, इससे श्रेष्ठ धर्म कोई नहीं है । इसके अनुष्ठान से आप स्वर्ग अथवा मोक्ष-जो भी चाहोगे वही प्राप्त होगा ।६।

अर्हध्वं धर्ममेतं च सर्वे यूयं महाबलाः ।
एवंप्रकारैर्बहुभिर्युक्तिदर्शनचर्चितैः ।७
मायामोहेन ते दैत्या वेदमार्गादपाकृताः ।
धर्मायैतदधर्माय सदेतन्न सदित्यपि ।८।
विमुक्तये त्विदं नैतद्विमुक्ति सम्प्रयच्छति ।
परमार्थोऽयमत्यर्थ परमार्थो न चाप्ययम् ।।९।।
कार्यमेतदकार्यं च नैतदेवं स्फुटं त्विदम् ।
दिग्वाससामयं धर्मो धर्मोऽयं बहुवाससाम् ।१०।
इत्यनेकान्तवाद च मायामोहेन नैकधा ।
तेन दर्शयता दैत्यास्स्वधर्मं त्याजिता द्विज ।११।
अर्हतैतं महाधर्मं मायामोहेन ते यतः ।
प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममर्हतास्तेन तेऽभवन् ।१२।

आप सब महाबली हैं,इसलिए इस धर्म में श्रद्धा करिये । श्री पराशर जी ने कहा-इन अनेक प्रकार उपायों से परिपूर्ण वाक्यों से माया-मोह ने उन दैत्यों को वैदिक मार्ग से हटा दिया । यह धर्ममय है यह अधर्म उपाय है,यह सत् है यह असत् है, यह मोक्षकारक है अथवा यह मोक्ष प्राप्ति में बाधक है. यह परमार्थ है यह परमार्थ के विपरीत है यह कर्त्तव्य है. यह करने योग्य नहीं है. यह ऐसा है, यह ऐसा नहीं है, यह वस्त्र हीनों का धर्म है तथा यह वस्त्र धारियों का धर्म है ।७-१०। इस प्रकार की अनेक उपाय देकर माया-मोह ने उन दैत्यों को उनके धर्म से विमुख कर दिया ।११। उस माया-मोह ने दैत्यों से कहा कि आप इसी महाधर्म का आदर करिये, इसलिये वे दैत्य उस धर्म के मानने वाले होने से 'आर्हत' कहे जाने लगे ।१२।

त्रयीधर्मसमुत्सर्गं मायामोहेन तेऽसुरः ।
कारितास्तन्मया ह्यासंस्ततोऽन्ये तत्प्रचोदिताः ।१३।
तैरप्यन्ये परे तैश्च तैरप्यन्ये परे च तैः ।
अल्पैरहोभिस्सन्त्यक्ता तैर्दैत्यैः प्रायशस्त्रयी ।१४।
पुनश्च रक्ताम्बरधृङ्मायामोहो जितेन्द्रियः ।
अन्यानाहासुरान् गत्वा मृद्वल्पमधुराक्षरम् ।१५।
स्वर्गार्थं यदि वो वाञ्छा निर्वाणार्थमथासुराः ।
तादलं पशुघातादिदुष्टधर्मैर्निबोधत ।१६।
विज्ञानमयमेवैतदशेषमगगच्छत ।
बुध्यध्वं मे वचः सम्यग्बुधैरेवमिहोदितम् ।१७।
जगदेतदनाधारं भ्रान्तिज्ञानार्थतत्परम् ।
रागादिदुष्टमायर्थं भ्राम्यते भवसङ्कटे ।१८।
एवं बुध्यत बुध्यध्वं बुध्यतैवमितीरयन् ।
मायामोहः स दैतेयान्धर्ममायाजयन्निजम् ।१९।
नानाप्रकारवचनं स तेषां युक्तियोजितम् ।
या तथा त्रयीधर्मं तत्यजुस्ते यथा यथा ।२०।

तेऽप्यन्येषां तथैवोचुरन्यैरन्ये तथोदिताः ।
मैत्रेय तत्यजुर्धर्मं वेदस्मृत्युदितं परम् ॥२१॥

माया-मोह द्वारा असुरों को त्रयीधर्म से विमुख किया जाने से वे सभी मोह में पड़ गये और फिर उन्होंने अन्य सब दैत्यों को इसी धर्म में प्रवृत्त कर लिया १३। उन्होंने दूसरों को, दूसरों ने तीसरों को, तीसरों ने फिर अन्यों को इसी प्रकार एक दूसरे को उस धर्म का अवलम्बन कराने लगे। इस प्रकार कुछ काल में ही सभी दैत्य त्रयीधर्म से विमुख हो गये ।१४। इसके पश्चात् माया-मोह ने रक्त वस्त्र धारण किये और उन असुरों से कोमल, संक्षिप्त और मीठे शब्दों में कहा ।१५। हे असुरगण ! यदि तुम स्वर्ग या मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हो तो पशु-वधादि खोटे कर्मों को छोड़कर ज्ञान प्राप्त करो ।१६। इस सम्पूर्ण विश्व को विज्ञानमय समझो। मेरे वचनों पर यत्नपूर्वक ध्यान दो। इस विषय में ज्ञानीजन इस जगत् को व्यर्थ बताते हैं। उनका कहना है कि यह विश्व भ्रम से उत्पन्न पदार्थों के विश्वास पर ही टिका हुआ है और रागादि दोषों के कारण दूषित हो गया है। इस भवसागर रूपी संकट में प्राणी भटकता हुआ घूमता है ।१७-१८। इस प्रकार जानो, समझो आदि बोधात्मक शब्दों के प्रयोग द्वारा माया-मोह के युक्तिपूर्ण वाक्यों के जाल में फँसा कर दैत्यों ने त्रयीधर्म को छोड़ दिया ।२०। उन दैत्यों ने दूसरे दैत्यों से और दूसरे दैत्यों ने दूसरे-दूसरे दैत्यों से यही बात कही। इस प्रकार हे मैत्रेयजी ! उन सबने ही श्रुति-स्मृति-सम्मत अपने परम धर्म का त्याग कर दिया२१।

अन्यानप्यन्यपाषण्डप्रकारैर्बहुभिर्द्विज ।
दैतेयान्मोहयामास मायामोहोऽतिमोहकृत् ।२२।
स्वल्पेनैव हि कालेन मायामोहेन तेऽसुराः ।
मोहितास्तत्यजुस्सर्वां त्रयीमार्गाश्रितां कथाम् ।२३।
केचिद्विनिन्दां वेदानां देवानामपरे द्विज ।
यज्ञकर्मकलापस्य तथान्ये च द्विजन्मनाम् ।२४।

नैतद्युक्तिसहं वाक्यं हिंसा धर्माय चेष्यते ।
हवींष्यनलदग्धानि फलायेत्यर्भकोदितम् ।२५।
यज्ञैरनेकैर्देवत्वमवाप्येन्द्रेण भुज्यते ।
शम्यादि यदि चेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक्पशुः ।२६।
निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते ।
स्वपिता यजमानेन किन्नु तस्मान्न हन्यते ।२७।
तृप्तये जायते पुंसो भुक्तमन्येन चेत्ततः ।
कुर्याच्छ्राद्धं श्रमायान्नं न वहेयुः प्रवासिनः ।२८।
जनश्रद्धेयमित्येतदवगम्य ततोऽत्र वः ।
उपेक्षा श्रेयसे वाक्यं रोचतां यन्मयेरितम् ।२९।
न ह्याप्तवादा नभसो निपतन्ति महासुराः ।
युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं मयान्यैश्च भवद्विधैः ।३०।

हे द्विज श्रेष्ठ ! मोह उत्पन्न करने वाले मायामोह ने अन्यान्य सभी दैत्यों को नाना प्रकार के अनेकों पाखण्डों से मोहित किया ।२२। इस प्रकार कुछ काल में ही मायामोह द्वारा मोहित हुए उन दैत्यों ने त्रयीधर्म की वार्ता का भी त्याग कर दिया ।२३। अब उन दैत्यों में से कोई वेदों की, कोई यज्ञानुष्ठान आदि की तथा कोई ब्राह्मणों की ही निन्दा करने लगे ।२४। उन्होंने परस्पर में कहा–हिंसा में भी धर्म है–यह कथन युक्ति संगत नहीं है और अग्नि में हवि झोंकने से फल की प्राप्ति होगी–यह भी अज्ञानियों की ही बात है ।२५। अनेकों यज्ञों के द्वारा देवत्व को प्राप्त होकर भी यदि इन्द्र को शमी आदि काष्ठ ही खाना पड़ता है तो उससे पत्रभक्षी पशु ही उत्तम है ।२६। यदि यज्ञ में बलि होने वाले पशु को स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने पिता का बलिदान करके ही उसे स्वर्ग क्यों नहीं प्राप्त करा देता ? २७। यदि किसी और के भोजन करने से कोई तृप्त हो सकता है, तो विदेश जाने के समय भोजन सामिग्री साथ ले जाने का परिश्रम ही क्यों किया जाय ? फिर तो पुत्रगण घर पर श्राद्ध करके ही उसे तृप्त कर दिया करें ।२८। इसलिये इसे केवल अन्ध-श्रद्धा समझकर

इसकी उपेक्षा करना उचित है, तथा श्रेय-सिद्धि के लिये मेरे वचनों में चित्त लगाना चाहिये ।२९। हे असुरो ! आप्त वाक्यों की आकाश से वर्षा नहीं होती, हम, तुम या अन्यान्य सभी जो यथार्थ हो, उसे ही ग्रहण कर लें ।३०।

मायामोहेन ते दैत्याः प्रकारैर्बहुभिस्तथा ।
व्युत्थापिता यथा नैषां त्रयी कश्चिदरोचयत् ।३१।
इत्थमुन्मार्गयातेषु तेषु दैत्येषु तेऽमराः ।
उद्योगं परमं कृत्वा युद्धाय समुपस्थिताः ।३२।
ततो देवासुरं युद्धं पुररेवाभवद् द्विज ।
हताश्च तेऽसुरा देवैः सन्मार्गपरिपन्थिनः ।३३।
स्वधर्मकवच तेषामभूद्यत्प्रथमं द्विज ।
तेन रक्षाभवत्पूर्वं नेशुर्नष्टे च तत्र ते ।३४।
ततो मैत्रेय तन्मार्गवर्तिनो येऽभवञ्जनाः ।
नग्नास्ते तैर्यतस्त्यक्तं त्रयीसंवरणं तथा ।३५।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थस्तथाश्रमी ।
परिव्राड् वा चतुर्थोऽत्र पञ्चमो नोपपद्यते ।३६।
यस्तु सन्त्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थी न जायते ।
परिव्राट् चापि मैत्रेय स नग्नः पापकृन्नरः ।३७।

श्री पराशरजी ने कहा—ऐसी अनेक युक्तियों से मायामोह ने दैत्यों को स्वधर्म से विचलित किया, जिससे उस त्रयीधर्म में उनकी किंचित भी रुचि न रही ।३१। इस प्रकार जब दैत्यगण पूर्णतया विपरीतमार्गी होगये तब, युद्ध के लिये सब प्रकार से तैयार हुए देवगण युद्ध की इच्छा से उन के पास पहुँचे ।३२। फिर तो देवताओं और असुरों में घोर युद्ध होने लगा । उस युद्ध में सन्मार्ग-भ्रष्ट दैत्यों का भीषण सहार हुआ ।३३। दैत्यों के पास का जो स्वधर्म रूपी कवच उनकी रक्षा किये हुए था, इस बार उसके नष्ट होने से वे दैत्यगण भी नाश को प्राप्त हुए ।३४। हे मैत्रेयजी ! उस समय से मायामोह द्वारा प्रवर्तित मार्ग के अनुयायी ही 'नग्न' कहे जाने लगे, क्योंकि उन्होंने वेदत्रयी रूपी वस्त्र का परित्याग कर दिया था

।३५। ब्रह्मचारी-गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी यही चार आश्रम हैं, पाँचवाँ आश्रम कोई नहीं हैं ।३६। हे मैत्रेयजी ! जो पुरुष गृहस्थाश्रम को त्याग कर भी वानप्रस्थ या संन्यास ग्रहण नहीं करता वह पापकर्मी भी 'नग्न' संज्ञक ही है ।३७।

नित्यानां कर्मणां विप्र तस्य हानिरहर्निशम् ।
अकुर्वन्विहितं कर्म शक्तः पतति तद्दिने ।३८।
प्रायश्चित्तेन महता शुद्धमाप्नोत्यनापदि ।
पक्षं नित्यक्रियाहानेः कर्त्ता मैत्रेय मानवः ।३९।
संवत्सरं क्रियाहानिर्यस्य पुंसोऽभिजायते ।
तस्यावलोकनात्सूर्यो निरीक्ष्यस्साधुभिस्सदा ।४०।
स्पृष्टे स्नानं सचैलस्य शुद्धे र्हेतुर्महामते ।
पुंसो भवति तस्योक्ता न शुद्धिः पापकर्मणः ।४१।
देवर्षिपितृभूतानि यस्य निःश्वस्य वेश्मनि ।
प्रयान्त्यनर्चितान्यत्र लोके तस्मान्न पापकृत् ।४२।
सम्भाषणानुप्रश्नादि सहास्यां चैव कुर्वतः ।
जायते तुल्यता तस्य तेनैव द्विज वत्सरात् ।४३।
देवादिनिःश्वासहतं शरीरं यस्य वेश्म च ।
न तेन सङ्करं कुर्याद् गृहासनपरिच्छदैः ।४४।
अथ भुङ्क्ते गृहे तस्य करोत्यास्यां तथासने ।
शेते चाप्येकशयने स सद्यस्तत्समो भवेत् ।४५।

हे ब्रह्मन् ! सशक्त होकर भी जो विहित कर्म नही करता, वह उसी दिन अपने धर्म से गिर जाता है और एक दिन-रात्रि में ही उसके सब नित्यकर्म नष्ट हो जाते हैं।३८। हे मैत्रेयजी ! आपत्तिकाल के अतिरिक्त कभी भी एक पक्ष तक जो नित्यकर्म नहीं करता, उसकी शुद्धि महाप्रायश्चित्त के बिना नहीं हो सकती।३९। एक वर्ष तक नित्य क्रिया न करने वाले पुरुष पर दृष्टि पड़ जाने से जो पाप होता है उसकी निवृत्ति के लिये सूर्य भगवान् का दर्शन करे।४०। हे महामते ! ऐसे पुरुष का स्पर्श हो जाने पर शुद्धि के लिये वस्त्र सहित स्नान करना चाहिये। परन्तु उस

पापात्मा की शुद्धि के लिये कोई विधान नहीं है ।४१। जिसके घर से देवता, ऋषि, पितर, भूतादि पूजित न होने के कारण निःश्वास का त्याग करते हुए विमुख चले जाते हैं, उस पुरुष से बढ़कर और कोई पापी संसार में नहीं है ।४२। यदि ऐसे मनुष्य के साथ कोई एक वर्ष तक संभाषण या कुशल प्रश्न करता हुआ बैठे-उठे तो वह भी उसी के जैसे हो जाता है ।४३। जिस पुरुष का शरीर या घर देवता आदि के निःश्वास से युक्त है, उसके आसन से अपने आसन का और उसके वस्त्र से अपने वस्त्र का स्पर्श न करे । न उसके घर में स्वयं जाय और न उसे आने दे ।४४। जो पुरुष वैसे पुरुष के घर में जाकर भोजन या आसन ग्रहण करता या उसके साथ एक शय्या पर सोता है, वह उसी के समान हो जाता है ।४५।

देवतापितृभूतानि तथानभ्यर्च्य योऽतिथीन् ।
भुङ्क्ते स पातकं भुङ्क्ते निष्कृतिस्तस्य नेष्यते ।४६।
ब्राह्मणाद्यास्तु ये वर्णास्स्वधर्मादन्यतोमुखाः ।
यान्ति ते नग्नसंज्ञां तु हीनकर्मस्ववस्थिताः ।४७।
चतुर्णां यत्र वर्णानां मैत्रेयात्यन्तसङ्करः ।
तत्रास्या साधुवृत्तोनामुपघाताय जायते ।४८।
अनभ्यर्च्य ऋषीन्देवान्पितृभूतातिथींस्तथा ।
यो भुङ्क्ते तस्य सँल्लापात्पतन्ति नरके नराः ।४९।
तस्मादेतान्नरो नग्नांस्त्रयीसन्त्यागदूषितान् ।
सर्वदा वर्जयेत्प्राज्ञ आलापस्पर्शनादिषु ।५०।
श्रद्धावद्भिः कृतं यत्नाद्देवान्पितृपितामहान् ।
न प्रीणयति तच्छ्राद्धं यद्येभिरवलोकितम् ।५१।

जो पुरुष देव, पितर, भूत, अतिथि का पूजन किये बिना ही स्वयं भोजन कर लेता है, वह पापमय भोजन करने के कारण शुभ गति का अधिकारी नहीं होता ।४६। जो ब्राह्मणादि वर्ण अपने धर्म का त्याग कर अन्य वर्णों के धर्म में प्रवृत्त होते या नीच वृत्ति का आश्रय लेते हैं, वे 'नग्न' कहे जाते हैं ।४७। हे मैत्रेयजी ! जिस स्थान में चारों वर्णों का

अत्यन्द संकरत्व (मिश्रण) हो, वहाँ निवास करने वाले मनुष्य की साधु वृत्तियाँ भी नष्ट हो जाती हैं।४८। जो पुरुष ऋषि, देवता, पितर, भूत और अतिथि का सत्कार न करके स्वयं भोजन करता है, उससे बातचीत करने वालों को भी नरक की प्राप्ति होती है।४९। इसलिये वेदत्रयी को छोड़ने से दूषित हुए रन नग्न पुरुषों के साथ सम्भाषण और स्पर्शादि का भी त्याग करना चाहिए।५०। इनकी दृष्टि पड़ने मात्र से श्रद्धावान पुरुषों का श्राद्ध सहित किया जाने वाला श्राद्ध देवताओं, पितरों या पितामहों की तृप्ति वाला नहीं होता।५१।

श्रूयते च पुरा ख्यातो राजाशतधनुर्भुवि ।
पत्नी च शैब्या तस्याभूदतिधर्मपरायणा।५२।
पतिव्रता महाभागा सत्यशौचदयान्विता ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना विनयेन नयेन च ।५३।
स तु राजा तया सार्द्धा देवदेवं जनार्दनम् ।
आराधयामास विभुं परमेण समाधिना ।५४।
होमैर्जपैस्तथा दानैरुपवासैश्च भक्तितः ।
पूजाभिश्चानुदिवसं तन्मना नान्यमानसः।५५।
एकदा तु हमं स्नातौ तौ तु भार्यारतो जले ।
भागीरथ्यास्समुत्तीर्णौ कार्त्तिक्यां समुपोषितौ ।
पाषण्डिनमपश्येतामायान्तं सम्मुखं द्विज ।५६।
चापाचार्यस्य तस्यासौ सखा राज्ञो महात्मनः ।
अतस्तद्गौरवात्तेन सखाभावमथाकरोत् ।५७।
न तु सा वाग्यता देवी तस्य पत्नी पतिव्रता ।
उपोषितास्मीति रविं तस्मिन्दृष्टे ददर्श च ।५८।
समागम्य यथान्यायं दम्पती तौ यथाविधि ।
विष्णोः पूजादिकं सर्वं कृतवन्तौ द्विजोत्तम ।५९।

सुनते हैं कि प्राचीन काल में एक शतुधन नामक प्रसिद्ध राजा इस भूतल पर हुआ था। उसकी धर्म परायण पत्नी का नाम शैब्या था।५२। वह महाभागा रानी पतिव्रत, शोच, सत्य, दया, विनय, नीति आदि सभी

गुणों से सम्पन्न थी ५३। उस रानी के साथ राजा शतधनु ने परम समाधि साधन द्वारा देवदेव भगवान् जनार्दन का आराधन किया।५४। वे नित्य-प्रति तन्मयता पूर्वक होम, जप, दान, उपवास तथा पूजनादि के द्वारा भक्तिपूर्वक भगवान् की आराधना करने लगे।५५। एक दिन जब कार्तिकी पूर्णिमा आई तब उन पति-पत्नी दोनों ने उपवास पूर्वक श्री गङ्गा जी में एक साथ स्नान किया और जब वे जल से बाहर निकले तब उन्होंने एक पाखण्डी को सामने से आता हुआ देखा।५६। उस महात्मा राजा को जो धनुर्वेद सिखाने वाले आचार्य थे, उनका यह ब्राह्मण मित्र था, इसलिये आचार्य के गौरव के विचार से राजा ने उसके साथ मित्र जैसा व्यवहार किया।५७। परन्तु उस पतिव्रता रानी ने उस ब्राह्मण का कोई आदर नहीं किय।, वह चुप रही और अपने को उपवास युक्त मानकर उसने सूर्य भगवान् का दर्शन किया।५८।'फिर उन पति पत्नी दोनों ने विधिपूर्वक भगवान् श्रीहरि के पूजनादि कार्यों को सम्पन्न किया।५९।

कालेन गच्छता राजा ममारासौ सपत्नजित् ।
अन्वारुरोह तं देवी चितास्थं भूपतिं पतिम् ।६०।
स तु तेनापचारेण श्वा जज्ञे वसुधाधिपः ।
उपोषितेन पाषण्डसँल्लापो यत्कृतोऽभवत् ।६१।
सा तु जातिस्मरा जज्ञे काशीराजसुता शुभा ।
सर्वविज्ञानसम्पूर्णा सर्वलक्षणपूजिता ।६२।
तां पिता दातुकामोऽभूद्वराय विनिवारितः ।
तयैव तन्व्या विरतो विवाहारम्भतो नृपः ।६३।
ततस्सा दिव्यया दृष्ट्या दृष्ट्वा श्वानं निजं पतिम् ।
विदिशाख्यं पुरं गत्वा तदवस्थं ददर्श तम् ।६४।
तं दृष्ट्वैव महाभागं श्वभूतं तु पतिं तदा ।
ददौ तस्मै वराहारं सत्कारप्रवणं शुभा ।६५।
भुञ्जन्दत्तं तया सोऽन्नमतिमृष्टमभीप्सितम् ।
स्वजातिललितं कुर्वन्बहु चाटु चकार वै ।६६।
अतीव व्रीडिता बाला कुर्वंता चाटु तेन सा ।
प्रणामपूर्वमाहेदं दयितं तं कुयोनिजम् ।६७।

स्मर्यता तन्महाराज दाक्षिण्यललितं त्वया ।
येन श्वयोनिमापन्नो मम चाटुकरो भवान् ।६८।

पाषण्डिनं समाभाष्य तीर्थस्नानादनन्तरम् ।
प्राप्तोऽसि कुत्सितां योनिं किन्न स्मरसि तत्प्रभो ।६९।

समय पाकर वह राजा शतधनु मृत्यु को प्राप्त हुआ और रानी शैब्या ने भी चिताारूढ़ राजा के अनुगमन पूर्वक सतीधर्म का पालन किया ।६०। उस राजा ने उपवास-काल में पाखण्डी से सम्भाषण किया था, इसलिये उसे अपने उस पाप के कारण श्वान योनि में जन्म लेना पड़ा ।६१।उधर उस शुभलक्षण रानी ने काशी नरेश के यहाँ जन्म लिया, वह सब प्रकार के विज्ञान को जानने वाली, सभी श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त तथा पूर्व जन्म की याद रखने वाली हुई ६२। काशी नरेशने जब उसका विवाह करना चाहा, तब अपनी कन्या की अनिच्छा जानकर वह उस कार्य से उपरत हुए ६३। जब उस कन्याने दिव्य दृष्टि से यह जान लिया कि उसके पति ने कुत्ते का जन्म धारण किया है, तब उसने विदिशा नगर में में जाकर उसे श्वान के रूप में देखा ६४। उसने अपने महाभाग पति को उस रूप में देखकर उसे सत्कार सहित भोजन कराया ।६५। रानी के द्वारा प्राप्त हुए उस सुस्वादु, मधुर और इच्छित अन्न का सेवन कर वह अपनी जाति के अनुकूल विभिन्न प्रकार की चाटुकारिता दिखाने लगा ६६। परंतु उस चाटुकारिता प्रदर्शन के कारण संकोच में पड़ी हुई बालाने कुत्सित योनि को प्राप्त हुए अपने उस पति को प्रणाम करके कहा ६७। हे महाराज ! आप अपनी उस उदारता को याद करिये, जिसके कारण आप इस कुत्ते की योनि को पाकर मेरी चाटुकारिता कर रहे हैं ।६८। हे प्रभो ! क्या आपको याद नहीं है कि आपने तीर्थ-स्नान के पश्चात् उस पाखण्डी से सम्भाषण किया था, जिसके कारण आपको इस कुत्सित योनि में आना पड़ा है ।६९।

तयैवं स्मारिते तस्मिन्पूर्वजातिकृते तदा ।
दध्यौ चिरमथावाप निर्वेदमतिदुर्लभम् ।७०।

निर्विण्णचित्तस्स ततो निर्गम्य नगराद्बहिः ।
मरुत्प्रपतनं कृत्वा शार्गालीं योनिमागतः ।७१।
सापि द्वितीते सम्प्राप्ते वीक्ष्य दिव्येन चक्षुषा ।
ज्ञात्वा श्रृगालं तं द्रष्टुं ययौ कोलाहलं गिरिम् ।७२।
तत्रापि दृष्ट्वा तं प्राह शार्गालीं योनिमागतम् ।
भर्त्तारमपि चार्वङ्गी तनया पृथिवीक्षिता ।७३।
अपि स्मरसि राजेन्द्र श्वयोनिस्थस्य यन्मया ।
प्रोक्तं ते पूर्वचरितं पाषण्डालापसंश्रयम् ।७४।
पुनस्तयोक्तं स ज्ञात्वा सत्यं सत्यवतां वरः ।
कानने स निराहारस्तत्याज स्वं कलेवरम् ।७५।
भूयस्ततो वृको जज्ञे गत्वा तं निर्जने वने ।
स्मरयामास भर्त्तारं पूर्ववृत्तमनिन्दिता ।७६।
न त्वं वृको महाभाग राजा शतधनुर्भवान् ।
श्वा भूत्वा श्रृगालोऽभुर्वृकत्वं साम्प्रत गतः ।७७।

श्री पराशरजी ने कहा—उस काशी नरेश की पुत्री ने जब इस प्रकार याद दिलाई तब वह श्वान बहुत देर तक अपने पूर्व जन्म की याद करता रहा। तब उसे दुर्लभ निर्वेद गति की प्राप्ति हुई ७०। उसने अत्यंत दुःखित चित्त से नगर के बाहर जाकर अपने प्राणों का त्याग किया, तब उसे श्रृगाल योनि की प्राप्ति हुई ।७१। जब काशिराज सुता ने दिव्य दृष्टि से उसे श्रृगाल हुआ जाना, तब वह उसे देखने के लिये उस कोलाहल पर्वत पर पहुँची ।७२। जहाँ उसे श्रृगाल योनि में पड़ा हुआ देखकर उसने उससे कहा ।७३। हे राजेन्द्र ! जब आप श्वान-योनि में थे; तब पूर्व जन्म में उस पाखण्डी से सम्भाषण करने वाली घटना की मैंने याद दिलाई थी, क्या वह बात आपको याद है ? ७४। सत्यपालकों में श्रेष्ठ उस राजा शतधनु ने काशिराज की पुत्री की बात सुनकर सब वृतान्त जान लिया और आहार के परित्याग पूर्वक अपने देह का त्याग किया ।७५। फिर इस ने भेड़िया का जन्म लिया, उस समय भी वह अनिन्दिता राजपुत्री निर्जन

वन में पहुंची और उसने अपने पति को पूर्व जन्म की याद दिलाई ।७६। हे महाभाग ! आप भेड़िया नहीं हैं, आप तो राजा शतधनु हैं । आपने क्रमशः कुत्ता, शृगाल और अब भेड़िया का जन्म लिया है ।७७।

स्मारितेन यदा त्यक्तस्तेनात्मा गृध्रतां गतः ।
अपापा सा पुनश्चैनं बोधयामास भामिनी ।७८।
नरेन्द्र स्मर्यतामात्मा ह्यलं ते गृध्रचेष्टया ।
पाषण्डालापजातोऽयं दोषौ यत्गृध्रतां गतः ।७९।
ततः काकत्वमापन्नं समनन्तरजन्मनि ।
उपाच तन्वी भर्त्तारमुपलभ्यात्मयोगतः ।८०।
अशेषभूभृतः पूर्वं वश्या यस्मै बलिं ददुः ।
स त्वं काकत्वमापन्नो जातोऽद्य बलिभुक् प्रभो ।८१।
एवमेव च काकत्वे स्मारितस्स पुरातनम् ।
तत्याज भूपतिः प्राणान्मयूरत्वमवाप च ।८२।

उसके इस प्रकार याद दिलाने पर राजा ने भेड़िया की योनि छोड़ दी । तब उसे गृध्र होना पड़ा । उस योनि में भी उसकी पाप-रहित पत्नी ने उसे पूर्व वृतान्त का स्मरण कराया ।७८। हे राजन् ! आप अपने रूप की याद करिये । इन गृध्र चेष्टाओं का त्याग कीजिये, क्योंकि पाखण्डी से सम्भाषण करने के कारण ही आपको इस योनि को प्राप्ति हुई है ।७९। उस योनि का परित्याग करने पर उसे कौए की योनि मिली । तब भी उस सुन्दरी ने योग बल से उसका वृतान्त जानकर और उसके पास पहुँच कर उससे कहा ।८०। हे प्रभो ! आप वही हैं, जिनकी आधीनता को प्राप्त हुए समस्त सामन्तगण विभिन्न प्रकार की भेंट प्रस्तुत करते थे । आज आप इस काक-योनि में आकर बलि का भोजन करने वाले हुए हैं ।८१। इस प्रकार पूर्व जन्म की याद दिलाये जाने पर राजा ने काक-योनि को त्यागकर मोर की योनि प्राप्त की ।८२।

मयूरत्वे ततस्सा वै चकारानुगतिं शुभा ।
दत्तैः प्रतिक्षणं भोज्यैर्बाला तज्जातिभोजनैः।८३।

ततस्तु जनको राजा वाजिमेधं महाक्रतुम् ।
चकार तस्यावभृथे स्नापयामास तं तदा ।८४।

सस्नौ स्वयं च तन्वङ्गी स्मारयामास चापि तम् ।
यथासौ श्वश्रृगालादियोनिं जग्राह पार्थिवः ।८५।

स्मृतजन्मक्रमस्सोऽथ तत्याज स्वकलेवरम् ।
जज्ञे स जनकस्यैव पुत्रोऽसौ सुमहात्मनः ।८६।

ततस्सा पितरं तन्वी विवाहार्थमचोदयत् ।
स चापि कारयामास तस्या राजा स्वयंवरम् ।८७।

स्वयंवरे कृते सा तं सम्प्राप्त पतिमात्मनः ।
वरयामास भूयोऽपि भर्तृभावेन भामिनी ।८८।

बुभुजे च तया सार्द्धं सम्भोगान्नृपनन्दनः ।
पितर्युपरते राज्यं विदेहेषु चकार सः ।८९।

इयाज यज्ञान्सुबहून्ददौ दानानि चार्थिनाम् ।
पुत्रानुत्पादयामास युयुधे च सहारिभिः ।९०।

उस योनि में भी काशिराजपुत्री ने उसे प्रतिक्षण मयूरोचित श्रेष्ठ आहार देते हुए उसकी सेवा की ।८३। जिस समय राजा जनक ने अश्वमेध का अनुष्ठान किया । उस महायज्ञ में अवभृथ स्नान के समय उस मोर को स्नान कराया गया ।८४। फिर उस राजकन्या ने स्वयं भी स्नान किया और मयूर रूपी राजा को उसकी श्वान, शृगाल आदि योनियों का स्मरण कराया ।८५। सब वृतान्त के याद आने पर उसने अपना मयूर-देह भी छोड़ दिया और राजा जनक के ही घर में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ ।८६। फिर उस राजकुमारी ने अपने विवाह के लिये अपने पिता को प्रेरित किया, तब राजा ने उसका स्वयंवर का आयोजन होने पर स्वयंवर में आये अपने उस पति का उस राज पुत्री ने पुनः पतिभाव से वरण किया ।८८। फिर उस राजकुमार ने काशिराज पुत्री के साथ अनेक भोगों को भोगते हुए अपने पिता के मरणोपरान्त विदेह नगर का राजपद सम्भाला

।८९। उसने अनेकानेक यज्ञ किये, याचकों को इच्छित दान दिये, अनेक पुत्रों की उत्पत्ति की और शत्रुओं के साथ अनेकों भीषण युद्ध किये।९०।

राज्यं भुक्त्वा यथान्यायं पालयित्वा वसुन्धराम् ।
तत्याज स प्रियान्प्राणान्संग्रामे धर्मतो नृपः ।९१।
ततश्चितास्थं तं भूयो भर्त्तारं सा शुभेक्षणा ।
अन्वारुरोह विधिवद्यथापूर्वं मुदान्विता ।९२।
ततोऽवाप तया सार्द्धं राजपुत्र्या स पार्थिवः ।
ऐन्द्रानतीत्या वै लोकाँल्लोकान्प्राप तदाक्षयान् ।९३।
स्वर्गाक्षयत्वमतुल दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ।
प्राप्त पुण्यफल प्राप्य संशुद्धि तां द्विजोत्तम ।९४।
एष पाषण्डसम्भाषाद्दोषः प्रोक्तो मया द्विज ।
तथास्वमेधावभृथस्नादमाहात्म्यमेव च ।९५।
तस्मात्पाषण्डिभिः पापैरालापस्पर्शनं त्यजेत् ।
विशेषतः क्रियाकाले यज्ञादौ चापि दीक्षितः ।९६।
क्रियाहानिगृहे यस्य मासमेकं प्रजायते ।
तस्यावलोकनात्सूर्यं पश्येत मतिमान्नरः ।९७।

इस प्रकार उसने पृथिवी का न्यायपूर्वक पालन और राज-सुखों का उपभोग किया तथा अन्त मे धर्म युक्त युद्ध करते हुए ही अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।९१। तब पहिले के समान ही उस सुन्दर नयन वाली रानी ने अपने चितारूढ़ पति के साथ परलोक गमन किया।९२। इस प्रकार राजकुमारी सहित उस राजा ने इन्द्रलोक से भी बढ़कर अक्षय लोकों को प्राप्त किया।९३। हे द्विजवर ! इस प्रकार शुद्धि को प्राप्त हुए उस राजा ने अतुलित एवं अक्षय स्वर्ग, अत्यन्त दुर्लभ दाम्पत्य तथा अपने पुण्य के फल को प्राप्त किया।९४। हे द्विज ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे प्रति पाखण्डी से वार्तालाप करने का दोष और अश्वमेध यज्ञ में अवभृथ स्नान करने का महात्म्य कहा है ९५। इसलिये पाखण्डियों और पापकर्मियों से कभी संभाषण या उनका स्पर्श नहीं करना चाहिये। विशेषकर नित्य नैमित्तिक कर्मों के समय या यज्ञादि क्रियाओं में दीक्षित होने

पर तो उनके संसर्ग से बचना ही चाहिये ।९६। जिसके घर में एक महीने तक नित्यकर्म न हुए हों, उस पुरुष का दर्शन मात्र होने पर सूर्य का दर्शन करना चाहिये ।९७।

किं पुनर्यैस्तु सन्त्यक्ता त्रयी सर्वात्मना द्विज ।
पाषण्डभोजिभिः पापैर्वेदवादविरोधिभिः ।९८।
सहालापस्तु संसर्गः सहास्या चातिपापिनी ।
पाषण्डिभिर्दुराचारैस्तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ।९९।
पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वेडालव्रतिकाञ्छठान् ।
हैतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ।१००।
दूरतस्तैस्तु सम्पर्कस्त्याज्यश्चाप्यतिपापिभिः ।
पाषण्डिभिर्दुराचारैस्तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ।१०१।
एते नग्नास्तवाख्यातदृष्टाः श्राद्धोपघातका। ।
येषां सम्भाषणात्पुंसां दिनपुण्यं प्रणश्यति ।।१०२।
एते पाषण्डिनः पापा न ह्येतानालपेद् बुधः ।
पुण्यं नश्यति सम्भाषादेतेषां तद्दिनोद्भवम् ।१०३।
पुंसां जटाधरणमौण्ड्यवतां वृथैव
मोघाशिनामखिलशौचनिराकृतानाम् ।
तोयप्रदानपितृपिण्डबहिष्कृतानां
सम्भाषणादपि नरा नरकं प्रयान्ति ।१०४।

वेदत्रयी धर्म के त्यागी, पाखण्डियों का अन्न भोजन करने वाले और वैदिक धर्म का विरोध करने वाले उन पापियों को देख लेने पर तो उपाय ही क्या कहा जाय ? ।९८। इन दुराचारियों के साथ सम्भाषण करना, सम्पर्क रखना या उठना बैठना भी पाप है, इसलिये उनका त्याग करना ही उचित है, ।९९। पाखण्डी, कुकर्मी, छिपकर पाप करने वाले, दुष्ट, स्वार्थी तथा बगुला वृत्ति वाले मनुष्यों का वचनों से भी सत्कार न करे ।१००। इन पाखण्डियों, दुराचारियों और अत्यन्त पापियों का संसर्ग दूर से ही त्याग देना चाहिये । इसलिये इनसे सदा ही बचो ।१०१। इस प्रकार नग्नों के विषय में मैंने तुमसे

कहा है, जिसके देखने से ही श्राद्ध का क्षय हो जाता है तथा जिनसे वार्तालाप करने मात्र से एक दिन का पुण्य नष्ट हो जाता है ।१०२। ऐसे यह पाखण्डी अत्यन्त पापी होते हैं, बुद्धिमानों को इनसे कभी भी वार्ता नहीं करना चाहिये । क्योंकि वार्तालाप करने से ही उस दिन का पुण्य क्षीण हो जाता है ।१०३। जो अकारण ही जटा धारण करते और सिर मुँड़ा लेते हैं, तथा जो सब प्रकार से अशुद्ध और जलदान-पिण्डदान आदि से बहिष्कृत हैं, उन व्यक्तियों से बातचीत करने वालों को भी नरक की प्राप्ति होती है ।१०४।

—:❀❀:—

चतुर्थ अंश

पहला अध्याय

भगवन्यन्नरै कार्यं साधुकर्मण्यवस्थितैः ।
तन्मह्यं गुरुणाख्यातं नित्यनैमित्तिकात्मकम् ॥१॥
वर्णधर्मास्तथाख्याता धर्मा ये चाश्रमेषु च ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं वंशं राज्ञां तद् ब्रूहि मे गुरो ॥२॥

मैत्रेय श्रूयतामयमनेकयज्वशूरवीरधीरभूपालालङ्कृतो ब्रह्मादिर्मानवो वंशः ३। तदस्य वंशस्यानुपूर्वीमशेषवंशपापप्रणाशनाय मैत्रेयैतां कथां शृणु ।४।

तद्यथा सकलजगतामादिरनादिभूतस्स ऋग्यजुस्सामादिमयो भगवान् विष्णुस्तस्य ब्रह्मणो मूर्त्तं रूपं हिरण्यगर्भो ब्रह्माण्डभूतो ब्रह्मा भगवान् प्राग्बभूव ।५। ब्रह्मणश्च दक्षिणाङ्गुष्ठजन्मा दक्षप्रजापतिः दक्षस्याप्यदितिरदितेर्विवस्वान् विवस्वतो मनुः ।६ मनोरिक्ष्वाकुनृगधृष्टशर्यातिनरिष्यन्तप्रांशुनाभागदष्टिकरूषपृषध्राख्या दश पुत्रा बभूवुः ।७।

श्रीमैत्रेयजी ने कहा—हे भगवान् ! साधु कर्मों में अवस्थित पुरुषों के करने योग्य उन सभी नित्य-नैमित्तिक कर्मों को आपने मुझसे कह दिया ।१। हे गुरो ! आपने वर्ण-धर्मों और आश्रय धर्मों की भी व्याख्या कर दी, अब मैं राजवंशों को सुनने की इच्छा करता हूँ, इसलिये वह विषय मेरे प्रति कहिये ।२। श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! जिस वंश के आदि कर्त्ता ब्रह्माजी हैं, उस अनेकों यज्ञ वाले, शूर, वीर और धीरजवान् राजाओं से सुशोभित मनुवंश का वर्णन सुनो ।३। हे मैत्रेयजी ! अपने वंश के सब पापों को मिटाने के लिये इस वंश की परम्परा-गाथा को यत्न से सुनो ।४। वह इस प्रकार है—सम्पूर्ण जगत् के आदि कारण भगवान्

विष्णु हैं। वे अनादि और त्रिवेद रूप हैं। उन्हीं ब्रह्म स्वरूप भगवान् के मूर्त्त स्वरूप में ब्रह्माण्डमय एवं हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी सर्व प्रथम उत्पन्न हुए।५। उन ब्रह्माजी के दाँये अँगूठे से दक्ष प्रजापति की उत्पत्ति हुई, दक्ष से अदिति ने भगवान् विवस्वान् को प्रकट किया। उन्हीं विवस्वान् से मनु की उत्पत्ति हुई।६। मनु के दस पुत्र हुए, जिनके नाम इक्ष्वाकु नृग, धृष्ट शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, दिष्ट, करूष और पृषध्र थे।७।

इष्टिं च मित्रावरुणयोर्मनुः पुत्रकामश्चकार।८। तत्र तावदपह्नुते होतुरपचारादिला नाम कन्या बभूव।९। सैव च मित्रावरुणयोः प्रसादात्सुद्युम्नो नाम मनोः पुत्रो मैत्रेय आसीत्।१०। पुनश्चेश्वरकोपात्स्त्री सती सा तु सोमसूनोर्बुधस्याश्रमसमीपे बभ्राम ११। सानुरागश्च तस्यां बुधःपुरूरवसमात्मजमुत्पादयामास।१२। जातेऽपि तस्मिन्नमिततेजोभि परमर्षिभिरिष्टिमय ऋङ्मयो यजुर्मयस्साममयोऽथर्वणमयस्सर्ववेदमयो मनोमयो ज्ञानमयो न किञ्चिन्मयोऽन्नमयो भगवान् यज्ञपुरुषस्वरूपी सुद्युम्नस्य पुंस्त्वत्वमभिलषद्भिर्यथावदिष्टस्तत्प्रसादादिला पुनरपि सुद्युम्नोऽभवत्।१३। तस्याप्युत्कलगयविनतास्त्रयः पुत्रा बभूवुः।१४।

पुत्र की कामना से मनु ने मित्रावरुण की प्रसन्नता के लिये यज्ञ किया।८। परन्तु, होता के विपरीत संकल्प से उस यज्ञ में विपर्यय हो गया और उससे इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई।९। हे मैत्रेयजी! बाद में मित्रावरुण की कृपा से वही इला नाम्नी कन्या मनु-पुत्र सुद्युम्न हो गया।१०। शिवजी के क्रोध के कारण वह इला स्त्री बनी हुई चन्द्रमा के पुत्र बुध के आश्रम के समीप भ्रमण करने लगी।११। तब बुध उसे देखकर आसक्तिमय होगये और उन्होंने उससे पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न किया।१२। पुरुरवा के उत्पन्न होने के पश्चात् परम ऋषियों ने सुद्युम्न को पुरुषत्व-प्राप्ति कराने की इच्छा से सर्ववेदमय, मनोमय, ज्ञानमय, अन्नमय और परमार्थ वाले भगवान् यज्ञ पुरुष का विधिवत् यजन किया,

तब उन यज्ञ पुरुष की कृपा से इला सुद्युम्न रूप में परिवर्तित हुई ।१३।

तब उस सुद्युम्न के तीन पुत्र उत्कल, गय और विनत नामक हुए ।१४।

सुद्युम्नस्तु स्त्रीपूर्वकत्वाद्राज्यभागं न लेभे ।१५। तत्पित्रा तु वसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानं नाम नगरं सुद्युम्नाय दत्तं तच्चासौ पुरूरवसे प्रदात् ।१६। तदन्वयाश्च क्षत्रियास्सर्वे दिक्ष्वभवन् । पृषध्रस्तु मनुपुत्रो गुरुगोवधाच्छूद्रत्वमगमत् ।१७। मनोः पुत्रः करूषः करूषत्कारूषाः क्षत्रिया महाबलपराक्रमा बभूवुः ।१८। दिष्टपुत्रस्तु नाभागो वैश्यतामगमत्तस्माद्बलन्धनः पुत्रोऽभवत् ।१९। बलन्धनाद्वत्सप्रीतिरुदारकीर्तिः ।२०। वत्सप्रीतेः प्रांशुरभवत् ।२१। प्रजापतिश्च प्रांशोरेकोऽभवत् ।२२।

पहिले स्त्री होने के कारण सुद्युम्न को राज्य का अधिकार नहीं मिला था, परन्तु वसिष्ठजी की आज्ञा से पिताने उसे प्रतिष्ठान नामक नगर का राजा बनाया, वही नगर सुद्युम्न ने पुरूरवा को प्रदान कर दिया १५-१६। उसी पुरूरवा की संतान सत्र दिशाओं में फैल गई। मनु का पुत्र पृषध्र अपने गुरू की गौ को मारने के कारण शूद्रत्व को प्राप्त हो गया ।१९। मनु का जो पुत्र करूष था, उसी की सन्तान कारूष नामक अत्यन्त बल और पराक्रम वाले क्षत्रियगण हुए १८। दिष्ट का पुत्र नाभाग हुआ जो वैश्यत्व को प्राप्त हो गया, उसने बलन्धन नामक पुत्र उत्पन्न किया ।१९। बलन्धन से अत्यन्त यशस्वी वत्सप्रीति, वत्सप्रीति से प्रांशु और प्रांशु से प्रजापति नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ।२०—२१।

ततश्च खनित्रः ।२३। तस्माच्चक्षुषः ।२४। चाक्षुषाच्चातिवलपराक्रमो विंशोऽभवत् ।२५। ततो विविंशकः ।२६। तस्माच्च खनिनेत्रः ।२७। ततश्चातिविभूतिः ।२८। अतिविभूतेरतिबलपराक्रमः करन्धमः पुत्रोऽभवत् ।२९। तस्मादप्यविक्षित् ।३०। अविक्षितोऽप्यतिबलपराक्रमः पुत्रो मरुत्तो नामाभवत्ः यस्येमावद्यापि श्लोकौ गीयेते ।३१।

मरुत्तस्य यथा यज्ञस्तथा कस्यामवद्भुवि ।
सर्वं हिरण्मयं तस्य यज्ञवस्त्वतिशोभनम् ।३२।
अमाद्यदिन्द्रस्सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
मरुतः परिवेष्टारस्सदस्याश्च दिवौकसः ।३३।

प्रजापति का पुत्र खनित्र हुआ, खनित्र से चाक्षुप और चाक्षुप से अत्यन्त बली-पराक्रमी विंश हुआ २३-२५। विंश से विविंशक की उत्पत्ति हुई, विविंशक से खनिनेत्र, खनिनेत्र से अति विभूति और अति विभूति से अत्यन्त बलवान् करन्धम हुआ २६-२६। करन्धम से अविक्षित् और अविक्षित से मरुत नामक महाबली पुत्र हुआ, जिसके विषय में अब भी यह दो श्लोक प्रचलित हैं।३०-३१। मरुत्त के जैसा यज्ञ पृथिवी पर अभी तक किसी अन्य का नहीं हुआ, क्योंकि उसकी सभी याज्ञिक वस्तुएँ स्वर्ण युक्त और अत्यन्त सुन्दर थीं।३२। उस यज्ञ में इन्द्र को सोम-रस से और ब्राह्मणों को दक्षिणा से तृप्त किया गया था। उसमें मरुद्गण परोसने वाले और देवगण सदस्य हुए थे।३३।

स मरुत्तश्चक्रवर्ती नरिष्यन्तनामानं पुत्रमवाप ३४। तस्माच्च दमः।३५। दमस्य पुत्रो राजवर्द्धनो जज्ञे ३६। राजवर्द्धनात्सुवृद्धिः सुवृद्धेः केवलः।३८। केवलात्सुधृतिरभूत्।३९। ततश्च नरः।४०। तस्माच्चन्द्रः।४१। ततः केवलोऽभूत्।४२ केवलाद्बन्धुमान्।४३। वेगवान्।४४ वेगवतो बुधः।४५। ततश्च तृणविन्दुः।४६। तस्याप्येका कन्या इलविला नाम।४७। ततश्चालम्बुसा नाम वराप्सरास्तृणबिन्दु भेजे।४८। तस्यामप्यस्य विशालो जज्ञे यः पुरीं विशालां निर्ममे।४९।

उस मरुत्त के नरिष्यन्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ नरिष्यन्त से दम और दम से राजवर्द्धन हुआ।३४-३६। राजवर्द्धन से सुवृद्धि, सुवृद्धि से केवल और केवल से सुधृति उत्पन्न हुआ।३७-३९। सुधृति से नर, नर से चन्द्र और चन्द्र से केवल का जन्म हुआ।४०-४२। केवल से बुन्धुमान्, बुन्धुमान् से वेगमान, वेगमान् से बुध, बुध से तृणबिन्दु। तृणबिन्दु ने प्रथम में तो इलविला नाम की एक कन्या उत्पन्न की, फिर अलम्बुसा नाम की अप्सरा के आसक्त होने पर उससे तृणबिन्दु ने विशाल नामक एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसने विशाला नाम से एक पुरी का निर्माण कराया ४३-४९।

हेमचन्द्रश्च विशालस्य पुत्रोऽभवत्।५०। ततश्चन्द्रः।५१। तत्तनयो धूम्राक्षः।५२। तस्यापि सृञ्जयोऽभूत्।५३। सृञ्जयात्सहदेवः।५४। ततश्च कृशाश्वो नाम पुत्रोऽभवत् ५५। सोमदत्तः कृशा-

श्वाज्जज्ञे योऽश्वमेधानां शतमाजहार ५६। तत्पुत्रो जनमेजयः ५७। जनमेजयात्सुमतिः ।५८। एते वैशालिका भूभृतः ।५९। श्लोकोऽप्यत्र गीयते ६०।

तृणबिन्दोः प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः ।
दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तोऽतिधार्मिकाः ।६१।

शर्यातेः कन्या सुकन्या नामाभवत् यामुपयेमे च्यवनः ।६२। आनर्त्तनामा परमधार्मिकश्शर्यातिपुत्रोऽभवत् ।६३। आनर्त्तस्यापि रेवतनामा पुत्रो जज्ञे योऽसावानर्त्तविषयं बुभुजे पुरीं च कुशस्थलीमध्युवास ।।६४।।

विशाल का पुत्र हेमचंद्र, (हेमचंद्र का) पुत्र धूम्राक्ष हुआ । धूम्राक्ष के सृञ्जय के सहदेव और सहदेव के कुशाश्व की उत्पत्ति हुई ।५०-५१। कुशाश्व से सौ अश्वमेधों का कर्त्ता सोमदत्त हुआ । सोमदत्त से जनमेजय और जनमेजय से सुमति हुआ । वह सभी राजा विशाल के वंशधर हुए । इनके विषय में यह गाया जाता है ।५६-६०। कि तृणबिन्दु के प्रसाद से विशाल वंश के सभी राजा दीर्घायु, महात्मा वीर्यवन्त तथा अत्यन्त धार्मिक हुए ।६१। मनु-पुत्र शर्याति के सुकन्या नाम की एक कन्या हुई जिसका पाणिग्रहण च्यवन ऋषि ने किया ।६२। शर्याति के एक अत्यन्त धर्मात्मा आनर्त्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । आनर्त्त से रेवत हुआ, जिसने कुशस्थली नगरी में निवास करते हुए आनर्त्त श के राज्य को भोगा ।६३-६४।

रेवतस्यापि रैवतः पुत्रः ककुद्मिनामा धर्मात्मा भ्रातृशतस्य ज्येष्ठोऽभवत् ।६५। तस्य रेवती नाम कन्याभवत् ।६६। स तामादाय कस्येयमर्हतीति भगवन्तमब्जयोनिं प्रष्टुं ब्रह्मलोकं जगाम ।६७। तावच्च ब्रह्मणोऽन्तिके हाहाहूहूसंज्ञाभ्यां गन्धर्वाभ्यामतितानं नाम दिव्यं गांधर्वमगीयत ।६८। तच्च त्रिमार्गपरिवृत्तैरनेकयुगपरिवृत्तिं तिष्ठन्नपि रैवतश्शृण्वन्मुहूर्तमिव मेने ।६९। गीतावसाने च भगवन्तमब्जयोनिं प्रणम्य रैवतः कन्यायोग्यं वरमपृच्छत् ।७०। ततसौ भगवानकथयत् कथय योऽभिमतस्ते वर इति ।७१। पुनश्च

प्रणम्य भगवते तस्मै यथाभिमतानात्मनस्त वरान् कथयामास । क एषां भगवतोऽभिमत इति यस्मै कन्यामिमां प्रयच्छामीति ७२।

रेवत का पुत्र रैवत ककुद्मी हुआ जो अत्यंत धार्मिक और अपने सौभाइयों में ज्येष्ठ था ।६५। उसके जो कन्या हुई उसका नाम रेवती हुआ ।६६। उस कन्या को साथ लेकर राजा रैवत ब्रह्माजी से वह कन्या किस वर के योग्य है-यह पूछने के लिये ब्रह्मलोक को गये ।६७। उस समय ब्रह्माजी के समक्ष हाहा और हूहू नामक दो गंधर्व अतितान नामक दिव्य गीत गा रहे थे ।६८। वहाँ त्रिमार्ग परिवर्तन युक्त उस अद्भुत गीत को सुनते हुए वे राजा रैवत युगों के परिवर्तन काल तक वहाँ रुके रहे परन्तु उन्हें उतना समय केवल एक मुहूर्त के समान ही व्यतीत हुआ लगा ६९। गीत के समाप्त होने पर महाराज रैवत ने कमलयोनि भगवान् श्री ब्रह्मा जी को प्रणाम करके उनसे अपनी कन्या के योग्य वर के विषय में प्रश्न किया ।७०। ब्रह्माजी ने कहा-तुमने जो वर पसन्द किया हो उसे बताओ ।७१। इस पर उन्होंने ब्रह्माजी को पुनः प्रणाम किया और जो-जो वर उनकी दृष्टि में थे, वह सब उन्हें बताकर प्रश्न किया कि-इन में से कौनसा वर आपको उचित प्रतीत होता है, जिसे मैं अपनी यह कन्या प्रदान कर कर दूँ ।७२।

ततः किञ्चदवनतशिरास्सस्मितं भगवानब्जयोनिराह ७३। य एते भवतोऽभिमता नैतेषां साम्प्रतं पुत्रपौत्रापत्यापत्यसन्ततिरस्त्यवनीतले ।७४। बहूनि तवात्रैव गान्धर्वं शृण्वतश्चतुर्युगान्यतीतानि ।७५। साम्प्रतं महीतलेऽष्टाविंशतितममनोश्चतुर्युगमतीतप्रायं वर्तते ।७६। आसन्नो हि कलिः ।७७। अन्यस्मै कन्यारत्नमिदं भवतैकाकिनाभिमताय देयम् ।७८। भवतोऽपि पुत्रमित्रकलत्रमन्त्रिभृत्यबन्धु बलकोशादयस्समस्ताः कालेनैतेनात्यन्तमतीताः'।७९। ततः पुनरप्युत्पन्नसाध्वसो राजा भगवन्तं प्रणम्य पप्रच्छ ।८०। भगवन्नेवमवस्थिते मयेयं कस्मै देयेति ।८१। ततस्स भगवान् किञ्चदवनम्रकन्धरः कृताञ्जलिर्भूत्वा सर्वलोकगुरुरम्भोजयोनिराह ।८२।

इस प्रकार भगवान् पद्मयोनि ब्रह्माजी ने मस्तक झुकाकर कुछ मुसकाते हुए कहा—तुम्हें जो जो वर पसन्द हैं, उनमें से तो किसी की पुत्र-पौत्रादि सन्तान भी अब पृथिवी पर स्थित नहीं हैं ।७४। क्योंकि यहाँ गन्धर्वों का गीत सुनते हुए कई चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं ।७५। इस समय पृथिवी पर अट्ठाइसवें मनु की चतुर्युगी समाप्त होने को है और कलियुग का आरम्भ निकट है ।७६-७७। अब तुम एकाकी ही रह गये हो, इसलिये इस कन्या-रत्न को किसी अन्य योग्य वर को प्रदान करो। इतने समय में तुम्हारे पुत्र, मित्र, कलत्र, मंत्रिगण, भृत्यगण, बन्धु-बांधव, सेना और कोषादि कुछ भी शेष नहीं रहा ।७८-७९। इस बात को सुनकर भयभीत हुए राजा रैवत ने ब्रह्माजी को पुनः प्रणाम करके प्रश्न किया ।८०। हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो अब मैं इस कन्या को किसे दूँ ? ।८१। तब सब लोकों के गुरु ब्रह्माजी ने कुछ मस्तक झुकाकर हाथ जोड़ते हुए कहा ।८२।

न ह्यादिमध्यान्तमजस्य यस्य विद्मो वयं सर्वमयस्य धातुः ।
न च स्वरूपं न परं स्वभावं न चैव सारं परमेश्वरस्य ।८३।
कलामुहूर्त्तादिमयश्च कालो न यद्विभूतेः परिणामहेतुः ।
अजन्मनाशस्य सदैकमूर्त्तेरनामरूपस्य सनातनस्य ।८४।
यस्य प्रसादादहमच्युतस्य भूतः प्रजासृष्टिकरोऽन्तकारी ।
क्रोधाच्च रुद्रः स्थितिहेतुभूतो यस्माच्च मध्ये पुरुषः परस्मात्८५
मद्रूपमास्थाय सृजत्यजो यः स्थितौ च योऽसौ पुरुषस्वरूपी ।
रुद्रस्वरूपेण च योऽत्ति विश्वं धत्ते तथानन्तवपुस्समस्तम् ।८६।
पाकाय योऽग्नित्वमुपैति लोकान्बिभर्त्ति पृथिवीवपुरव्ययात्मा ।
शक्रादिरूपी परिपाति विश्वमर्केन्दुरूपश्च तमो हिनस्ति ।८७।
करोति चेष्टाश्श्वसनस्वरूपी लोकस्य तृप्तिं च जलान्नरूपी ।
ददाति विश्वस्थितिसंस्थितस्तु सर्वावकाशं च नभस्स्वरूपी ।८८।
यस्सृज्यते सर्गकृदात्मनैव यः पाल्यते पालयिता च देवः ।
विश्वात्मकस्संह्रियतेऽन्तकारी पृथक् त्रयस्यास्य च योऽव्ययात्मा८९

यस्मिञ्जगद्यो जगदेतदाद्यो यश्चाश्रितोऽस्मिञ्जगति स्वयम्भूः ।
स सर्वभूतप्रभवो धरित्र्यां स्वांशेन विष्णुर्नृपतेऽवतीर्णः ।९०।

श्री ब्रह्माजी बोले–जिन जन्म-रहित, सर्वात्मक परमेश्वर के आदि मध्य, अन्त को हम नहीं जानते और जिनके रूप, श्रेष्ठ स्वभाव और सार का ज्ञान भी हमको नहीं है ।८३। जिनकी विभूति के परिणाम का कारण कला मुहूर्त्तादि युक्त काल भी नहीं हो सकता तथा जो जन्म- मरण से रहित, सनातन नाम-रूप से रहित एवं सदा ही एक रूप हैं ।८४। जिन अच्युत भगवान् के प्रसाद से मैं प्रजोत्पत्ति का कर्त्ता हूँ और जिनके क्रोध से उत्पन्न होकर रुद्र सृष्टि का अन्त करने में समर्थ होते हैं तथा जिनसे विश्व की स्थिति करने वाले विष्णु रूपी पुरुष प्रकट हुए हैं ।८५। जो अजन्मा मेरे रूप में विश्व की रचना पुरुष रूप में स्थिति और रुद्र रूप में सम्पूर्ण विश्व को ग्रस लेता है तथा अनन्त रूप से उसी विश्व को धारण करता है ।८६। जो अव्ययात्मा परिपाक करने के लिए अग्नि रूप होता तथा पृथिवी रूप से सब लोकों को धारण करता है. इन्द्रादि के रूप में जगत् का पालन करता तथा सूर्य, चन्द्रमा के रूप में सब अन्धकार का हरण कर लेता है ।८७। जो श्वास-प्रश्वास रूप में प्राणियों को चेष्टावान् करता है, अन्न जल के रूप में संसार की तृप्ति करता है और जगत् की स्थिति के कार्य को करता हुआ जो सभी को आकाश रूप से अवकाश प्रदान करता है ।८८। जो अव्ययात्मा सृष्टि को रचने वाला होकर भी स्वयं ही विश्व रूप से उत्पन्न होता और विश्व का पालनकर्त्ता होकर भी स्वयं पालित होता है तथा संहारकर्त्ता होकर भी स्वयं ही नष्ट हो जाता है ।८९। जिसमें यह संसार स्थित है और जो आदि-पुरुष विश्व-रूप है और विश्व के ही आश्रित स्वयं उत्पन्न होने वाला है । हे राजन् ! सभी भूतों का उदभवस्थल वह विष्णु भगवान् पृथिवी पर अपने अंश से उत्पन्न होता है ।९०।

कुशस्थली या तव भूप रम्या पुरी पुराभूदमरावतीव ।
सा द्वारका सम्प्रति तत्र चास्ते स केशवांशो बलदेवनामा ।९१।
तस्मै त्वमेनां तनयां नरेन्द्र प्रयच्छ मायामनुजाय जायाम् ।।
श्लाघ्यो वरोऽसौ तनया तवेयं स्त्रीरत्नभूता सदृशो हि योगः ९२।

इतीरितोऽसो कमलोद्भवेन भुवं समासाद्य पतिः प्रजानाम् ।
ददर्श ह्रस्वान् पुरुषान् विरूपानल्पौजसस्स्वल्पविवेकवीर्यान् ९३।
कुशस्थलीं तां च पुरीमुपेत्य दृष्ट्वान्यरूपां प्रददौ स कन्याम् ।
सीरायुधाय स्फटिकाचलाभवक्षः स्थलायातुलधीर्नरेन्द्रः ।९४।
उच्चप्रमाणामिति तामवेक्ष्य स्वलाङ्गलाग्रेण च तालकेतुः ।
निनम्रयामास ततश्च सापि बभूव सद्यो वनिता यथान्या ।९५।
तां रेवतीं रैवतभूपकन्यां सीरायुधोऽसौ विधिनोपयेमे ।
दत्त्वार्थ कन्यां स नृपो जगाम हिमालयं वै तपसे धृतात्मा ।९६।

हे राजन् ! अमरावती के समान तुम्हारी कुशस्थली नाम की नगरी अब द्वारावती हो गई है । वहां भगवान् विष्णु के अंश रूप बलदेव जी स्थित हैं ।९१। तुम अपनी इस कन्या को माया से मनुष्य बने बलदेव जी को ही भार्या रूप में प्रदान कर दो । वह बलदेवजी जगत् में अत्यन्त प्रशंसा के पात्र हैं और तुम्हारी यह पुत्री भी रत्न है, इसलिये इन दोनों का मिलन उपयुक्त रहेगा ।९२। श्री पराशरजी ने कहा—श्री ब्रह्माजी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महाराज रैवत भूतल पर लौटे और उन्होंने देखा कि सब मनुष्य छोटे कद के, रूपहीन, न्यून तेज वाले, अल्प-वीर्य और मतिहीन हो गये हैं ।९३। उन्होंने अपनी कुशस्थली नाम की नगरी को नितांत परिवर्तित रूप में पाया और स्फटिकाचल के समान वक्षःस्थल वाले बलरामजी को अपनी कन्या प्रदान कर दी ।९४। जब उन बलदेवजी ने उसे अत्यन्त ऊँची शरीर को देखा तो अपने हल के अगले भाग से दबा कर छोटे कद की कर दी । ऐसा करने से वह रेवती भी उस समय की अन्य नारियों जैसे कद की हो गई ।९५। फिर बलरामजी ने राजा रैवत की उस कन्या से विधिवत् विवाह किया और राजा भी उन्हें कन्या देकर तप करने के लिये हिमालय पर्वत पर चले गये ।९६।

—: ❀ ❀ :—

दूसरा अध्याय

यावच्च ब्रह्मलोकात्स ककुद्मी रैवतो नाभ्येति तावत्पुण्यजनसंज्ञा राक्षसास्तामस्य पुरीं कुशस्थलीं निजघ्नुः ।१। तच्चास्य भ्रातृशतं पुण्यजनात्रासाद्दिशो भेजे ।२। तदन्वयाश्च क्षत्रियास्सर्वदिक्ष्वभवन् ।३। धृष्टस्यापि धार्ष्टकं क्षत्रमभवत् ।४। नाभागस्यात्मजो नाभागसंज्ञोऽभवत् ।५। तस्याप्यम्बरीषः ६। अम्बरीषस्यापि विरूपोऽभवत् ।७। विरूपात्पृषदश्वो जज्ञे ।८। ततश्च रथीतरः ।९। अत्रायं श्लोकः एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसाः स्मृताः । रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।१०।

श्री पराशरजी ने कहा—जब तक रैवत ककुद्मी ब्रह्मलोक से नहीं लौटे, तभी पुण्यजन नामक राक्षसों ने उनकी कुशस्थली पुरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ।१। उनके जो सौ भाई थे, वे सब उन पुण्यजन राक्षसों के भय के कारण दसों दिशाओं में भाग गये ।२। उन्हीं सब के वंशधर क्षत्रियगण उन सब दिशाओं में फैल गये ।३। धृष्ट का वंश धार्ष्टक नामक क्षत्रियों के रूप में हुआ ।४। नाभाग का पुत्र भी नाभाग संज्ञक हुआ, जिसका पुत्र अम्बरीष और अम्बरीष का पुत्र विरूप हुआ । विरूप का पुत्र पृषदश्व से रथीतर की उत्पत्ति हुई ।५-९। उन रथीतर के विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है—रथीतर के वंशधर क्षत्रिय होते हुए भी आंगिरस कहला कर क्षत्रोपेत ब्राह्मण हुए ।१०।

इति क्षुतवतश्च मनोरिक्ष्वाकुः पुत्रो जज्ञे घ्राणतः ।११। तस्य पुत्रशतप्रधाना विकुक्षिनिमिदण्डाख्यास्त्रयः पुत्रा बभूवुः ।१२। शकुनिप्रमुखाः पञ्चाशत्पुत्रा उत्तरापथरक्षितारो बभूवुः ।१३। चत्वारिंशदष्टौ च दक्षिणापथभूपालाः १४। स चेक्ष्वाकुरष्टकायाश्श्राद्धमुत्पाद्य श्राद्धार्हं मांसमानयेति विकुक्षिमाज्ञापयामास ।१५। स तथेतिगृहीताज्ञो विधृतशरासनो वनमध्येत्यानेकशो मृगान् हत्वा श्रान्तोऽतिक्षुत्परीतो विकुक्षिरेकं शशमभक्षयत् । शेषं च मांसमानीय पित्रे निवेदयामास ।१६। इक्ष्वाकुकुलाचार्यो वशिष्ठस्तत्प्रो-

क्षणाय चोदितः प्राह । अलमनेनामेध्येनामिषेण दुरात्मना तव पुत्रेणैतन्मांसमुपहृत यतोऽनेन शशो भक्षितः १७। ततश्चासौ विकुक्षिर्गुरुणैवमुक्तश्शशादसंज्ञामवाप पित्रा च परित्यक्तः ।१८। पितर्युपरते चासावखिलामेतां पृथ्वीं धर्मतश्शशास ।१९। शशादस्य तस्य पुरञ्जयो नाम पुत्रोऽभवत् ।२०।

छींकते समय मनु की नासिका से इक्ष्वाकु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।११। उनके सौ पुत्रों में विकुक्षि, निमि और दण्ड यह तीन पुत्र प्रमुख हुये और उनके शकुनि आदि पचास पुत्र उत्तरापथ के और अड़तालीस पुत्र दक्षिणापथ के अधिकारी हुए ।१२-१४। राजा इक्ष्वाकु ने अष्टका श्राद्ध का आरम्भ किया और अपने पुत्र विकुक्षि को श्राद्ध-योग्य अन्न लाने की आज्ञा दी ।१५। उसने उनकी आज्ञा मानकर धनुष-बाण ग्रहण किया और वन में जाकर मृगों को मारने लगा। उस समय अत्यन्त क्षुधार्त्त होने के कारण विकुक्षि ने उनमें से एक खरगोश भक्षण कर लिया और शेष मांस पिता के समक्ष लाकर रखा ।१६। उस मांस को धोने की प्रार्थना किये जाने पर राजा इक्ष्वाकु के आचार्य वसिष्ठजी ने कहा कि—तुम्हारे दुरात्मा पुत्र ने इस मांस को अपवित्र कर दिया है, उसने इसमें से एक खरगोश का भक्षण किया है, इसलिये इस दूषित मांस की क्या आवश्यकता है? ।१७। उसी समय से विकुक्षि का नाम शशाद हो गया और गुरु के वचन सुनकर पिता ने उसका त्याग कर दिया ।१८। परन्तु पिता की मृत्यु हो जाने पर उसी ने इस पृथिवी पर धर्मपूर्वक राज्य किया ।१९। उस शशाद का पुत्र पुरञ्जय हुआ ।२०।

तस्येदं चान्यत् ।२१। पुरा हि त्रेतायां देवासुरयुद्धमतिभीषणमभवत् ।२२।तत्र चातिबलिभिरसुरैरमराः पराजितास्ते भगवन्तं विष्णुमाराधयाञ्चक्रुः ।२३। प्रसन्नश्च देवानामनादिनिधनोऽखिलजगत्परायणो नारायणः प्राह ।२४। ज्ञाननेतन्मया युष्माभिर्यदभिलषितं तदर्थमिदं श्रूयताम् ।२५। पुरञ्जयो नाम राजर्षेश्शशादस्य तनयः क्षत्रियवरो यस्तस्य शरीरदभिरेऽहमशेन स्वयमेवावतीर्य तानशेषानसुरान्निहनिष्यामि तद्भवद्भिः पुरञ्जयोऽसुरवधार्थमुद्योगं कार्यतामिति ।२६।

पुरञ्जय का भी एक दूसरा नाम पड़ा ।२१। पूर्व काल की बात है-त्रेता युग में एक बार अत्यन्त भयङ्कर देवासुर युद्ध हुआ २२। उसमें अत्यन्त बली दैत्यों से देवगण पराजित हो गये और तब उन्होंने भगवान् विष्णु की आराधना की ।२३। उस समय आदि-अन्त से रहित, विश्व का परिपालन करने वाले भगवान् श्री नारायण ने प्रसन्न होकर उन देवताओं से कहा ।२४। आपकी जो कामना है, उसे मैं जान गया हूँ, अब उसके विषय में मेरी बात सुनो ।२५। राजर्षि शशाद के पुत्र पुरंजय के देह में स्वयं मैं ही अपने अंश से अवतीर्ण होकर उन सब दैत्यों का संहार करूँगा । इसलिये तुम उस पुरंजय को दैत्यों के मारने के कार्य में तत्पर करो ।२६।

एतच्च श्रुत्वा प्रणम्य भगवन्तं विष्णुममराः पुरञ्जयसकाश-माजग्मुरूचुश्चैनम् ।२७। भो भो क्षत्रियवर्यास्माभिरभ्यर्थितेन भव-तास्माकमरातिवधोद्यतानां कर्तव्य साहाय्यमिच्छामः तद्भवता-स्माकमभ्यागतानां प्रणयभङ्गो न कार्य इत्युक्तः पुरञ्जयः प्राह २८। त्रैलोक्यनाथो यो यं युष्माकमिन्द्रः शतक्रतुरस्य यद्यहं स्कंधा-धिरूढो युष्माकमरातिभिस्सह योत्स्ये तदहं भवतां सहायः स्याम् ।२९। इत्याकर्ण्य समस्तदेवैरिन्द्रेण च बाढमित्येवं समन्वीप्सितम् ततश्च शतक्रतोर्वृषरूपधारिणः ककुदि स्थितोऽतिरोषसमन्वितो भगवतश्चराचरगुरोरच्युतस्य तेजसाप्यायितो देवासुरङ्संग्रामे समस्तानेवासुरान्निजघान ।३१। यतश्च वृषभककुदि स्थितेन राजा दैतेयबलं निपूदितमतश्चासौ ककुत्स्थसंज्ञामवाप ।३२।

यह सुनकर भगवान् को प्रणाम करके देवगण वहाँ से चल दिये और पुरजय के पास पहुँच कर बोले ।२७। हे क्षत्रियवर ! अपने शत्रुओं को नष्ट करने में तत्पर हुए हम अपनी सहायता के लिये यहाँ आये है । आप हमारी याचना को अस्वीकार न करें । इस पर पुरञ्जय बोले ।२८। इन त्रैलोक्यनाथ शतक्रतु इन्द्र के कन्धे पर आरूढ़ होकर यदि मैं युद्ध कर सकूँ तो अवश्य ही आपकी सहायता कर सकता हूँ ।२९। उनकी बात सुन कर सभी देवगण सहित इन्द्र ने उसे स्वीकार कर लिया ।३०। और वृषभ

रूपधारी इंद्र की पीठ पर आरूढ़ होकर भगवान् विष्णु के तेज से परिपूर्ण हुये वह राजा युद्ध में पहुँचे और उन्होंने क्रोधपूर्वक उन सब दैत्यों का वध कर दिया ।३१। उन्होंने इन्द्र रूपी बैल के ककुद (कन्धे) पर चढ़ कर दैत्य-सेना का संहार किया था, इसलिये वह ककुत्स्थ नाम से विख्यात हुए।३ ।

ककुत्स्थस्याप्यनेना पुत्रोऽभवत् ;३३। पृथुरनेनसः ३४.पृथोर्विष्टराश्वः ।३५। तस्यापि चान्द्रो युवनाश्व ।३६। चान्द्रस्य तस्य युवनाश्वस्य शावस्तः यः पुरीं शावस्तीं निवेशयामास ।३७। शावस्तस्य बृहदश्वः ।३८। तस्यापि कुवलयाश्वः ।३९। योऽसावुदकस्य महर्षेरपकारिणं धुन्धुनामानमसुरं वैष्णवेन तेजसाप्यायित। पुत्रसहस्रै रेकविंशद्भिः परिवृतो जघान धुन्धुमारसंज्ञामवाप ।४०। तस्य च तनयास्समस्ता एव धुन्धुमुखनिःश्वासाग्निना विप्लुष्टा विनेशुः ।४१। दृढाश्वचन्द्राश्वकपिलाश्वाश्च त्रयः केवल शेषिताः ।४२।

ककुत्स्थ का पुत्र अनेना हुआ ३२ अनेना का पुत्र पृथु पृथु का विष्टराश्व का चान्द्र युवनाश्व और उसका पुत्र शावस्त हुआ, जिसने शावस्ती पुरी को बसाया ३४-३७ शावस्त के बृहदश्व और बृह० के कुवलयाश्व हुआ, जिसने भगवान् विष्णु के तेज से परिपूर्ण होकर अपने इक्कीस पुत्रों को साथ लेकर महर्षि उदक का अपकार करने वाले धुन्धु नामक दैत्य का संहार किया था, इसलिये उसका नाम धुन्धुमार भी पड़ गया था ३८-४०। उनके सब पुत्र धुन्धु के मुख से निर्गत हुई श्वासोच्छ्वास रूपी अग्नि में भस्म हो गये ।४१। उनमें से दृढाश्व, चन्द्राश्व और कपिलाश्व नामक तीन पुत्र ही शेष बचे थे ।४२।

दृढाश्वाद्धर्यश्वः ।४३। तस्माच्च निकुम्भः ४४। निकुम्भस्यामिताश्वः ।४५। ततश्च कृशाश्व ।४६। तस्माच्च प्रसेनजित् ।४७। प्रसेनजितो युवनाश्वोऽभवत् ।४८। तस्य चापुत्रस्यातिनिर्वेदान्मुनीनामाश्रममण्डले निवसतो दयालुभिर्मुनिभिरपत्योत्पादनायेष्टिः कृता ।४९। तस्यां च मध्यरात्रौ निवृत्तायां मन्त्रपूतजलपूर्णं कलशं वेदिमध्ये निवेश्य ते मुनयः सुषुपुः ।५०। सुप्तेषु तेषु अतीव तृट्प-

रीतस्स भूपालस्तमाश्रम विवेश ।५१। सुप्तांश्च तानृषीन्नैवोत्थापयामास ।५२। तच्च कलशमपरिमेयमाहात्म्यमन्त्रपूतं पपौ ।५३। प्रबुद्धाश्च ऋषयः पप्रच्छुः केनैतन्मन्त्रपूतं वारि पीतम् ।५४। अत्र हि राज्ञो युवनाश्वस्य पत्नी महाबलपराक्रमं पुत्रं जनयिष्यति । इत्याकर्ण्य स राजा अजानता मया पीतमित्याह ।५५। गर्भश्च युवनाश्वस्योदरे अभवत् क्रमेण च ववृधे ।५६। प्राप्तसमयश्च दक्षिणं कुक्षिमवनिपतेर्निर्भिद्य निश्चक्राम ।५७। न चासौ राजा ममार ५८।

दृढाश्व से हर्यश्व हर्य०, से निकुम्भ, निकुम्भ ने अमिताश्व, अमिताश्व से कृशाश्व, कृशाश्व से प्रसेननजित् और प्रसेनजित से युवनाश्व उत्पन्न हुआ ।४३-४८। वह युवनाश्व संतानहीन होने के कारण दुःखित चित्त से महर्षियों के आश्रय में रहने लगा ।४६। आधी रात के समय जब वह यज्ञ सम्पूर्ण हो गया, तब महर्षिगण मन्त्रपूत जल से परिपूर्ण कलश को वेदी में रख कर सो गये ।५०। उनके सोने के पश्चात् राजा को अत्यंत प्यास लगी और उसने यज्ञ स्थान में प्रवेश किया और ऋषियों को शयन करते हुये देखकर उसने उन्हें नहीं जगाया ।५१-५२। प्यास को रोक न सकने के कारण उसने उसी मन्त्रपूत जल का पान कर लिया ।५३। जब ऋषिगण की निद्रा भंग हुई तब उन्होंने कलश को जल-रहित देखा तो पूछा कि मन्त्रपूत जल को किसने पान किया है ? ।५४। इसी जल को पीकर युवनाश्व की भार्या अत्यंत बल-विक्रम युक्त पुत्र को जन्म देगी । तब राजा ने कहा—इस बात को बिना जाने मैंने ही इस जल को पी लिया है ।५५। इस प्रकार युवनाश्व के उदर में गर्भ स्थिति हो गई और वह गर्भ क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।५६। समय प्राप्त कर राजा की दाहिनी कोख को फोड़ता वह गर्भ बाहर निकल आया ।५७। परन्तु राजा उससे मरा नहीं ।५८।

जातो नामैष कं धास्यतीति ते मुनयः प्रोचुः ५६। अथागत्य देवराजोऽब्रवीत् मामयं धास्यतीति ।६०। ततो मांधातृनामा सोऽभवत् । वक्त्रे चास्य प्रदेशिनी देवेन्द्रेण न्यस्ता तां पपौ ६१। तां चामृतस्राविणीमास्वाद्याह्न व स व्यवर्द्धत ।६२। ततस्तु मान्धाता

चक्रवर्ती सप्तद्वीपां महीं बुभुजे ।६३। तत्रायं श्लोकः ।६४। यावत्सूर्य उदेत्यस्त यावच्च प्रतितिष्ठति । सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ।६५।

उस बालक के उत्पन्न होने पर ऋषिगण बोले—यह बालक क्या पीकर जीवित रहेगा ? ।५९। तभी देवराज इन्द्र ने वहां उपस्थित होकर कहा—यह मेरे आश्रय में जीवित रहेगा ।६०। इसलिये उसका मान्धाता नाम पड़ा । इंद्र ने उसके मुख में अपनी तर्जनी अँगुली देकर अमृत पान कराया, जिससे वह उसी दिन बढ़ गया ।६१-६२। उसी समय से मांधाता सातों द्वीप वाली सम्पूर्ण पृथिवी का चक्रवर्ती राजा हुआ ।६३। इसके विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है—सूर्योदय के स्थान से सूर्यास्त के स्थान पर्यंत सभी क्षेत्र युवनाश्व-पुत्र मान्धाता के आधीन है ।६४-६५।

मान्धाता शतविन्दोर्दुहितरं बिन्दुमतीमुपयेमे ।६६। पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च तस्यां पुत्रत्रयमुत्पादयामास ६७। पञ्चाशद्दुहितरस्तस्यामेव तस्य नृपतेर्बभूवुः ।६८।तस्मिन्नन्तरे बह्वृचश्च सौभरिर्नाम महर्षिरन्तर्जले द्वादशाब्दं कालमुवास ।६९।तत्र चान्तर्जले सम्मदो नामातिबहुप्रजोऽतिमात्रप्रमाणो मीनाधिपतिरासीत् ।७०। तस्य च पुत्रपौत्रदौहित्राः पृष्ठतोऽग्रतः पार्श्वयोः पक्षपुच्छशिरसां चोपरि भ्रमन्तस्तेनैव सदाहर्निशमतिनिर्वृता रेमिरे ७१। स चापत्यस्पर्शोपचीयमानप्रहर्षप्रकर्षो बहुप्रकारं तस्य ऋषेः पश्यतस्तैरात्मजपुत्रपौत्रदौहित्रादिभिः सहानुदिनं सुतरां रेमे ७२। अथान्तर्जलावस्थितस्सौभरिरेकाग्रतस्समाधिमपहायानुदिनं तस्य मत्स्यस्यात्मजपुत्रपौत्रदौहित्रादिभिस्सहातिरमणीयतामवेक्ष्याचिन्तयत् ।७३। अहो धन्योऽयमीदृशमनभिमतं योन्यन्तरमवाप्यैभिरात्मजपुत्रादिभिस्सह रममाणोऽतीवास्माकं स्पृहामुत्पादयति ७४। वयमप्येवं पुत्रादिभिस्सह ललितं रंस्यामहे इत्येवमभिकाङ्क्षन् स तस्मादन्तर्जलान्निष्क्रम्य सन्तानाय निवेष्टुकामः कन्यार्थं मान्धातारं राजानमगच्छत् ।।७५।।

शतबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती से उस मान्धाता ने विवाह किया, जिससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र और पचास

कन्याएँ उत्पन्न हुईं।६ -६८। उसी काल की बात है कि बहवृच-पुत्र सौभरि ऋषि ने बारह वर्ष तक जल में रहकर तप किया।६९। उसी जल में सम्मद नामक एक विशाल देह वाला मत्स्यराज रहता था जिसके बहुत सी सन्तानें थीं।७०। उसके पुत्र ,पौत्र, दौहित्र आदि उसके आगे पीछे, इधर-उधर तथा पूँछ और मस्तक पर हर्षित होते हुए घूमते हुए उसके साथ क्रीड़ा रत रहते थे।७१। और वह भी अपने बालकों के कोमल स्पर्श से अत्यन्त प्रसन्न होकर उन मुनि के सामने ही दिन रात खेलता रहता था।७२। इस प्रकार जल में रहते हुए सौभरि ऋषि अपनी तन्मयतायुक्त समाधि को त्याग कर अहिर्निश उस मत्स्यराज की उन बालकों के साथ होने वाली क्रीड़ा को देखते रहने और फिर उन्होंने सोचा।७३। अहो, यह कैसा कृतकृत्य है जो ऐसी निकृष्ट योनि को प्राप्त हुआ भी अपने पुत्र, पौत्र दौहित्रादि के साथ निरन्तर क्रीडा करता हुआ हमारे हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न कर रहा है।७४। इसी प्रकार हम भी अपने पुत्रादि के साथ अत्यन्त ललित बालक्रीड़ा करें। ऐसी कामना करते हुए ऋषि उस जल से बाहर निकले और सन्तान के निमित्त गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने की अभिलाषा करते हुए कन्या प्राप्ति के हेतु राजा मान्धाता के यहाँ पहुँचे।७५।

आगमनश्रवणसमनन्तरं चोत्थाय तेन राज्ञा सम्यगर्घ्यादिना सम्पूजितः कृतासनपरिग्रहः सौभरिरुवाच राजानम्।७६।
निवेष्टुकामोऽस्मि नरेन्द्र कन्यां प्रयच्छ मे मा प्रणय विभाड.क्षीः
न ह्यर्थिनः कार्यवशादुपेताः ककुत्स्थवंशे विमुखाः प्रयान्ति।७७।
अन्येऽपि सन्त्येव नृपाः पृथिव्यां मान्धातरेषां तनयाः प्रसूताः।
किं त्वर्थिनामर्थितदानदीक्षाकृतव्रत श्लाघ्यमिदं कुलं ते।७८।
शतार्धसंख्यास्तव सन्ति कन्यास्तासां ममैकां नृपते प्रयच्छ।
सत्प्रार्थनाभङ्गभयाद्बिभेमि तस्मादहं राजवरातिदुःखात्।७९।

इति ऋषिवचनमाकर्ण्य स राजा जराजर्जरितदेहमृषिमालोक्य प्रत्याख्यानकातरस्तस्माच्च शापभीतो बिभ्यत्किञ्चिदधोमुखश्चिरं दध्यौ च।८०।

नरेन्द्र कस्मात्समुपैषि चिन्ता मसह्यमुक्तं न मयात्र किञ्चित् ।
यावश्यदेया तनया तयैव कृतार्थता नो यदि किं न लब्धा ।८१।

ऋषि के आने की बात सुनकर राजा अपने सिंहासन से उठे और उन्होंने ऋषि को अर्घ्य देकर उनका पूजन किया । तब श्रेष्ठ आसन को प्राप्त हुये सौभरि ऋषि राजा से बोले ।७६। सौभरि ऋषि ने कहा– हे राजन् ! मैं कन्या प्राप्त करने का इच्छुक हूँ इसलिये तुम मुझे एक कन्या प्रदान करो । मेरा प्रणय भंग न हो, वह कार्य करो । क्योंकि ककुत्स्थ वंश में किसी प्रकार की कामना लेकर आया हुआ कोई भी याचक खाली हाथ कभी नहीं जाता ।७७। हे मन्धाता ! भूतल पर अन्य अनेक राजा हैं और उनके यहाँ कन्याऐं हैं, परन्तु याचकों की इच्छित वस्तु प्रदान करने में दृढ़-प्रतिज्ञ तो तुम्हारा यही वंश विख्यात है ।७८। हे राजन् ! तुम अपनी पचास कन्याओं में से मुझे केवल एक ही कन्या प्रदान कर दो, क्यों कि मैं इस कष्ट से अत्यन्त भयभीत हूँ कि मेरी प्रार्थना भंग न हो जाय ।७९। श्री पराशर जी ने कहा-ऋषि के वचन सुन कर उनके वृद्धावस्था से जीर्ण हुये देह को देखता हुआ देह को देखता हुआ राजा शाप की आशङ्का से भयभीत होकर अपने मुख को नीचा किए हुए मौन चिन्तन करने लगे ।८०। सौभरि ने कहा–हे राजन् ! तुम व्यर्थ चिन्तन कर रहे हो ? मैंने कोई ऐसी बात तो कही नहीं, जो असह्य समझी जा सके । तुम्हें अपनी जो कन्या एक दिन किसी को अवश्य देनी हैं उसे प्राप्त कर यदि मैं कृतार्थ हो सकूँ तो तुम्हें क्या उपलब्ध नहीं हो सकता ? ।८१।

अथ तस्य भगवतश्शापभीतस्सप्रश्रयस्तमुवाचासौ राजा ।८२। भगवन् अस्मत्कुलस्थितिरियं य एव कन्याभिरुचितोऽभिजनवान्वरस्तस्मै कन्या प्रदीयते भगवद्याच्ञा चास्मन्मनोरथानामप्यतिगोचरवर्त्तिनो कथमप्येषा सञ्जाता तदेवमुपस्थिते न विद्मः किं कुर्म इत्येतन्मया चिन्त्यत इत्यभिहिते च तेन भूभुजा मुनिरचिन्तयत् ।८३। अयमन्योऽस्मत्प्रत्याख्यानोपायो वृद्धोऽयमनभिमतः स्त्रीणां किमुत कन्यकानामित्यमुना सञ्चिन्त्यैतदभिहितमेवमस्तु तथा

करिष्यामीति सञ्चिन्त्य मान्धातारमुवाच ।८४। यद्येवं तदादिश्यतामस्माक प्रवेशात कन्यान्तःपुरवर्षवरो यदि कन्यैव काचिन्मामभिलषति तदाहं दारसंग्रहं करिष्यामि अन्यथा चेत्तदलमस्माकमेतेनातीतकालारम्भणेनेत्युक्त्वा विरराम ।८५।

श्री पराशरजी ने कहा—फिर महर्षि सौभरि के शाप की अशंका से भयभीत हुए राजा मान्धाता विनम्रता पूर्वक उन ऋषि से बोले ।८२। राजा ने कहा—हेभगवन् ! हमारे वंश की यह परम्परा रही है कि कन्या जिस सत्कुलोत्पन्न वर को पसन्द करे उसी को वह प्रदान की जाती है। आपकी याचना हमारे अभीष्ट से भी परे हैं,और न जाने किस प्रकार इसकी उत्पत्ति हुई है ? इस अवस्था में मुझे क्या करना चाहिये, यह नहीं समझ पा रहा हूँ और इसी बात की मुझे चिन्ता है। राजा मान्धाता की यह बात सुनकर सौभरि ऋषि विचार करने लगे ।८३। मुझे टालने के लिए यह एक अन्य उपाय प्रयोग किया गया है। यह वृद्ध है, इसे प्रौढ़ा स्त्रियाँ भी पसन्द नहीं कर सकतीं, तो कन्याओं का कहना ही क्या है ? राजा ने यही सोचते हुए मुझे टालने की चेष्टा की है। यदि ऐसा है तो मैं भी इसका उपाय करूँगा ऐसा विचार करके उन्होंने राजा से कहा ।८४। यदि ऐसा है तो कन्याओं के अन्तःपुर रक्षक को मेरे प्रवेश की आज्ञा दो। फिर यदि कोई कन्या स्वयं ही मुझे पसन्द करेगी,तभी मैं स्त्री-परिग्रह करूँगा, अन्यथा इस ढलती हुई आयु में व्यर्थ के इस उद्यम से कोई प्रयोजन ही नहीं रखूँगा। यह कह कर वह चुप हो गये ।८५।

ततश्च मान्धात्रा मुनिशापशङ्कितेन कन्यान्तःपुरवर्षवरस्समाज्ञप्तः ।८६। तेन सह कन्यान्तःपुरं प्रविशन्नेव भगवानखिलसिद्धगन्धर्वेभ्योऽतिशयेन कमनीयं रूपमकरोत् ।८७। प्रवेश्य चतमृषिमन्तःपुरे वर्षवरस्ताः कन्याःप्राह ८८। भवतीनां जनयिता महाराजस्समाज्ञापयति ८९। अयमस्मान् ब्रह्मर्षिः कन्यार्थं समभ्यागतः ९०। मया चास्य प्रतिज्ञातं यद्यस्मत्कन्या या काचिद्भगवन्तं वरयति तत्कन्यायाश्छन्दे नाहं परिपन्थान करिष्यामीत्याकर्ण्य सर्वा एव

नरेन्द्र कस्मात्समुपैषि चिन्ता मसह्यमुक्तं न मयात्र किञ्चित् ।
यावश्यदेया तनया तयैव कृतार्थता नो यदि किं न लब्धा ।८१।

ऋषि के आने की बात सुनकर राजा अपने सिंहासन से उठे और उन्होंने ऋषि को अर्घ्य देकर उनका पूजन किया। तब श्रेष्ठ आसन को प्राप्त हुये सौभरि ऋषि राजा से बोले ।७६। सौभरि ऋषि ने कहा– हे राजन् ! मैं कन्या प्राप्त करने का इच्छुक हूँ इसलिये तुम मुझे एक कन्या प्रदान करो। मेरा प्रणय भंग न हो, वह कार्य करो। क्योंकि ककुत्स्थ वंश में किसी प्रकार की कामना लेकर आया हुआ कोई भी याचक खाली हाथ कभी नहीं जाता ।७७। हे मन्धाता ! भूतल पर अन्य अनेक राजा हैं और उनके यहाँ कन्याऐं हैं. परन्तु याचकों की इच्छित वस्तु प्रदान करने में दृढ़-प्रतिज्ञ तो तुम्हारा यही वंश विख्यात है ।७८। हे राजन् ! तुम अपनी पचास कन्याओं में से मुझे केवल एक ही कन्या प्रदान कर दो, क्यों कि मैं इस कष्ट से अत्यन्त भयभीत हूँ कि मेरी प्रार्थना भंग न हो जाय ।७९। श्री पराशर जी ने कहा-ऋषि के वचन सुन कर उनके वृद्धावस्था से जीर्ण हुये देह को देखता हुआ देह को देखता हुआ राजा शाप की आ-शङ्का से भयभीत होकर अपने मुख को नीचा किए हुए मौन चिन्तन करने लगे ।८०। सौभरि ने कहा–हे राजन् ! तुम व्यर्थ चिन्तन कर रहे हो ? मैंने कोई ऐसी बात तो कही नहीं, जो असह्य समझी जा सके । तुम्हें अपनी जो कन्या एक दिन किसी को अवश्य देनी हैं उसे प्राप्त कर यदि मैं कृतार्थ हो सकूँ तो तुम्हें क्या उपलब्ध नहीं हो सकता ? ८१।

अथ तस्य भगवतश्शापभीतस्सप्रश्रयस्तमुवाचासौ राजा ८२। भगवन् अस्मत्कुलस्थितिरियं य एव कन्याभिरुचितोऽभिजनवान्वरस्तस्मै कन्या प्रदीयते भगवद्याच्ञा चास्मन्मनोरथानामप्यतिगोचरवर्त्तिनो कथमप्येषा सञ्जाता तदेवमुपस्थिते न विद्मः किं कुर्म इत्येतन्मया चिन्त्यत इत्यभिहिते च तेन भूभुजा मुनिरचिन्तयत् ।८३। अयमन्योऽस्मत्प्रत्याख्यानोपायो वृद्धोऽयमनभिमतः स्त्रीणां किमुत कन्यकानामित्यमुना सञ्चिन्त्यैतदभिहितमेवमस्तु तथा

करिष्यामीति सञ्चिन्त्य मान्धातारमुवाच ।८४। यद्येवं तदादिश्यतामस्माक प्रवेशात कन्यान्तःपुरबर्षवरो यदि कन्यैव काचिन्मामभिलषति तदाहं दारसंग्रहं करिष्यामि अन्यथा चेत्तदलमस्माकमेतेनातीतकालारम्भणेनेत्युक्त्वा विरराम ।८५।

श्री पराशरजी ने कहा—फिर महर्षि सौभरि के शाप की आशंका से भयभीत हुए राजा मान्धाता विनम्रता पूर्वक उन ऋषि से बोले ।८२। राजा ने कहा—हेभगवन् ! हमारे वंश की यह परम्परा रही है कि कन्या जिस सत्कुलोत्पन्न वर को पसन्द करे उसी को वह प्रदान की जाती है। आपकी याचना हमारे अभीष्ट से भी परे हैं,और न जाने किस प्रकार इसकी उत्पत्ति हुई है ? इस अवस्था में मुझे क्या करना चाहिये, यह नहीं समझ पा रहा हूँ और इसी बात की मुझे चिन्ता है । राजा मान्धाता की यह बात सुनकर सौभरि ऋषि विचार करने लगे ।८३। मुझे टालने के लिए यह एक अन्य उपाय प्रयोग किया गया है । यह वृद्ध है, इसे प्रौढ़ा स्त्रियाँ भी पसन्द नहीं कर सकतीं, तो कन्याओं का कहना ही या है ? राजा ने यही सोचते हुए मुझे टालने की चेष्टा की है । यदि ऐसा है तो मैं भी इसका उपाय करूंगा ऐसा विचार करके उन्होंने राजा से कहा ।८४। यदि ऐसा है तो कन्याओं के अन्तःपुर रक्षक को मेरे प्रवेश की आज्ञा दो । फिर यदि कोई कन्या स्वयं ही मुझे पसन्द करेगी,तभी मैं स्त्री-परिग्रह करूँगा, अन्यथा इस ढलती हुई आयु में व्यर्थ के इस उद्यम से कोई प्रयोजन ही नहीं रखूँगा । यह कह कर वह चुप हो गये ।८५।

ततश्च मान्धात्रा मुनिशापशङ्कितेन कन्यान्तःपुरवर्षवरस्समाज्ञप्तः ।८६। तेन सह कन्यान्तःपुरं प्रविशन्नेव भगवानखिलसिद्धगन्धर्वेभ्योऽतिशयेन कमनीयं रूपमकरोत् ।८७। प्रवेश्य चतमृषिमन्तःपुरे वर्षवरस्ताः कन्याःप्राह ८८। भवतीनां जनयिता महाराजस्समाज्ञापयति ८९। अयमस्मान् ब्रह्मर्षिः कन्यार्थं समभ्यागतः ९०। मया चास्य प्रतिज्ञातं यद्यस्मत्कन्या या काचिद्भगवन्तं वरयति तत्कन्यायाश्छन्दे नाहं परिप-थान करिष्यामीत्याकर्ण्य सर्वा एव

ताः कन्याः सानुरागाः सप्रमदाः करेणव इवेभयूथपतिं तमृषिमहमहमिकया वरयाम्बभूवुरूचुश्च ।९१।

यह सुन कर ऋषि के शाप भय से भीत हुए राजा ने कन्याओं के अन्तःपुर रक्षक को उनके प्रवेश की आज्ञा दी ।८६। तब उनके साथ अन्तःपुर में जाते हुए महर्षि सौभरि ने रूप को सभी सिद्धों और गन्धर्वों से भी अत्यन्त कमनीय बना लिया ।८७। इस प्रकार उन ऋषि श्रेष्ठ को कन्याओं के अन्तःपुर में ले जाकर उसके रक्षक ने कन्याओं से कहा ।८८। तुम्हारे पिता महाराज मान्धाता ने आज्ञा दी है कि ब्रह्मर्षि हमारे यहाँ एक कन्या की इच्छा से आये है और मैंने इनको वचन दिया है कि मेरी जो कन्या इन्हें स्वेच्छा से वरण करना चाहेगी, मैं उसकी स्वच्छन्दता में बाधक नहीं बनूंगा। उसकी यह बात सुन कर उन सब कन्याओं ने यूथपति हाथी का वरण करने वाली हथनियों के समान अनुराग और आह्लाद सहित सहसा कहा कि मैं ही इनका वरण करती हूं—मैं ही करती हूँ। इस प्रकार कहती हुई सभी कन्याओं ने उन मुनि को वरण कर लिया। उस समय वे सब परस्पर कहने लगीं ।८९-९१।

अलं भगिन्योऽहमिमं वृणोमि वृणोम्यहं नैष तवानुरूपः ।
ममैष भर्त्ता विधिनैव सृष्टस्सृष्टाहमस्योपशमं प्रयाहि ।९२।
वृतो मयायं प्रथमं मयायं गृहं विशन्नेव विहन्यसे किम् ।
मया मयेति क्षितिपात्मजानां तदर्थमत्यर्थकलिर्बभूव ।९३।
यदा मुनिस्ताभिरतीवहार्दाद्वृतस्स कन्याभिरनिन्द्यकीर्तिः ।
तदा स कन्याधिकृतो नृपाय यथावदाचष्ट विनम्रमूर्तिः ।९४।

तदवगमात्किञ्चिमेतत्कथमेतत्किं किं करोमि किं मयाभिहितमित्याकुलमतिरनिच्छन्नपि कथमपि राजानुमेने ।९५। कृतानुरूपविवाहश्च महर्षिस्सकला एव ताः कन्यास्स्वमाश्रममनयत् ९६।

अहो बहिनो ! तुम सब क्यों व्यर्थ चेष्टा कर रही हो, यह तुम्हारे तो अनुरूप ही नहीं हैं मैं ही इनका वरण करती हूँ। विधना ने ही इन्हें मेरा पति और मुझे इनकी पत्नी निश्चित किया है, इसलिये तुम अपने

प्रयत्न में शान्त होओ ।९२। इनके अन्तःपुर में घुसते ही मैंने इन्हें वरण कर लिया था, अब तुम क्यों इन पर न्योछावर हो रही हो ? इस प्रकार मैंने इनका वरण किया, मैंने प्रथम ही वरण कर लिया कहती हुईं उन सभी राज-कन्याओं में कलह उपस्थित हो गया ।९३। फिर उन सभी कन्याओं ने अत्यन्त अनुराग के वशीभूत होकर उन अनिन्द्ययश वाले मुनिश्रेष्ठ का वरण करलिया। तब अन्तःपुर रक्षक ने राजा के पास जाकर सब वृत्तान्त यथावत निवेदन किया ।९४। श्री पराशर जी बोले–सब वृत्तान्त जानकर राजा सोचने लगे कि यह क्या कह रहा है ? यह किस प्रकार सम्भव हुआ ? अब मुझे क्या करना चाहिए ? मैंने उन्हें क्यों वैसा कहा ? इस प्रकार व्याकुल होते हुए राजा ने अनिच्छापूर्वक अपने वचन को निभाया तथा अपने अनुरूप विवाह-संस्कार के सम्पन्न होने पर उन सब कन्याओं को साथ लेकर महर्षि सौभरि अपने आश्रम को गये ।९५-९६।

तत्र चाशेषशिल्पकल्पप्रणेतारं धातारमिवान्यं विश्वकर्माण-माहूय सकलकन्यानामेकैकस्याः प्रोत्फुल्लपङ्कजाः कूजत्कलहंसका-रण्डवादिविहङ्गमाभिरामजलाशयास्सोपधानाः सावकाशास्साधुश य्यापरिच्छदाः प्रासादाः क्रियंतामित्यादिदेश ।९७। तच्च तथैवा-नुष्ठितमशेषशिल्पविशेषाचार्यस्त्वष्टा दर्शितवान् ।९८। ततः परम-र्षिणा सौभरिणाज्ञप्तस्तेषु गृहेष्वनिवार्यानन्दनामा महानिधिरा-सांचक्रे ।९९। ततोऽनवरतेन भक्ष्यभोज्यालेह्याद्युपभोगैरागता-नुगतभृत्यादीनहर्निशमशेषगृहेषु ताः क्षितीशदुहितारो भोजयामासुः ।१००।

वहाँ पहुंच कर उन्होंने शिल्पकला के प्रणेता विश्वकर्मा को आहूत कर उनसे कहा कि इन सब कन्याओं के लिए पृथक-पृथक भवन बना दो, जिनमें विकसित हुए कमल, कूजते हुये हंस और कारण्डवादि जल-पक्षियों से परिपूर्ण जलाशय, सुन्दर उपधान, शय्या और परिच्छदादि हों, उनमें खुला हुआ स्थान पर्याप्त रूप से हो ।९७। यह सुनकर सम्पूर्ण शिल्पकला

के विशेष आचार्य विश्वकर्मा ने उनकी इच्छा के अनुसार ही सब निर्मित करके उन्हें दिखाया ।९८। फिर महर्षि सौभरि की आज्ञा से उन भवनों में 'अनिवार्यआनन्द' नाम की महानिधि विराजमान हो गई ।९९। इससे वहां अनवरत भक्ष्य, भोज्य लेह्य आदि सामग्रियों के द्वारा वे राजपुत्रियाँ आगत अतिथियों और अपने अनुगत भृत्यों को तृप्त करने में रात दिन समर्थ हुई ।१००।

एकदा तु दुहितृस्नेहाकृष्टहृदयस्स महीपतिरतिदुःखितास्ता उत सुखिता वा इति विचिन्त्य तस्य महर्षेराश्रमसमीपमुपेत्य स्फुरदंशुमालाललामां स्फटिकमयप्रसादमालामतिरम्योपवनजलाशयां ददर्श १०१ प्रविश्य चैकं प्रासादामात्मजां परिष्वज्य कृतासन परिग्रहः प्रवृद्धस्नेहनयनाम्बुगर्भनयनोऽब्रवीत् ।१०२। अप्यत्र वत्से भवत्याः सुखमुत किञ्चिदसुखमपि ते महर्षिस्स्नेहवानुत न, स्मर्यतेऽस्मद्गृहवास इत्युक्ता तं तनया पितरमाह ।१०३। तातातिरमणीयः प्रासादोऽत्रातिमनोज्ञमुपवनमेते कलवाक्यविहङ्गमाभिरुताः प्रोत्फुल्लपद्माकरजलाशयाः मनोऽनुकूलभक्ष्यभोज्यानुलेपनवस्त्र-भूषणादिभोगो मृदूनि शयनासनानि सर्वसम्पत्समेतं मे गार्हस्थ्यम् ।१०४। तथापि केन वा जन्मभूमिर्न स्मर्यते ।१०५। त्वत्प्रसादादिदमशेषमतिशोभनम् १०६ किं त्वेकं ममैतद्दुःखकारणं यदस्मगृहान्महर्षिरयम्मद्भर्त्ता न निष्क्रामति ममैव केवलमतिप्रीत्या समीपपरिवर्ती नान्यासामस्मद्भगिनीनाम् ।१०७।

फिर किसी एक दिन राजा मान्धाता अपनी कन्याओं के स्नेह से आकृष्ट हृदय सहित उनके सुखी या दुखी होने के विषय में जानने की उत्कण्ठा से महर्षि के आश्रम के समीप पहुँचे । तब उन्हें वहाँ अत्यन्त रमणीक उपवनों और जलाशयों से सुशोभित स्फटिकमय प्रासादों की पंक्ति दिखाई पड़ी, जो स्फुर अंशुमालाओं से अत्यन्त ललाम प्रतीत होती थी ।१०१। फिर वह एक भवन में जाकर अपनी पुत्री को हृदय से लगाकर आसन पर बैठ गये और स्नेहसिक्त नयनों में जल भरते हुये कहने

लगे ।१०२। हे वत्से ! तुम यहाँ सुख-पूर्वक तो रह रही हो ? किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं पाती ? महर्षि तुमसे प्रेम तो करते हैं ? क्या तुम्हें अपने पितृगेह की भी कभी याद आती है ? पिता की बात सुन कर राज कुमारी बोली. हे पिताजी ! यह प्रासाद अत्यन्त रमणीय है यह उपवनादि भी अत्यन्त चित्ताकर्षक हैं, विकसित कमलों वाले इन जलाशयों में जल-पक्षी सदा ही मधुर बोली बोलते हैं, भक्ष्य भोज्यादि खाद्य तथा अंगराग, वस्त्राभूषण, सुकोमल शय्या, मृदु आसन सभी मन-पसन्द हैं। इस प्रकार हमारा गार्हस्थ जीवन अत्यन्त वैभव सम्पन्न और सुखी है।१०४। फिर भी अपने जन्म स्थान का का स्मरण भला किसे न होगा ।१०५। यद्यपि आपके प्रसाद से सब कुछ अत्यन्त शोभायमान है, फिर भी मुझे एक अत्यन्त दुःख है कि हमारे पति यह महर्षि मेरे भवन से कभी निकलते ही नहीं, मुझ पर भी अत्यधिक स्नेह करने के कारण यह मेरे ही पास रहे आते हैं, मेरी अन्य बहिनों के पास कभी नहीं जाते ।१०६-१०७।

एवं च मम सादर्योऽतिदुःखिता इत्येवमतिदुःखकारणमित्युक्तस्तया द्वितीयं प्रासादमुपेत्य स्वतनयां परिष्वज्योपविष्टस्तथैव पृष्टवान् ।१०८। तथापि च सर्वमेतत्तत्प्रासाद्युपभोगसुखं भृशमाख्यातं ममैव केवलमतिप्रीत्या पार्श्वपरिवर्त्ती, नान्यासामस्मद्भगिनीनामित्येवतादि श्रुत्वा समस्तप्रासादेषु राजा प्रविवेश तनयां तनयां तथैवापृच्छत् ।१०९। सर्वाभिश्च ताभिस्तथैवाभिहितः परितोषविस्मयनिर्भर विवशहृदयो भगवन्तं सौभरिमेकान्तावस्थितमुपेत्य कृतपूजोऽब्रवीत् ।११०। दृष्टस्ते भगवन् सुमहानेष सिद्धिप्रभावो नैवंविधमन्यस्य कस्यचिदस्माभिर्विभूतिभिर्विलिसितमुपलक्षितं यदेतद्भगवतस्तपसः फलमित्यभिपूज्य तमृषिं तत्रैव तेन ऋषिवर्येण सह किञ्चत्कालमभिमतोपभोगान् बुभुजे स्वपुरं च जगाम ।१११।

इससे मेरी अन्य बहिनें अत्यन्त दुःखित होंगी । इसी से मैं अत्यन्त दुःखी हूँ । इसके पश्चात राजा दूसरे भवन में पहुँचे और अपनी कन्या का

आलिंगन कर आसनपर बैठे और उससे भी उन्होंने वही प्रश्न किया १०८ उस राजकुमारी ने भी उसी के समान भवनादि सब सुख भोगों का वर्णन करके उसी प्रकार कहा कि मुझ में अत्यन्त प्रेम होने के कारण महर्षि केवल मेरे ही पास रहते हैं, मेरी किसी अन्य बहिन के पास नहीं जाते। इस बात को सुन कर राजा एक-एक करके सभी भवनों में गये और अपनी सभी कन्याओं से वैसा ही प्रश्न किया।१०९। तथा उन सब ने भी उन्हें वैसा ही उत्तर दिया। सब की बात सुनने के अनन्तर राजा अत्यन्त आनंदित और विस्मित हुए तथा एकांत में स्थित महर्षि सौभरि का पूजन करके उन्होंने निवेदन किया।११०।हे भगवन्! यहसब प्रभाव आपकी हीयोग-सिद्धिका दिखाई दे रहा है। इस प्रकार के ऐश्वर्य के सहित विलास करते हुए कभी किसी को नहीं देखा। यह सब आपके तप का ही प्रभाव है। राजा ने इस प्रकार महर्षि का अभिवादन कर कुछ काल तक उनके साथ आनन्दोपभोग किया और अन्त में अपने नगर को वापिस लौटे।१११।

कालेन गच्छता तस्य तासु राजतनयासु पुत्रशतं सार्धममवत्।११२। अनुदिनानूरूढ़स्नेह प्रसरश्च स तत्रातीव ममताकृष्टहृदयोऽभवत्।११३। अप्येतेऽस्मत्पुत्राः कलभाषिणः पद्भ्यां गच्छेयुः अप्येते यौवनिनो भवेयुः अपि कृतदारानेतान् पश्येयमप्येषां पुत्रा भवेयुः अप्येतत्पुत्रान्पुत्रसमन्वितान्पश्यामीत्यादिमनोरथाननुदिनं कालसम्पत्तिप्रवृद्धानुपेक्ष्यैतच्चिन्तयामास।११४।

अहो मे मोहस्यातिविस्तारः।११५।

मनोरथानां न समाप्तिरस्ति वर्षायुतेनापि तथाब्दलक्षैः।
पूर्णेषु पूर्णेषु मनोरथानामुत्पत्तयस्सन्ति पुनर्नवानाम्।११६।
पद्भ्यां गता यौवनिनश्च जाता दारैश्च संयोगमिताः प्रसूताः।
दृष्टाः सुतास्तत्तनयप्रसूतिं द्रष्टुं पुनर्वाञ्छति मेऽन्तरात्मा११७
द्रक्ष्यामि तेषामिति चेत्प्रसूतिं मनोरथो मे भविता ततोऽन्यः
पूर्णेऽपि तत्राप्यपरस्य जन्म निवर्यते केन मनोरथस्य।११८।

आमृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाद्य ।
मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थसङ्गि ।११९:

कालान्तर में उन राजकुमारियों के द्वारा सौभरि मुनिने डेढ़सौ पुत्र उत्पन्न किए । इससे दिनों दिन बढ़ते हुए स्नेह के कारण उनका हृदय अत्यन्त ममता से भर गया ।११२-११३। उस समय वह सोचने लगे कि क्या मेरे यह पुत्र मधुर बोली सुनायेंगे ? अपने पैरों से चलेंगे ? युवावस्था को प्राप्त होंगे ? क्या मैं इन सब को पत्नी सहित देख सकूंगा ? फिर इनके भी पुत्र होंगे तब क्या में अपने को पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न देख पाऊंगा ? फिर इस प्रकार दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए इन मनोरथों की उपेक्षा करते हुए उन्होंने सोचा ।११४। अरे ! मेरा मोह कितना विस्तृत हो गया है ।११५। यह मनोरथ तो हजारों लाखों वर्ष में भी निवृत नहीं हो सकते । क्योंकि उनमें से जितने मनोरथ पूर्ण होते हैं, उनके स्थान पर अन्य नवीन मनोरथ उत्पन्न हो जाते हैं ।११६। मेरे पुत्र अपने पांवों से चलने लगे, फिर युवावस्था को प्राप्त हुये, फिर उनका विवाह हो गया यह सभी कुछ मैंने देख लिया है । अब मैं अपने पौत्रों की उत्पत्ति देखने की अभिलाषा करता हूं ।११७। जब मैं उनकी उत्पत्ति देख लूंगा तब मेरे मन में अन्य मनोरथों की उत्पत्ति होगी और जब वह भी पूर्ण हो जायगी तब किसी अन्य मनोरथ के उद्भव को कौन रोक सकेगा ? ।११८। मैं अब भले प्रकार समझ गया हूं कि मरणकाल तक भी मनोरथों का अन्त नहीं होगा और चित्त मनोरथों में आसक्त है, वह परमार्थों में लग नहीं सकता ।११९।

स मे समाधिर्जलवासमित्रमत्स्यस्य सङ्गात्सहसैव नष्ट ।
परिग्रहस्सङ्गकृतो मयायं परिग्रहोत्था च ममातिलिप्सा १२०
दुःखं यदेवैकशरीरजन्म शतार्द्धसंख्याकमिदं प्रसूतम् ।
परिग्रहेण क्षितिपात्मजानां सुतैरनेकैर्बहुलीकृतं तत् ।१२१।
सुतात्मजैस्तत्तनयैश्च भूयो भूयश्च तेषां च परिग्रहेण ।
विस्तारमेष्यत्यतिदुःखहेतुः परिग्रहो वै ममताभिधानः ।१२२

चीर्णं तपो यत्तु जलाश्रयेण तस्यर्द्धिरेषा तपसोऽन्तरायः ।
मत्स्यस्य सङ्गादभवच्च यो मे सुतादिरागो मुषितोऽस्मि तेन ।
निस्सङ्गता मुक्तिपदं यतीनां सङ्गादशेषाः प्रभवन्ति दोषाः ।
आरूढयोगो विनिपात्यतेऽधस्सङ्गेन योगी किमुताल्पसिद्धिः ।

अरे, मेरी वह समाधि जल में साथ रहने वाला मत्स्य की संगति में सहसा भंग हो गई । उसी से आसक्त चित्त हुए मैंने स्त्री और धनादि का ग्रहण किया तथा वह स्त्री—धनादि का परिग्रह ही अब मेरी तृष्णा वृद्धिका कारण बन गया है ।१२०। प्रथम तो देह धारण करना ही दुःख रूप है, फिर मैंने तो इन राजपुत्रियों के साथ विवाह करके उस दुःख को पचास गुना कर लिया है और अब तो इन अनेक पुत्रों के कारण उसकी अत्यन्त वृद्धि हो गई है ।१२१। अब भविष्य में जब पुत्रों के पुत्र होंगे, तथा उनके भी पुत्रादि और बारंबार विवाह सम्बन्ध होने से उसकी और भी वृद्धि होती जायगी । यह ममतारूप विवाह सम्बन्ध आदि अत्यन्त ही दुःख का कारण हो रहा है ।१२२। जलाशय में निवास करते हुये मैंने जो तप किया था, उसके फल से प्राप्त यह वैभव भी तपस्या में बाधक हो रहा है । मत्स्य के संग-दोष से मेरे मन में जा सन्तानादि का राग उत्पन्न हुआ था, उसी से मैं ठगगया हूँ।१२३। संगहीनता यतियों के लिये मोक्षदायिनी है और सभी दोषों की प्राप्ति संग से ही होती है । संग के कारण योगसिद्ध पुरुषों का भी पतन हो जाता है, तो अल्प सिद्धि वालों का कहना ही क्या है ।१२४।

अहं चरिष्यामि तदात्मनोऽर्थे परिग्रहग्रहीतबुद्धिः ।
यदा हि भूयः परहीनदोषो जनस्य दुःखैर्भविता न दुःखी १२५
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमणोरणीयांसमतिप्रमाणम् ।
सितासितं चेश्वमीश्वराणामाराधयिष्ये तपसैव विष्णुम् १२६
तस्मिन्नशेषौजसि सर्वरूपिण्यव्यक्तविस्पष्टतनावनन्ते ।

ममाचलं चित्तमपेतदोषं सदास्तु विष्णावभवाय भूयः ।१२७।
समस्तभूतादमलादनन्तात्सर्वेश्वरादन्यदनादिमध्यात् ।
यस्मान्न किञ्चित्तमहं गुरूणां परं गुरुं संश्रयमेमि विष्णुम् ।

परिग्रह रूपी ग्राह ने मेरी मति को जकड़ लिया है, इस समय मैं ऐसा यत्न करूंगा, जिससे दोषों से छुटकारा पाकर फिर अपने कुटुम्बी-जनों के दुःख से दुःख को प्राप्त न होऊं ।१२५। अब सर्वसाधारण, अचिन्त्य रूप, अणु से भी सूक्ष्म, सब से महान्, सित और असित रूप, ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् श्री हरि की तप के द्वारा आराधना करूंगा ।१२६। उन सर्वतेजोमय, सर्वरूप, अव्यक्त, विस्पष्ट तन, अनन्त रूप भगवान विष्णु में मेरा निर्दोष चित्त अविचल भाव से सदा ही लगा रहे, जिससे मुझे पुनः पृथिवी पर जन्मधारण न करना पड़े ।१२७। जिन सर्वरूप, निर्मल, अनन्त, सर्वेश्वर तथा आदि, मध्य से रहित से अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है, मैं उन्हीं गुरुओं के परम गुरु भगवान् श्री हरि की शरण लेता हूँ । १२८।

इत्यात्मानमात्मनैवाभिधायासौ सौभरिरपहाय पुत्रगृहासनपरिच्छदादिकमशेषमर्थजातं सकल भार्यासमन्वितो वनं प्रविवेश ।१२९। तत्राप्यनुदिनं वैखानसनिष्पाद्यमशेषक्रियाकलापं निष्पाद्य क्षपितसकलपापः परिपक्वमनोवृत्तिरात्मन्यग्नीन्समारोप्य भिक्षुरभवत् ।१३०।

भगवत्यासज्याखिलं कर्मकलापं हित्वानन्तमजमनादिनिधनमविकारमरणादिधर्ममवापपरमनन्तं परवतामच्युतं पदं ।१३१। इत्येतत्मान्धातृदुहितृसम्बन्धादाख्यातम् ।१३२। यश्चै तत्सौभरिचरितमनुस्मरति पठति पाठयति शृणोति श्रावयति धारयत्यवधारयति लिखति लेखयति शिक्षयत्यध्यापयत्युपदिशति वा तस्य षड् जन्मानि दुस्सन्ततिरसद्धर्मो वाङ् मनसयोरसन्मार्गचरणमशेषहेतुषु वा ममत्वं न भवति ।१३३।

श्री पराशर जी ने कहा—इस प्रकार विचार करके महर्षि सौभरि ने अपने पुत्र, गृह आसन, परिच्छद आदि सब पदार्थों का त्याग कर दिया और अपनी सब पत्नियों को साथ लेकर वन में गये ।१२९। वहाँ उन्होंने वानप्रस्थों के योग्य सभी कर्मों का अनुष्ठान किया और सभी पापों के नष्ट होने पर आहवनीय आदि अग्नियों को धारण कर संन्यास ग्रहण कर लिया ।१३०। फिर सब कर्म कलापों को छोड़ कर भगवान् में आसक्त चित्त से उन्होंने प्रभु–परायण पुरुषों के मोक्ष पद को प्राप्त किया, जो पद जन्म ने परे, अनादि, अविनाशी, अविकारी मरणधर्मों से परे, इन्द्रियातीत तथा अन्त रहित है ।१३१। इस प्रकार मान्धाता की पुत्रियों वाले इस आख्यान को मैंने कहा है । इस सौभरि चरित्र के स्मरण करने, पढ़ने, पढ़ाने, सुनने, सुनाने, धारण करने या कराने अथवा उपदेश करने वाले को छः जन्मों पर्यन्त कुसन्तान, मिथ्याधर्म, असद्वाणी, कुमार्ग में चित्त-प्रवृत्ति अथवा किसी वस्तु में ममता की प्राप्ति नही होतीं ।१३२-१३३

।। इति श्री विष्णुपुराण (प्रथम खण्ड) समाप्त ।।